फ़ैण्टेसी की सृजनात्मक भूमिका और मुक्तिबोध की कविताएँ

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, की डी० फिल०
उपाधि हेंतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
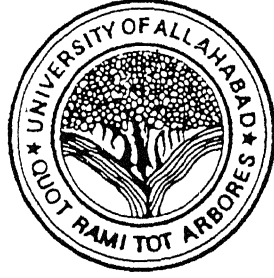
निर्देशिका .
डा० मीरा दीक्षित
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

अनुसंधित्सु :
चक्रपाणि पाठक

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
दिसम्बर 2002

पूज्य
माता-पिता जी
के
कर कमलों में
सादर

आभार ज्ञाप्ति

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का भी अपना एक इतिहास है। शोध-कार्य की जिज्ञासा एम॰ए॰ उत्तरार्द्ध में मेरे अंदर जगी। विषय का चयन एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है। श्रद्धेय डॉ॰ सत्य प्रकाश मिश्र जी की कृपा से मुझे प्रस्तुत विषय '''फ़ैण्टेसी' की सृजनात्मक भूमिका और 'मुक्तिबोध' की कविताएँ प्राप्त हुआ, जो मुझे भी पसन्द है। विषय को लेकर हमारे हितैषियो एवं अनेक विद्वानो द्वारा अनेक प्रश्न चिन्ह खड़े किये जाते रहे। किसी ने कहा कि विषय गुरू-गंभीर है, किसी ने जोड़ा कि 'मुक्तिबोध' के संदर्भ मे शोध अथवा समीक्षात्मक ग्रन्थ बहुत कम है, किसी ने समझाया कि 'मुक्तिबोध' के काव्य की ऊंचाइयों को छू पाना ही सरल-सुगम नही। मेरे मन मे भी अनेक प्रश्न खड़े होते रहे, किंतु अन्तर्मन मे कहीं कोई यह भी कह रहा था कि बने बनाये मार्ग पर तो सभी चल लेते हैं, सच्चा आनंद और सच्ची उपलब्धि तो नये मार्गो के माध्यम से अस्पृश्य भूमियों को खोजने में ही है।

फलतः मैंने इसी विषय पर शोध कार्य करने का दृढ़ निश्चय किया। डॉ॰ मीरा दीक्षित जी ने सहानुभूतिपूर्वक शोध कार्य कराने का दृढ़ निश्चय किया डॉ॰ मीरा दीक्षित जी ने सहानुभूतिपुर्वक शोध निर्देशिका बनने की स्वीकृति भी मुझे प्रदान कर दीः

शोध-विषय के पंजीयन के साथ ही साथ मैं तत्परता से इस दिशा मे जुट गया। समस्या 'मुक्तिबोध'-साहित्य एवं 'मुक्तिबोध' पर शोध एवं आलोचनात्मक कृतियों की उपलब्धि के संदर्भ में थी। इसका समाधान किया इलाहाबाद में हिन्दी से जुड़े पुस्तकालयो ने।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने पर उन महानुभावो के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस कार्य में सहायता प्रदान की तथा जिनके सहयोग से यह शोध प्रबन्ध प्रकाश मे आ सका है।

इस क्रम में सर्वप्रथम मैं अपने शोध निर्देशिका डॉ॰ मीरा दीक्षित जी (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहजलभ्य स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन, कुशल निर्देशन एवं मार्गदर्शन के कारण मुझसे यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। यह शोध प्रबन्ध जिस रूप मे भी प्रस्तुत है उसका एकान्तश्रेय उन्हीं को है। अपने व्यस्त जीवन से भी जो अमूल्य समय उन्होने मेरे लिए निकाला और मेरे इस कार्य को सम्पन्न कराया, उसके प्रति मैं किन शब्दो मे आभार व्यक्त करूं। उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन शब्दो मे नही अपितु वाणी की मूकता मे ही सभव है।

'मुक्तिबोध' के प्रति जिज्ञासा तथा इसके अध्ययन की प्रेरणा मुझे प्रो0 राजेन्द्र कुमार जी (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) से उस समय मिली जब मैंने परास्नातक परीक्षा के लिए 'अँधेरे में' का अध्ययन किया। आपके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

गुरूवर्य प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र जी (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) ने समय-समय पर शोध प्रबन्ध लेखन में आने वाली दिक्कतों का निवारण कर जो महती कृपा की है उसके लिए मैं उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

इस अवसर पर परिवारजनों का स्मरण करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

इस क्रम में सर्वप्रथम पूज्य माता पिता के चरणो को सादर प्रणाम करता हूँ जिनके आशीर्वाद का प्रकाश मेरे जीवन-पथ को आलोकित करता रहा हैं। जिन्होने अपने सुखो की परवाह न करते हुए मेरे शैक्षिक उन्नयन से ही हर्षित होने का व्रत लिया है।

मुझे सर्वाधिक सहायता की है मुझे मेरे माता-पिता ने जो शोध प्रबन्ध के प्रेरक तत्त्व रहे हैं। 'थामस एडीशन' ने एक बार 'प्रतिभा' के बारे में कहा था- ''प्रतिभा, दो प्रतिशत प्रेरणा और अट्ठानवें प्रतिशत पसीना है''। किन्तु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के इस रूप तक पहुँचने में अट्ठानवे प्रतिशत माता-पिता व गुरूजनों की रही तथा दो प्रतिशत ही मैंने पसीना बहाया है।

पूज्य पिता श्री कनिकराम पाठक (अध्यापक, इंदिरा गाँधी इण्टर कॉलेज, कप्तानगंज, बस्ती) जिनका चिन्तनशील व्यक्तित्व और विद्वतापूर्ण व्याख्यान मुझे निरन्तर प्रेरणा प्रदान करता रहा।

पूज्य माता श्रीमती पद्मावती देवी (प्रधानाचार्या, कन्या जू0 हाई स्कूल, हरैया बस्ती)

जिनके कठोर परिश्रम और ध्येय निष्ठा ने मुझे निरन्तर प्रेरणा प्रदान की।

शोध प्रबन्ध लिखते समय अनुज पद्मपाणि पाठक, बहन पद्माक्षी, मीनाक्षी ने मेरी सहायता की है। इन लोगो को धन्यवाद देना अपने को ही धन्यवाद देना होगा। इनका भविष्य उज्जवल हो यही कामना है।

जीवन संगिनी श्रीमती सुधा पाठक (सहायक अध्यापिका) के प्रति अपने दायित्व को भी कभी-कभी मैं इस बीच पूर्ण नही कर सका, लेकिन उन्होने मुझे निरन्तर सहयोग एवं प्रोत्साहन दिया। उनके प्रति निःशेष स्नेह की अभिव्यक्ति करना मैं अपना परम् कर्त्तव्य समझता हूँ।

यदि मित्रो का आयाचित स्नेह न मिलता तो यह शोध-प्रबन्ध इस रूप में पूरा हो पाता इसमे सदेह है। बृजेश कुमार उपाध्याय, सुरेश मिश्रा, अभय प्रताप सिंह, अरुण प्रताप सिंह, राकेश त्रिपाठी, प्रदीप तिवारी, अमिताभ कुमार, सुशील श्रीवास्तव, राहुल द्विवेदी, मनोज द्विवेदी, अरूण मिश्रा के प्रति सस्नेह आभारी हूँ। ये मेरे इतने आत्मीय हैं और इन्हें मैं इतना निकट महसूस करता हूँ, कि जब भी मेरे सामने लेखन सबधी गुत्थी, उलझन, अटकाव, समस्या आयी मैंने निःसंकोच इनके सामने रखा और इन लोगो ने सुलझाया। इस प्रबन्ध को लिखने मे यदि इन लोगो का सहयोग, व परामर्श न पाता तो शायद ही इतनी जल्दी लिख पाता। मित्रो के इस स्नेह भाव के लिए नत हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिए अध्ययन करते समय जिन सुधी विद्वानों तथा प्रकाशकों के ग्रन्थों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वैचारिक सहायता मिली मैं उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के पुस्तकालय, के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। सबसे अधिक आभारी हूँ-हिंदी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग का जहाँ पर मुझे उन कृतियों का अध्ययन करने का अवसर मिला, जिनके नये संस्करण उपलब्ध नही हैं।

उन पुस्कालाध्यक्षों एवं प्रतिष्ठानो तथा व्यक्तियों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होने वांछित साहित्य सुलभ किया, जिसके बिना इस शोध प्रबन्ध को इस रूप में प्रस्तुत कर पाना संभव न होता। अपने उन अनेकानेक शुभचिन्तकों एवं अन्य निकट संबंधियों के ऋण को

ठीक-ठीक स्वीकारने मे भी समर्थ नही हूँ जिन्होंने मेरे प्रति अनुराग के कारण विविध प्रकार से मेरी प्रत्यक्ष या परोक्ष सहायता की है।

इतना और स्पष्ट कर देना मै अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि इस शोध-प्रबन्ध मे जो कुछ भूले या त्रुटियाँ हैं, वे सब मेरी है और जो कुछ सुंदर एवं श्रेष्ठ है वह सब मेरे गुरूजनो का प्रसाद है।

—चक्रपाणि पाठक

—चक्रपाणि पाठक

अनुक्रम

भूमिका

'फ़ैण्टेसी' जिसका अर्थ है– स्वप्न कथा, जिसके सूत्र प्रत्यक्षरूप से सामने नहीं आते, बल्कि कल्पना के माध्यम से जुटाए जाते हैं। वास्तविक कथा में तारतम्य रहता है। जीती-जागती ऑखों से देखने के कारण तर्क होता है। स्वप्न में गुंजाइश होती है, अतार्किक बातो को देखने की, यहॉ क्रमबद्धता तथा काल-क्रम नहीं होता। जहाँ अतार्किक घटनाओ के सहारे कथा बुनी गयी हो, वहॉ 'फ़ैण्टेसी' या स्वप्न होता है। 'मुक्तिबोध' भारतीय समाज के खतरो की पहचान सीमाओं में रहकर नही, बल्कि फैलकर पूरे विस्तार से करना चाहते हैं, इसीलिए वे शिल्प के एक नये रूप का प्रयोग करते हैं। 'मुक्तिबोध' ने देखा कि आजादी के बाद की स्थितियाँ ऐसी बनी हैं, कि सीधे कही किसी बात का तो असर ही नहीं पड़ता, इसलिए वे कुछ अतार्किक शी प्रतीत होती हुयी बात कहते हैं, जिससे हो सकता है लोग चौंकें और उन पर कुछ प्रभाव पड़े। संवेदनहीनता, विचारहीनता से लड़ने के लिए कई बार ऐसे प्रयोगों से काम लेना पड़ता है। मुक्तिबोध जानते हैं, कि 'फ़ैण्टेसी' शैली में बात करने पर लोग चौंकेगें और हमारी बातों पर ज्यादा ध्यान देगें एवं सोचने के लिए विवश होगें। जिससे यथार्थ के प्रति बोध ज्यादा साफ हो जायेगा।

'गजानन माधव मुक्तिबोध' नयी कविता के सबसे महत्त्वपूर्ण, विवादास्पद, कवि, लेखक और आलोचक रहे हैं। 'राम विलास शर्मा' एवं 'नामवर सिंह' से लेकर आज तक उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना, मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन की एक लम्बी परम्परा रही है। उन्होंने नयी कविता के भीतर ऐसा वातारण उपस्थित किया। कि उसमें जनजीवन की आशा, आकांक्षा और संघर्षों का न केवल महत्त्व बढ़ा, बल्कि उस युग की सामाजिक जटिलता, पाखण्ड, मानसिक तनाव, विषमतापूर्ण जीवन की भयानकता, शोषण और भ्रष्टाचार पर आधारित पतनोन्मुख सभ्यता अपनी सच्ची अभिव्यक्ति पा सकी। जिससे प्रभावित होकर जहाँ 'डॉ0 रामविलास शर्मा' ने मनोविश्लेषणवाद, रहस्यवाद, अस्तित्त्ववाद और मार्क्सवाद में सामंजस्य

स्थापित करने वाला घोषित किया। वही 'डॉ0नामवर सिंह' जैसे आलोचक ने अपनी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' के केन्द्र मे मुक्तिबोध और उनके कृतित्त्व को रखा।

छायावादोत्तर काव्यधारा के कवियों में 'मुक्तिबोध' अपने को सर्वहारावर्ग के साथ संबद्ध पाते है। मध्यम वर्ग का जैसा चित्रण उन्होंने किया वैसा कम कवियों मे मिलता है। अपने व्यक्तित्त्व, युग-सन्दर्भ और रचनात्मक संघर्ष के अनुरूप उन्होंने फ़ैण्टेसी का विशेष रूप से विकास किया। 'मुक्तिबोध' छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद तीनों ही काव्य परम्पराओं मे प्रभावित होकर कविताएँ लिखी। नयी कविता के इतिहास मे 'मुक्तिबोध' ऐसे कवि हैं, जिन्होंने परम्परा को आत्मसात् करते हुए कविता को नये आयाम तथा सिद्धान्त प्रदान किये। उन्होंने अपनी अप्रतिम काव्य-प्रतिभा से नयी कविता को नया संदर्भ दिया।

इस महान कवि को किसी एक वाद, सिद्धान्त, या एक विचार धारा तक सीमित नही माना जा सकता है। वरन् इन्हे जनवादी, मार्क्सवादी की अपेक्षा व्यापक अर्थवत्ता का रचयिता मानना न्याय संगत होगा। 'मुक्तिबोध' का दृष्टिकोण प्रायः मानवतावादी है। मानव के शाश्वत मूल्यों की व्याख्या ही उनकी कविताओं का दृष्टिकोण है। वे अपनी कविताओं में समस्याओं को उठाते हैं और उनका समाधान भी स्वयं करते हैं। केवल उनके उपेक्षित जीवन को देखकर उन्हें शुद्ध मार्क्सवादी कहना उनके साथ अन्याय करना है। उस समय मार्क्सवाद की गूँज अधिकाधिक हो रही थी। बुद्धिजीवी वर्ग में मार्क्सवाद के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रति विशेष आकर्षण बढ़ता जा रहा था। जिसके अनुसार जगत् का एक मात्र सत्य भौतिक जीवन ही है। उसी का उपयोग हमारा ध्येय है, अन्य किसी भी काल्पनिक सुख की खोज में भटकना पलायन है। ऐसी परिस्थिति मे 'मुक्तिबोध' के काव्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

'मुक्तिबोध' के काव्य की इन्हीं विशेषताओं ने मुझे 'मुक्तिबोध' के काव्य में 'फ़ैण्टेसी' विषय पर शोधकार्य करने के लिए प्रेरित किया। अध्ययन के क्रम में मुझे लगा कि 'मुक्तिबोध' की कविताओं में 'फ़ैण्टेसी' के स्वरूप का अध्ययन 1940 के बाद की हिन्दी कविता की अनेक गुत्थियों के सूत्र सुलझा सकता है।

आभार ज्ञाप्ति, भूमिका एवं समापन को छोड़कर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पाँच अध्याय हैं। पहला अध्याय 'फ़ैण्टेसी' के सैद्धान्तिक विवेचन से संबंधित है। इसमें 'फ़ैण्टेसी' शब्द की व्युत्पत्ति, अनेक सन्दर्भों में उसके अर्थ, उसकी परिभाषा, 'फ़ैण्टेसी' की प्रकृति और स्वरूप,

'फैण्टेसी' मापन की विधियाँ तथा 'मुक्तिबोध' की दृष्टि मे 'फैण्टेसी' और सृजन के मनोविज्ञान पर विचार किया गया है। विश्वकोश, मनोविज्ञान के ग्रन्थो और समालोचनात्मक ग्रन्थो के आधार पर इस अध्याय में 'फ़ैण्टेसी' को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में 'मुक्तिबोध' की रचना प्रक्रिया और 'फ़ैण्टेसी' संबंधी विचार पर प्रकाश डाला गया है। इसमें रचना प्रक्रिया के तीन क्षणों का विस्तृत विवेचन करते हुए, 'भाववादी और यथार्थवादी शैली', 'अनुभव और फ़ैण्टेसी', 'फ़ैण्टेसी और सौन्दर्यानुभूति' तथा 'भाषा और भाव के बीच के द्वन्द्व' पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय में 'मुक्तिबोध' की कविताओं में 'फ़ैण्टेसी' की निर्माण-प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है। 'मुक्तिबोध' अपनी कविताओं में 'फ़ैण्टेसी' का निर्माण किस प्रकार करते है, उसके लिए किन उपकरणो का प्रयोग करते हैं, परम्परागत काव्यशिल्प के किन रूपों को वे अपनी 'फ़ैण्टेसी' के विकास में समाहित कर लेते हैं, इन बातों को 'मुक्तिबोध' की प्रमुख कविताओं के विश्लेषण के माध्यम से देखने का प्रयत्न किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे 'फ़ैण्टेसी' और उसके अनुभूति पक्ष पर विचार किया गया है। इसमे 'मुक्तिबोध' की पूर्ववर्ती एवं परिवर्ती रचनाओं के माध्यम से यह देखने का प्रयास किया गया है कि उनके मनोमय जीवन के विभिन्न अनुभव किस प्रकार 'फ़ैण्टेसी' में अभिव्यक्त होते हैं।

पंचम और अन्तिम अध्याय में 'फैण्टेसी' और उसके अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार-विमर्श किया गया है। प्रस्तुत रूप-योजना के अन्तर्गत बिंब-योजना तथा अप्रस्तुत रूप-योजना के अन्तर्गत प्रतीक-योजना का अनुशीलन करते हुए उनके भेदोपभेदों की चर्चा की गई है। अभिव्यक्ति पक्ष के प्रमुख उपकरण भाषा पर विचार करते हुए, शब्द रचना के अन्तर्गत संस्कृत, उर्दू, मराठी तथा अंग्रेजी के शब्दों के साथ-साथ मुहावरों पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ रूपक, मिथ तथा छन्द-योजना का भी विवेचन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, 'फ़ैण्टेसी' और उसके माध्यम से 'मुक्तिबोध' की कविताओं को जॉचने परखने का एक सार्थक प्रयास है। यदि इससे कुछ नये आयाम जुड़ सकें तो शोधकर्त्ता का श्रम सार्थक होगा। इसी प्रत्याशा में यह शोध प्रबन्ध विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत है।

-चक्रपाणि पाठक

प्रथम अध्याय

‘फ़ैण्टेसी’ की अवधारणा

‘फ़ैण्टेसी’ शब्द की व्युत्पत्ति

‘फ़ैण्टेसी’ शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के ‘फैटेसिया’ शब्द से हुई है।[1] ‘फैटेसिया’ को अंग्रेजी में ‘फैंटेसी’ कहा जाता है। हिन्दी में इसके लिए अलग से कोई समानार्थी या पर्यायवाची शब्द नहीं प्रस्तुत किया गया है। अतएव यह शब्द ‘फ़ैण्टेसी’, ‘फन्तासी’, ‘फान्तासी’ नामों से प्रचलित हो गया है। फैंटेसिया का अर्थ होता है मानव के प्रवाह मे या माँग पर एक काल्पनिक दुनिया निर्माण करने का अद्भुत सामर्थ्य[2]। साहित्य में भी ‘फ़ैण्टेसी’ को लगभग इसी अर्थ में ग्रहण किया जाता है। अपने अन्तर्जगत के विशेष माँग पर, अपनी काल्पनिक क्षमता के रचनाकार द्वारा उसी के प्रकृति के अनुरूप एक काल्पनिक दुनिया का निर्माण करता है जिसे ‘फ़ैण्टेसी’ कहते हैं।

‘फ़ैण्टेसी’ शब्द का कोशगत अर्थ है ‘भावना’, ‘कल्पना’, ‘मनोरथ-सृष्टि’ ‘विलक्षण अथवा अद्भुत कल्पना’, ‘स्वैर-कल्पना’, ‘हवाई-कल्पना’, ‘रचना’, ‘रूप’, ‘विचार’, ‘तरंग’, ‘लहर’, ‘मौज’, ‘सनक’, ‘झक’, ‘भावनाशक्ति’, ‘कल्पना शक्ति’ और ‘मनोरथ सृष्टि करने की क्षमता’[3]। ‘फादर कामिल बुल्के’ ने अपने कोश में ‘स्वैर कल्पना’, ‘मनोरथ और स्वप्न चित्र’ को इसके अर्थ के रूप में स्वीकार किया है[4]। ‘दर्शन कोश’ में ‘फ़ैण्टेसी’ का अर्थ अति-कल्पना माना गया है।[5]

‘फ़ैण्टेसी’ शब्द का प्रयोग 16वीं और 17वीं शताब्दी में संगीत के क्षेत्र में म्युजिकल बोर्ड से एक विशेष प्रकार की ध्वनि को निकालने के लिए किया जाता था। बाद में मनोविज्ञान के विकास के साथ इसे साहित्य-रचना से संबद्ध किया गया। इसकी प्रकृति से प्रायः अधिकांश

रचनाकार परिचित थे और वे अपने ढ़ंग से उसका उपयोग भी करते थे। हिन्दी मे इस पर नए ढ़ंग से विचार करने वालो मे ''मुक्तिबोध'' का स्थान प्रमुख है।

'फ़ैण्टेसी' की परिभाषा

'फ़ैण्टेसी' शब्द मनोविज्ञान, समाजविज्ञान और साहित्य से जुड़ा शब्द है। अनुशासनो की प्रकृति के अनुसार इसके अर्थ मे विविधता देखने को मिलती है। अतएव इसकी कोई निर्विवाद व्याख्या दे पाना सभव नही है। अधिकांश विचारको की दृष्टि से यह आन्तरिक पक्ष से जुड़ी पायी गयी है। इसी को ध्यान मे रखकर विद्वानो ने इसे परिभाषित करने का प्रयत्न भी किया है। मनोविश्लेषणवादी विवेचन के पश्चात इसको निश्चित आयाम प्राप्त हुआ, जिसमें फ्रायडीय मान्यता का प्रमुख स्थान है। मनोविश्लेषणवादी 'एरिक क्लिंगर' ने इसकी विशेषताओ को संक्षेप मे निरूपित किया है।

उनके मतानुसार - आन्तरिक अनुभव के अन्तर्गत कथा निर्मितियाँ, योजना निर्माण, अतीतानुचिन्तन, बीती हुई घटनाओं का विश्लेषण, आगामी स्थितियों की पूर्व कल्पना, स्वयं से प्रश्न करना, लघु प्रसारवाली विविध स्मृतियों में डूबना विशृंखल बिंबों के प्रति लगाव, स्वप्नानुभव आदि इसके घटक हो सकते हैं।''[6]

फ्रायड के अनुसार '''फ़ैण्टेसी' एक काल्पनिक प्रायोजित दृश्य या भाग है जो चेतन और अचेतन इच्छाओं को नाटकीय रूप से पूरी करता है, जिसमें कर्त्ता अभिनेता के रूप में होता है। 'फ़ैन्टाती' का निर्माण चेतन और अचेतन दोनो स्तरो पर होता है। चेतन 'फ़ैण्टेसी' में दिवास्वप्न और कल्पनाएँ आती हैं, जो इच्छाओं की पूर्ति करती हैं और जो चेतन मन की अधिक सहायक होती हैं क्योंकि दुबारा दोहराने से उनका एकीकरण कर लिया जाता है। अचेतन 'फ़ैण्टेसी' में वे रचनाएँ होती हैं जो अचेतन उत्पादों, स्वप्न और प्रतीको को सहारा देती हैं। इसके बावजूद अचेतन और चेतन 'फ़ैण्टेसी' को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता क्योंकि इच्छाएँ स्पष्ट होती हैं।''[7]

मनोविश्लेषक 'युंग' ने 'फ़ैण्टेसी' को मुक्त-साहचर्य का साधन स्वीकार किया है। मुक्त-साहचर्य का अर्थ है जाग्रत अवस्था में मन द्वारा यथार्थ पर सचेत रूप से ध्यान दिए बिना मुक्त भाव से एक बिंब के साथ दूसरे बिंब का साहचर्य। 'युंग' ने सामान्य मुक्त साहचर्य से निर्मित

बिंबो की छानबीन की और पाया कि स्वप्न अजस्त्र मुक्त साहचर्य का एक जटिल रूप हैं, जिसमे 'फैण्टेसी' का मुक्त प्रवाह पर्यावरण की भौतिक यथार्थता पा लेता है।[8]

'रोजर फाउलर' ने 'फ़ैण्टेसी' को ऐसी टेक्नीक माना है जिसमें स्वप्न या उपचेतन मन का शिथिल योगदान रहता है तथा इसके द्वारा तथ्यो को वक्रतापूर्ण ढ़ग से अभिव्यक्ति दी जाती है। लेखक उसका आरम्भ स्वाभाविक रूप से करता है, परन्तु उसे इस हद तक अतिशयोक्तिपूर्ण बना देता है कि वह 'फैण्टेसी' लगे और वाचक के लिए यह शर्त होती है कि वह उसका अतार्किक रूप-जाल स्वीकार कर ले।[9]

इन साइक्लोपिडिया आफ अमेरिकाना में कहा गया है कि 'फ़ैण्टेसी' एक तरह की काल्पनिक सोच है, जो कि सोचने वाले की इच्छाओ, निर्मित्तियों और अनुभवो द्वारा अधिक नियंत्रित होती है। परिस्थिति और वस्तुपरक दुनिया की अपेक्षा 'फ़ैण्टेसी' मे व्यक्ति दूसरे को संदेश नही भेजता, बल्कि मुख्य रूप से अपने को संदेश देता है। 'फ़ैण्टेसी' एक तरह का स्वप्न है। अधिकांश लेखक दिवास्वप्न को 'फ़ैण्टेसी' का मुख्य अंग मानते हैं। लेकिन रात में सोने पर आने वाले स्वप्न भी 'फ़ैण्टेसी' में ही वर्गीकृत किए जाते हैं। प्रायोगिक दृष्टिकोण से 'फ़ैण्टेसी' अनुयोगी लग सकती है, लेकिन शोध से यह सिद्ध हो चुका है कि, इस तरह की सोच जीवन की निराशाओ को निकालने के लिए एक महत्त्वपूर्ण द्वार का कार्य करती है। 'फ़ैण्टेसी' मे, निराश व्यक्ति अपने आप को इस तरह से व्यवस्थित कर लेता है मानो उसने अपने लक्ष्य को पा लिया है, अपनी इच्छित क्रिया की पूर्ति कर ली है तथा सभी बाधाओं को पार कर लिया है। 'फैण्टेसी' मे सोचने वाला कुछ-कुछ भौतिक एवं सामाजिक नियमों का खण्डन कर सकता है, ताकि वह घटनाओ को उस तरह से होने दे जैसा वह चाहता है।[10]

'फ़ैण्टेसी' को परिभाषित करते हुए 'इन साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज' मे एक महत्त्वपूर्ण वाक्य आरम्भ में ही मिलता है कि 'फ़ैण्टेसी' का अर्थ है, मानव की अपनी कल्पनाशक्ति, जो हवाई अवास्तविकता को एक जीता जागता स्वरूप और एक नाम देती है। इसके प्रति कवि और नाटक-कार विशेष रूप से आकर्षित रहे है।''[11]

'इंगलिश एण्ड इंगलिश' (1958) में 'फ़ैण्टेसी' की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि— ''किसी जटिल वस्तु या घटना की बिंबरूपात्मक ठोस प्रतीक कल्पना, चाहे वह वस्तु या

घटना हो या न हो अथवा चाहे स्वयं उन प्रतीको और बिंबो का अस्तित्त्व हो या न हो, 'फैण्टेसी' है।- जैसे दिवास्वप्न।''[12]

'साइमण्ड्स' के विचार में 'फ़ैण्टेसी' व्यक्तिगत संपर्को से जुड़ी होती है और आत्मकेन्द्रित होती है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने को अनुपयुक्त परिस्थितियो से बचाने का प्रयास करता है। यह पूर्णतः चेतन-प्रक्रिया नही है बल्कि अचेतन की हल्की पर्तों में ढ़ँकी हुई चेतन-प्रक्रिया है। इसीलिए इसे अवचेतन तथा अचेतन-प्रक्रिया कहा जा सकता है।[13]

'मेलानिक कलेन ने 'फ़ैण्टेसी को अवयस्क और परिपक्व अवस्थाओ मे विभाजित करते हुए कहा है कि 'फ़ैण्टेसी' शब्द व्यक्ति के अचेतन अनुभवो और संवेगों के आन्तरिक संसार से जुड़ा होता है। यह मनुष्य के व्यवहार का सबसे प्रभावी स्रोत है। अवयस्क की 'फ़ैण्टेसी' अपूर्ण इच्छाओ की पूर्ति से जुड़ी होती है। प्रारंभिक 'फ़ैण्टेसी' स्पष्ट रूप से आन्तरिक तर्क होती है, रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक दोनों रूपो में परिपक्व अवस्था के साथ 'फ़ैण्टेसी' का विस्तार होता है। यह साधारण एवं असाधारण दोनों तरह के मनुष्यों में वास्तविक रूप से देखने को मिलती है और यही व्यक्ति के अन्तर व्यक्तित्व के संबंधो को आकृति देती है।[14]

'विश्व साहित्य शब्दकोश' मे 'फ़ैण्टेसी' को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है - 'फ़ैण्टेसी' की क्रियाशीलता मे ऐसा वातावरण या चरित्र उपस्थित होता है जो मनुष्य जीवन की सामान्य परिस्थितियों में असम्भव माना जाता है ...... 'फ़ैण्टेसी' में भौतिक शास्त्र के नियमों की सीमा टूट जाती है। पशु या मानव जीवन का अंतर मिट जाता है। मनुष्य स्वभाव की आधारशिला हिल जाती है और काल्पनिक जीव समस्त काल्पनिक मूल्यों को अव्यवस्थित कर देते हैं।''[15]

'विलियम जेम्स' ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक - 'द प्रिंसिपल आफ साइकोलाजी' (1890) के 'स्ट्रीम आफ थाट' नामक अध्याय में 'फ़ैण्टेसी' से घनिष्ट रूप से संबंधित तथ्यों का वर्णन किया है- उन्होंने कल्पनाशीलता के उत्पादक और स्मरणीय पक्ष पर ध्यान देते हुए कहा है कि— '''फ़ैण्टेसी' सम्भवतः पल भर के लिए घटित होने वाले किसी उद्दीपक के प्रति एक अनुक्रिया है, जो निरंतर गतिमान विचार प्रवाह में एक जटिल साहचर्य प्रक्रिया को प्रेरित करती है।''[16]

'अशोक चक्रधर' ने 'फ़ैण्टेसी' के संबंध में अपना निष्कर्ष देते हुए लिखा है ''कविता का जन्म, प्रकृति और मनुष्य की जिजीविषा के बीच स्थित अंतर्विरोध से होता है। दूसरे शब्दो मे, कविता मनुष्य की मूल प्रवृत्तियो और अनुभवों के तनाव का परिणाम होती है। यह तनाव कवि को 'फैण्टेसी' की एक ऐसी काल्पनिक दुनियाँ बनाने के लिए विवश करता है, जो वास्तविक दुनिया से एक निश्चित और सक्रिय (फंक्शनल) संबंध रखती है। अर्थात् 'फ़ैण्टेसी' का अर्थ केवल 'कल्पना' नही है वरन् वह उसका एक निश्चित भैतिक आधार रखती है और जहॉ से वह जन्म लेती है उसी पर प्रभाव भी डालती है।''[17]

'शंभूनाथ' ने 'फैण्टेसी' का संबंध मूलतः व्यक्तिगत अवचेतन से माना है। उनके अनुसार— ''यह पूर्ण वयस्क मस्तिष्क में मिलती है। सृजनकर्त्ता 'फ़ैण्टेसी' का प्रयोग, सोचने की एक विशेष पद्धति के रूप में करता है। 'फ़ैण्टेसी' का प्रतीकात्मक लोक जहाँ तक व्यक्तिबद्ध मानसिकता से मुक्त होकर सामाजिक वस्तु-जगत को प्रस्तुत करने में सक्षम होता है, वहाँ तक वह सर्वव्यापक होता है, फिर भी अपने उद्देश्य और भावनाओं में सामाजिक होते हुए भी रूपगत स्तर पर वैयक्तिक ही होता है।.........'फ़ैण्टेसी' अतिकल्पना और यथार्थ की दो धुरियों में से किसी एक के निकट रहती है।''[18]

'जगदीश चन्द्र श्रीवास्तव' ने 'फ़ैण्टेसी' के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है - '''फ़ैण्टेसी' का संसार मनोरचना का संसार है। मन की ही तरह 'फ़ैण्टेसी' की रचनाशीलता जटिल, कौतुकपूर्ण और आकस्मिक हुआ करती है। इसका संबंध मन की स्मृत्यात्मक अनुचिन्तन से है, जो 'फ़ैण्टेसी' का विशिष्ट निजी लक्षण है।'' उन्होंने पुनः कहा है - '''फ़ैण्टेसी' में चेतन और अवचेतन के मनः स्तर घुले-मिले रहते हैं। चेतन का संबंध वर्तमान से है, जो स्मृतियों में डूबने के लिए बाध्य करती है और जिसका रूपान्तरण होता है। 'फ़ैण्टेसी' का यह आधारभूत सोपान है। अलस चिन्तन और तन्द्रित कल्पनाशीलता के द्वारा इस पर स्वप्निल आवरण पड़ने लगते हैं। फिर सारा कुछ एक स्वप्न में ढ़ल जाता है, जिमसे अतीत का अनुभव-पुंज (स्मृति) वैचित्र रूप संयोजनों के रूप में उभरता है।''[19]

हिन्दी साहित्य जगत में सर्वप्रथम 'फ़ैण्टेसी' के स्वरूप का सैद्धान्तिक एवं वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करते हुए 'मुक्तिबोध' ने ही उसकी सारगर्भित परिभाषा प्रस्तुत की।

'मुक्तिबोध' ने 'फैण्टेसी' को परिभाषित करते हुए 'कामायनी एक पुनर्विचार' मे लिखा है "'फैण्टेसी मे मन की निगूढ़ वृत्तियो का, अनुभूत जीवन-समस्याओं का, इच्छित विश्वासो और इच्छित जीवन-स्थितियो का, प्रक्षेप होता है।"[20]

उनका कहना है कि "'फ़ैण्टेसी' के अन्तर्गत कल्पना का मूल कार्य, मन के निगूढ़ तत्त्वो को प्रोद्भाषित करते ह, विभिन्न रंगो में उन्हें अपने समस्त सौन्दर्य के साथ उद्घाटित करना रहता है।"[21] "सृजनकर्ता के अन्तःकरण में, उसके यथार्थ जीवन परिवेश मे स्वयं उसके द्वारा अनुभूत किए गये जीवन-तथ्य एवं जीवन-अनुभव, जो चिरकाल से भावनात्मक वेदना के रूप मे संचित होते रहे, वे जीवन के विश्लेषणात्मक दृष्टि से युक्त होकर 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से काव्य मे अभिव्यक्त होते हैं। ..... 'फैण्टेसी' के माध्यम से लेखक आत्म जीवन को और उस आत्म-जीवन मे प्रतिबिम्बित जीवन-जगत् के बिंबो को' और तत्संबंध को अपने चिन्तन को, अपने जीवन निष्कर्षो को, प्रकट करता है।[22] इस प्रकार 'फ़ैण्टेसी' मे सृजनकर्ता के अपने विचार और व्यक्तित्व की प्रधानता होती है। जीवन-तथ्यों की प्रस्तुति मे उसका अपना दृष्टिकोण सन्निहित होता है इस तरह 'फ़ैण्टेसी' मे इच्छित विश्वासो का सन्निवेश हो जाता है और व्यक्तित्व की कुछ मूलभूत कमजोरियों या कमियो की भी मनोवैज्ञानिक मानसिक पूर्ति हो जाती है।"[23]

'मुक्तिबोध' मानते हैं कि "वास्तविक जीवन के यथार्थ चिन्तन व निष्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए संवेदना में ज्ञान-तत्त्व का भी अनुस्यूत होना आवश्यक है। इस सम्मिलन से .... "'फ़ैण्टेसी' के फलक पर, हृदय के गहन अन्तराल मे संचित अन्तर्वासी अनुभूतियाँ, ज्ञान-रूप मे उपस्थित जीवन-निष्कर्ष, आत्म-चरित्रात्मक स्वजीवन-जन्य अनुभव, आदि तेजस्वी होकर प्रोद्भासित हो जाते हैं।"[24]

उपर्युक्त सभी विद्वानों और ग्रन्थों की परिभाषा में कुछ न कुछ वैविध्य एवं नयापन होने के बावजूद बहुत सारी बातें उभयनिष्ठ हैं। एक ने 'फ़ैण्टेसी' को सीमित दायरे में रखा, तो दूसरे ने साहित्य मे उसके व्यापक प्रभाव और प्रयोग की ओर सकेत किया है। 'फ़ैण्टेसी' की प्रकृति एवं लक्षणो को देश-विदेश के सभी विद्वानों ने प्रायः एक स्वर में स्वीकारा है। इन सबके आलोड़न और मंथन से हमें सहज ही 'फ़ैण्टेसी' की परिभाषा का सूत्र उपलब्ध हो जाता है।

वास्तव में 'फ़ैण्टेसी' मनोरचना का संसार है। इसमें कल्पना तत्त्व की प्रधानता

होती है। 'फ़ैण्टेसी' का यथार्थ व्यक्ति के अन्तःकरण में पूर्व स्मृतियों या अनुभवों के आधार पर उसके आन्तर व्यक्तित्व द्वारा रचित यथार्थ है। कला सर्जना योग्य 'फ़ैण्टेसी' प्रायः परिपक्वस्था मे ही देखने को मिलती है। 'फैण्टेसी' मे सामाजिक एवं जीवन यथार्थ ही सजृनकर्ता के मानसिक कौशल द्वारा काल्पनिक संसार के रूप में पुनर्रचित होता है। अपने 'स्व' की मनोवृत्तियो के अनुसार वह, 'फ़ैण्टेसी' मे सामाजिक नियमो का खण्डन करते हुए कुछ नया भी प्रस्तुत कर सकता है। साहित्य की 'फ़ैण्टेसी' एक व्यापक युग-सापेक्ष, सामाजिक सदर्भ भी रखती है। इसमें चेतन और अचेतन मन दोनों का योगदान अपेक्षित है। सृजन की 'फ़ैण्टेसी' केवल कपोल कल्पना न होकर, अभीष्ठ विषय की प्रस्तुति का सचेतन प्रयास भी है। इसीलिए 'फ़ैण्टेसी' के निर्माण में विवेक के नियंत्रण को एकदम नकारा नही जा सकता। 'फ़ैण्टेसी' वस्तुगत स्तर पर सामाजिक होते हुए भी रूपगत स्तर पर वैयक्तिक होती है। 'फ़ैण्टेसी' अपूर्ण इच्छा की पूर्ति के साथ-साथ मानव विकास के स्वप्नो (भविष्य की इच्छाओं) की मानसिक पूर्ति का उत्तम साधन है।[25]

'फ़ैण्टेसी' की प्रकृति और स्वरूप विश्लेषण

कविता की रचना कवि द्वारा की जाती है। जो अंतर्विरोध इसको जन्म देता है, वह एक विशेष प्रकार का अंतर्विरोध है। जो समाज को परिचालित करता है और जिसका सामना लोगो के वास्तविक जीवन और वास्तविक चेतना मे किया जाता है। वह है मनुष्य की लालसा और प्रकृति की अनिर्वायता के बीच का अंतर्विरोध। कविता का उद्‌भव कवि की सहजवृत्ति और अनुभव के बीच के अंतर्विरोध से होता है। यही अंतर्विरोध कवि को ''.फ़ैण्टेसी'' की दुनियाँ रचने को प्रेरित करता है, जिसका उस यथार्थ जगत से एक निश्चित और कार्य मूलक संबंध है, जिसका कि यह प्रस्फुरण है।[26]

'फ़ैण्टेसी' की दुनियाँ रचने के लिए कवि को जिस अन्तर्विरोध से प्रेरणा मिलती है उसको रेखांकित करते हुए 'क्रिस्टोफर काडवेल' 'फ़ैण्टेसी' के संबंध में मनोविश्लेषण और धर्म के क्षेत्र की व्याख्याओं का गम्भीर परीक्षण करते हैं और बिंबों के प्रवाह को 'फ़ैण्टेसी' कहते हैं। ''हमारा संबंध बिंबों (अनिवार्य रूप से दृश्य ही नहीं) के प्रवाह से है, जिन्हें मैं स्पष्ट इन्द्रियबोध या स्मृति से अलग करने के लिए ''.फ़ैण्टेसी'' की संज्ञा देता हूँ। हम इसके निम्नलिखित

वर्गीकरण का प्रयोग करेगे। (1) स्वप्न (2) दिवास्वप्न (3) मुक्त साहचर्य (4) निर्देशित चिंतन और (5) निर्देशित अनुभूति।"[27]

इसमें से एक-एक वर्ग का विश्लेषण करते हुए काडवेल उसकी वास्तविकता का गहन परीक्षण करते हैं। काडवेल मार्क्सवादी विचारक हैं इसलिए व्यक्ति के सामाजिक और आर्थिक संबंधो को भी विशेष महत्त्व देते हैं। वे स्वप्न और 'फ़ैण्टेसी' की तुलना करते हुए लिखते है कि अपने आदिम चरित्र और विचित्र लक्षणों के कारण स्वप्न, "फ़ैण्टेसी" की प्रकृति और चिन्तन की भूमिका पर रोशनी डालते हैं।

स्वप्न मे कतिपय ऐसे लक्षण होते है जो इसे दूसरे प्रकार के विचारो से अलग करते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण यह तथ्य है कि इसमें विचार-संघनित, स्थानांतरित और रूपांतरित इंद्रियबोधों के स्मृति-बिंब, वास्तविक पर्यावरण का स्थान ले लेते हैं। स्वप्न का यह विशिष्ट लक्षण है। 'फैण्टेसी' के अन्य रूपो में चिन्तक अस्पष्ट रूप में अपने परिवेश के प्रति सचेत बना रहता है और अपने को अपनी मुक्त कल्पना की रचनाओं मे अवस्थित नहीं करता वह उन्हे आसन्न परिवेश का दर्जा नहीं देता क्योकि— स्वप्न देखने वाला ऐसा करता है। अतः इनमें इतनी प्रखरता और पूर्णवास्तविकता आ जाती है कि, जैसी आसन्न परिवेश मे हमेशा उस समय पायी जाती है जब वह हमारे अवधान का विषय होता है। विचारों का यह भौतिकीकरण अंतर्मुखता का परिणाम है। यह पर्यावरण से ऐन्द्रिक अवधान को हटा लेने का परिणाम है। यह अंतर्मुखता ही स्वप्न बुनती है।

स्वप्नगत विचारों की भौतिकता और स्पष्टता केवल सापेक्ष होती है। यदि कोई स्वप्न मे देखे चेहरों, रूपो, शब्दो और दृश्यो को फिर याद करे तो ये सभी अस्पष्ट, धुंधले, रंगहीन छिद्रपूर्ण, अनिश्चित और अधूरे प्रतीत होते हैं। चूँकि, उस समय उनसे टकराने के लिए कोई ऐन्द्रिक यथार्थ विद्यमान नहीं रहता। अतः, ये पर्यावरण जैसी हैसियत और प्रखरता प्राप्त कर लेते है। अवधान का यह संकोचन ही है जो स्वप्न की सामग्री को यथार्थता और प्रखरता प्रदान करता है न कि इसकी आन्तरिक सुसंगति। इसके विपरीत स्वप्न की सामग्री अव्यवस्थित और खण्डित होती है।[28] स्वप्नों का परिक्षण करते समय हमें पता चलता है कि 'फ़ैण्टेसी' के अन्य सभी रूपों की अपेक्षा यह गैर प्रतीकात्मक और तर्क से परे होता है।

स्वप्न पर भी बाह्य जगत के प्रभाव को 'काडवेल' इस रूप में प्रस्तुत करते हैं - स्वप्न चैतन्य होते हैं। अब तक हम देख आए हैं कि चेतना की आधार सामग्री समाज-प्रदत्त होती है। भाषा-शिक्षा और सामाजिक संपर्क से मनुष्य की सहज अनुक्रियाएँ साझे जगत और साझे अहम् द्वारा अनुकूलित हो जाती है और इन्हे ही चेतना का दर्जा दिया जाता है। इसलिए स्वप्न मे भी सामाजिक अहम् सामाजिक जगत मे मनुष्य की इच्छाओं की काल्पनिक तृप्ति करता है।''[29]

मनोवैज्ञानिक प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि शिशु क्रीड़ाएँ और स्वप्न दर्शन 'फ़ैण्टेसी' से गहरे जुड़े हुए हैं। क्रीड़ा-भाव और 'फ़ैण्टेसी' अभिन्नीकृत प्रतीत होते हैं और समानान्तरशाली पथों पर संगति, जटिलता और यथार्थबोध के साथ किशोरावस्था तक विकसित होते रहते हैं। किशोरावस्था आने पर क्रीड़ाभाव कम हो जाता है और 'फ़ैण्टेसी' प्रखरता के साथ विकसित होने लगती है। स्वप्न और 'फ़ैण्टेसी' व्यक्ति की दिनचर्या के निरन्तर सक्रिय पहलू प्रतीत होते हैं, 'फ़ैण्टेसी' अनजाने ही निद्रा के आरम्भ होने पर स्वप्न दर्शन में घुल-मिल जाती है और जाग्रत अवस्था मे पुनः अपने स्वतन्त्र अस्तित्त्व में आ जाती है।[30]

'फ़ैण्टेसी' के सिद्धान्त को प्रभावित करने वाले क्रीड़ा और स्वप्न के प्रमुख धर्मो का उल्लेख करते हुए 'जगदीश चन्द्र' ने लिखा है - विकासात्मक दृष्टि से विशिष्ट आयु-सोपानो पर क्रीड़ा और स्वप्नो मे कतिपय प्रारूपो की अक्सरियत (फ्रीक्वेंसी) रहा करती है। ये प्रारूप उन विषयो की ओर इंगित करते है जिनसे उस आयु वर्ग के लोग विशिष्ट रूप से संबंधित माने जाते हैं। वैयक्तिक मामलों में स्वप्नों के वस्तु एवं विषय, स्वप्न द्रष्टा के अधूरे कामो और उन लक्ष्यों जिनकी पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होने के बावजूद उपलब्धि अनिश्चित रहा करती है, पर प्रकाश डालते हैं। इन्हें हम जीवन के सक्रिय या जीवित संदर्भ कह सकते हैं, संघनात्मक दृष्टि से क्रीड़ा और स्वप्न अप्रत्याशित और अनियमित रूप में अपने को प्रकट करते हैं। वे बड़ी आसानी से धुरियां बदल देते हैं और अपनी क्रमिकता व संगति में ये बहुविध होते हैं। कुछ स्थितियों में इनका आकस्मिक रूप से वस्तु विषयात्मक रूपान्तरण अथवा अप्रत्याशित संयोजनों में इनके तत्त्वों का सम्मिश्रण बड़े सशक्त प्रतीकात्मक रूपों को जन्म देता हैं। परिभाषा के स्तर पर क्रीड़ा और स्वप्न समस्याओं का समाधान देने वाले नहीं माने जा सकते किन्तु इन्हें सामान्यतः समस्याओं के आकस्मिक समाधान में योगदान करने वाला माना जाता है।[31]

स्वप्न और 'फ़ैण्टेसी' के अवयव मे बहुत सी समानताएँ हैं। 'फ़ैण्टेसी' के वस्तु और रूप का निर्माण बहुत कुछ स्वप्न की प्रविधि जैसा होता है। 'फ़ैण्टेसी' की प्रकृति भी स्वप्न जैसी निर्बाध होती है। स्वप्न में नितान्त वैयक्तिकता होती है। 'फ़ैण्टेसी' का विषयवस्तु के सामाजिक होते हुए भी, उसमें समाधान और विचार फ़ैण्टेसीकार का वैयक्तिक ही होता है। स्वप्न दृश्य बिंबो के सहारे मानस पटल पर आते हैं और 'फैण्टेसी' के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। काव्य 'फैण्टेसी' मे वस्तु-तत्त्व की अभिव्यक्ति के लिए शब्द चित्रों बिबो का प्रयोग होता है। स्वप्न की तरह इसमे भी पर्याय अव्यक्त होता है। जिस प्रकार स्वप्न के यथार्थ या उसमे निहित तथ्य को समझने के लिए उसके प्रतीको को विश्लेषित करना होता है उसी प्रकार 'फ़ैण्टेसी' का अव्यक्त पक्ष उसके प्रतीको मे निहित रहता है। अतः 'फ़ैण्टेसी' के वास्तविक मर्म को प्रतीकों द्वारा ही समझा एवं ढूंढ़ा जा सकता है। 'फ़ैण्टेसी' के प्रतीक और बिंब स्वप्न जैसे दुरुह नही होते वे प्रत्यक्ष रूप मे अभिप्राय युक्त होते हैं, स्वप्न की ही भाँति अतार्किकता का प्रयोग होता है। 'फ़ैण्टेसी' के सभी रूपों की बुनावट में उसके उपरोक्त प्रविधि को ही प्रयोग में लाया जाता है। 'फ़ैण्टेसी' के बहुत से मोड़ हमारी वाल्यावस्था की कल्पनाओं पर आधारित होते हैं। उदाहरण स्वरूप— परिवर्तन अतिकाल्पनिक दृश्य तिलिस्म–भवन आदि को लिया जा सकता है।

निद्रावस्था के स्वप्न और कला में प्रयुक्त स्वप्न 'फ़ैण्टेसी' में अन्तर भी होता है। निद्रावस्था का स्वप्न विवेक शून्य होता है, अतः वह काव्य के लिए उपयोगी नहीं होता। जब हम 'फ़ैण्टेसी' का प्रयोग करते हैं, तो उसकी प्रकृति को बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। इसका स्वरूप सहज स्वच्छन्द होता है। लेखक अधिक से अधिक तटस्थ रहकर उसकी अभिव्यक्ति का प्रयत्न करता है। फिर भी उस पर उसके अभिप्राय की स्पष्ट छाप होती है।

कुछ लोग स्वप्न को इच्छापूर्ति का साधन नहीं मानते, पर उनकी यह मान्यता त्रुटिपूर्ण है। स्वप्न, विरेचन और परिष्कार द्वारा व्यक्तित्व में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। ये सुखद और दुःखद दोनों हो सकते हैं, पर अपनी प्रकृति के अनुसार व्यवस्थापन का कार्य करते रहते हैं।

स्वप्न का व्यक्त पक्ष उसकी बिंबात्मक 'फ़ैण्टेसी' होता है और उसका अव्यक्त पक्ष उसमें निहित यथार्थ या संदेश होता है। यह यथार्थ या संदेश स्वप्न देखने वाले के यथार्थ,

व्यक्तित्व एवं इच्छाओ से संबंधित होता है। ध्यानपूर्वक इनका अध्ययन करने से उस व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषता के बारे मे जाना जा सकता है।

मनोवैज्ञानिको ने भी माना है कि 'फ़ैण्टेसी' कई रूपों मे सक्रिय होती है और इसमे सबसे महत्त्वपूर्ण रूप 'स्वप्न का रूप' है। स्वप्न मे प्रायः वास्तविक दुनियॉ की जगह एक ऐसी दुनियॉ ले लेती है जो स्वतन्त्र और स्वायत्त सी लगती है। अतः स्वप्न के आदिम स्वरूप और विचित्र रूप को जानने के बाद ही हम इस स्थिति मे हो पायेगे कि 'फ़ैण्टेसी' की प्रकृति और निर्माण मे विचारों की भूमिका को समझ सकें।

यद्यपि विचार और स्वप्न दोनो ही मानसिक प्रक्रियाएँ हैं किन्तु स्वप्न की कुछ ऐसी निजी विशेषताएँ हैं, जो उसे विचार से अलग करती हैं। इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि, स्वप्न मे वास्तविक परिवेश, स्मृति बिंबों और स्मृति चित्रो मे रूपायित होता है। किन्तु इन स्मृति बिंबों और स्मृति चित्रो को हम एकान्ततः अमूर्त और यथार्थ रहित नही मान सकतें, क्योकि किसी न किसी रूप मे हम इन्हें बाहरी जीवन से ही प्राप्त करते हैं। यह बात अलग है कि स्वप्न मे एक के बाद एक आने वाले इन बिबो के बीच मे कोई तार्किक क्रम या संगति नही होती। स्वप्नो के विश्लेषण में इन्हे जडमूल-हीन या अमूर्त वस्तु नहीं माना जा सकता और न ही यह माना जा सकता है कि स्वप्नो का सामाजिक यथार्थ से कुछ लेना देना नहीं है क्योंकि ये स्वप्न द्रष्टा के उत्कृत प्रेरक क्षणों से आविर्भूत होते हैं। यद्यपि यह सही है कि ये स्वप्नद्रष्टा के उत्कट आवेग के क्षणों की देन हैं पर यह भी सही है कि स्वप्न-'फ़ैण्टेसी' अथवा मुक्त-साहचर्य पूर्णतः विचार शून्य नही होते। काडवेल का कहना है कि स्वप्न में जिस व्यक्ति के अन्दर स्वप्न-व्यापार चलता है वह एक सामाजिक व्यक्ति होता है। बावजूद इसके कि स्वप्न में वह समाज के बहुत सारे विधि-निषेधों से मुक्त होता है, फिर भी स्वप्न की स्थिति उसे समाज-निरपेक्ष नहीं बनाती और न ही वह व्यक्ति स्वप्न की स्थिति में भी पूर्णतः संस्कारमुक्त होता है। सम्भवतः इसी अर्थ में 'काडवेल' स्वप्न को भी सजग मानसिक व्यापार मानते हैं।[32]

मनोविज्ञान में 'फ़ैण्टेसी' और स्वप्न के साथ व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों पर बार-बार बल दिया जाता रहा है और उसके सामाजिक संस्कारों को कम महत्त्व दिया जाता रहा है। वस्तुतः जिन्हे हम मूल प्रवृत्ति कहते हैं वह लम्बे सामाजिक सम्पर्क के बाद आदिम मूल प्रवृत्ति से भिन्न

हो जाती है। ऐसा 'काडवेल' ने स्थापित किया है।[33]

लेकिन इसके साथ ही हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि स्वप्न यथार्थ का पर्याय नही है। अपनी प्रकृति से स्वप्न बाह्य यथार्थ और आन्तरिक यथार्थ से दुहरे रूप में अलग रहता है। यह दोनो मे से किसी भी यथार्थ के नजदीक नहीं पहुँच पाता अपितु दोनो ही के प्रति ढुलमुल रहता है। इसका कारण यह है कि जिस यथार्थ से एक के तन्तुओं का निर्माण होता है उसका आन्तरिक चरित्र मनुष्य की मूल प्रवत्तियो के काफी निकट होता है और सजग एवं सचेत व्यक्ति के द्वारा अनुभूत बाह्य यथार्थ से वह काभी दूर जा पड़ता है। उसके चिंतन का धरातल उस बच्चे जैसा हो जाता है, जिसमे मानसिक परिपक्वता का अभाव होता है। साथ ही व्यक्ति को के इस अर्थ मे भी यथार्थ से अलग कर देता है कि इसके कारण व्यक्ति और विषय के मध्य एक बहुत बड़ा अन्तराल उत्पन्न हो जाता है। कहा जा सकता है कि स्वप्न का चरित्र न केवल प्रतीक-शून्य बल्कि विवेक-शून्य भी होता है। जबकि दूसरी ओर 'फ़ैण्टेसी' में इन दोनों बातों की संभावनाओं के लिए गुंजाइश रहती है। वह न तो प्रतीक-शून्य होता है न ही विवेक-शून्य।[34]

इस प्रकार 'फ़ैण्टेसी' मूलतः यथार्थोन्मुख होती है। यह जिस संरचना-प्रक्रिया से गुजरती है, उसमें यह अपने निर्माण की स्वयंगत संरचनाक्रिया के स्वरूप एवं शिल्प को भी प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में एक की सामान्य प्रक्रिया से भिन्न स्तर पर आकर 'फ़ैण्टेसी' अनुभव-जगत को भी रूपान्तरित करती है। यह सामाजिक वास्तविकता के चरित्र को प्रभावशाली ढ़ंग से बदल सकती है। 'फैण्टेसी' की संरचना-प्रक्रिया वस्तुतः यही हो सकती है।

इसके पहले हमने माना है कि 'फ़ैण्टेसी' का संसार मनोरचना का संसार है। मन की ही तरह 'फ़ैण्टेसी' की रचनाशीलता जटिल, कौतुकपूर्ण और आकस्मिक हुआ करती है। 'फ़ैण्टेसी' में चेतन और अचेतन के मनःस्तर घुले-मिले रहते हैं। चेतन का संबंध उस वर्तमान से है जो स्मृतियों में डूबने के लिए बाध्य करता है जिसका रूपान्तरण होता है। 'फ़ैण्टेसी' का यह आधारभूत सोपान है अलस चिन्तन, तन्द्रिल कल्पनाशीलता के द्वारा इस पर स्वप्निल आवरण पड़ने लगता है। फिर सारा कुछ स्वप्न एक में ढ़ल जाता है, जिसमें अतीत का अनुभव पुँज (स्मृति) वैचित्र्यपूर्ण संयोजनों के रूप में उभरता है। यही 'फ़ैण्टेसी' है।

जाग्रतावस्था में देखा जाने वाला स्वप्न 'दिवास्वप्न' कहलाता है। दिवास्वप्न प्रायः

सभी व्यक्तियो की विशेषता होती है। दिवास्वप्न इच्छा-पूर्ति का सबसे समर्थ साधन है। दिवास्वप्न मे स्वप्न और मुक्त-साहचर्य की तुलना में चेतन मन तुलनात्मक दृष्टि से अधिक जाग्रत और सक्रिय होता है। इसके निर्माण मे अवचेतन के साथ चेतन भी योग देता है। इसी कारण स्वप्न की तुलना मे यहाँ एक नियंत्रण नियमानुशासन और व्यवस्था परिलक्षित होनी है। यहाँ स्वप्न के खण्डित स्वरूप का अभाव होता है। इसके मर्म या अभिप्राय स्पष्ट रूप से समझ में आते हैं। यह कल्पनात्मक होते हुए भी 'संभावना के दायरे मे होता है।'[35]

मनोविज्ञान के अनुसार दिवास्वप्न देखने वाले के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं और वास्तविकता या प्रायोगिक तौर से संबंधित नहीं होते। ज्यादातर मामलों में दिवास्वप्न काल्पनिक सफलता की संतुष्टि करते है। वास्तविक अनुभव नहीं कराते।[36]

'फ्रायड' ने दिवास्वप्न को इच्छापूर्ति का साधन माना है। कुछ बड़े स्पष्ट कल्पना जाल 'दिवास्वप्न कहलाते हैं। ये दिवास्वप्न तो सचमुच इच्छाओ की पूर्ति ही हैं। ये आकांक्षा पूर्ति या कामुक इच्छाओं की पूर्ति हैं, जिन्हें हम इस रूप में पहचानते हैं, पर वे विचार में पहुँच जाती हैं जिनकी सजीव कल्पना की जाय, पर वे कभी भी मतिभ्रमात्मक अनुभवों का रूप नही लेतीं हैं।[37] इससे दिवास्वप्न की दो विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं पहली- इसकी पहचानने योग्य सजीव कल्पना होती है दूसरी ये मतिभ्रमात्मक अनुभव नही होती।

दिवास्वप्न को 'कॉड़वेल' 'फ़ैण्टेसी' का अपेक्षाकृत सभ्य रूप कहते हैं दोनों की तुलना करते हुए वे लिखते हैं - ''दिवास्वप्न की चरित्रगत विशेषता यह है कि यह 'फ़ैण्टेसी' का अपेक्षाकृत अधिक सभ्य रूप है। यह एक वैयक्तिक कल्पक यथार्थ के रूप में ठीक उसी तरह मनुष्य की अभिव्यक्ति है जैसे स्वप्न मनुष्य के कल्पक यथार्थ की आवश्यकता का स्वर है। एक अपने को बदलने से मनुष्य द्वारा प्रकृति पर प्राप्त प्रभुत्व को अभिव्यक्त करता है, दूसरा प्रकृति को बदलने से मनुष्य द्वारा अपने ऊपर प्राप्त प्रभुत्व को व्यक्त करता है। दिवास्वप्न में मनुष्य अपने को यथार्थ के साथ अनुकूलित करता हुआ अपने साथ प्रयोग करता रहता है। स्वप्न मे वह यथार्थ को अपने अनुकूल बनाता हुआ प्रयोग करता रहता है। ये दोनों लक्षण अपने से संबंधित कलाओ मे भी पहुंच जाते हैं।''[38]

दिवास्वप्नो को रचनाकार अपने काव्य-रचना के लिए प्रयुक्त कर सकते हैं। उन्हें

अपने दिवास्वप्नो के व्यक्तिगत संदर्भ को तलाश कर, उसे ऐसा रूप प्रदान करना पड़ता है कि वह सर्वमान्य और उपयोगी सिद्ध हो सके। 'फ्रायड' ने दिवास्वप्न की साहित्यिक भूमिका पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "लेखक अपने दिवास्वप्नो का रूप बदलकर या उन्हे छोटा करके उनमे से ही वे स्थितियाँ पैदा करता है जो वह अपनी कहानियों उपन्यासो और नाटको के रूप मे पेश करता है, पर दिवास्वप्न का नायक सदा माध्यम (पात्र स्वय) होता है। वह या तो प्रत्यक्ष रूप मे कल्पित होता है या किसी और के साथ प्रायः एक रूप हो जाता है।"[39]

'फ़ैण्टेसी' वैयक्तिक रूप से प्रकट होने वाला दिवास्वप्न हो अथवा सार्वजनिक रूप से प्रकट कराया जाने वाला कथात्मक कल्पनाशील उत्तर, इतना निश्चित है कि 'फ़ैण्टेसी' के अन्तर्गत मनुष्य बीती हुई घटनाओं को अपनी कल्पना शक्ति से विस्तार देता है। यह कल्पना प्रायः चाक्षुष (विजुअल) होती है पर मौखिक या श्रुत भी हो सकती है। 'फ़ैण्टेसी' प्रायः आन्तरिक घटनाओ का एक ऐसा सामंजस्य है, जिसमे एक नयी स्थिति, संभावना, अपनी स्वयं की भूमिका अथवा अन्य प्रकार के व्यवहारों की शृंखला को व्यक्ति अपने मानस पटल पर अंकित कर लेता है। 'फ़ैण्टेसी' व्यक्ति की उस उल्लेखनीय क्षमता की ओर इंगित करती है जिसके द्वारा मनुष्य प्रयत्न करके अपने सपनों की दुनियाँ को 'अगर ऐसा हो सकता' के रूप में बनाता है। ये सम्भव है कि अतीत में व्यक्ति की यह क्षमता अधिक विकसित न रही हो और वह अपनी खुद की क्षणभंगुर कल्पनाशीलता या संक्षिप्त दिवास्वप्नों को सजीव दृश्यो के रूप में संगुणों अथवा लक्षणों के रूप में या देवात्माओं के प्रकट होने के रूप में मानता रहा हो। ये भी संभव है कि अपने रात्रिकालीन स्वप्नों की तुलना मे अपनी इस क्षणभंगुर कल्पनाशीलता के प्रति उसने अधिक प्रतिक्रिया व्यक्त की हो। इस कल्पनाशीलता का विस्तार ही दिवास्वप्नों के रूप मे परिणित होता है। ऐसे विस्तृत दिवास्वप्नों या व्याख्यात्मक अथवा उपदेशात्मक उद्देश्यों हेतु प्रयुक्त 'फ़ैण्टेसी' की साहित्यिक अभिव्यक्ति भी हुई।[40]

मनोविज्ञान के अनुसार जब व्यक्ति की वांछित इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति नही होती तो वह उसे अपनी असफलता समझने लगता है। असफलता की अनुभूति उसके चेतन तथा अचेतन स्तर पर अंतर्द्वन्द उत्पन्न कर देती है, फलस्वरूप समायोजन की प्रक्रिया प्रभावित होती है। कुण्ठा, अंतर्द्वन्द और दबाव से चिन्ता उत्पन्न होती है। यदि चिन्ताएँ निरन्तर बनी रहीं

और उनका निराकरण न हो तो तनावपूर्ण स्थिति व्यक्ति को घेर लेती है। इस तनाव से मुक्ति पाने के लिए वह अप्रत्यक्ष रूप मे चेतन या अचेतन स्तर पर विभिन्न प्रकार की सुरक्षात्मक प्रक्रियाओ को अपना लेता है, जिन्हें मनोरचनाएें कहा जाता है। मनोरचनाएँ अहं के द्वारा अहं की सुरक्षा के लिए अचेतन स्तर पर किए गये सुरक्षात्मक प्रयास है। उन्हे अपनाने से तनाव कम होता है। असंतुलन की स्थिति समाप्त होती है और समस्याओं का एक तात्कालिक हल निकल आता है। ऐसी ही एक मनोरचना है 'फ़ैण्टेसी' अथवा दिवास्वप्न।

'फ़ैण्टेसी' अथवा दिवास्वप्न से ही कभी-कभी किसी दमित आकांक्षा को कुछ हद तक संतुष्ट किया जाता है, 'फ़ैण्टेसी' ज्यादातर लोगों में पायी जाती है और किशोरावस्था के दौरान ज्यादा प्रमुख होती है। समायोजन स्थापित करने के माध्यम के रूप मे यह यदा–कदा ही रचनात्मक होती है और व्यक्ति के प्राथमिक द्वन्द्व को प्रायः अनसुलझा ही रहने देती है। दूसरी ओर अगर यह बहुत ज्यादा नहीं की गयी है तो सफलता, यौन-संबंधी या तत सबंधी दिवास्वप्न कुछ हद तक संतुष्टि प्रदान कर देते हैं। एक व्यक्ति जिसे किसी सामाजिक परिस्थिति मे कभी लज्जित होना पड़ता है, वह खुद को थोड़ा आरामदेह महसूस करता है, अगर वह कुछ क्षण तक ऐसी 'फ़ैण्टेसी' में अपने आप को संलग्न कर लेता है जिसमें वह, वे सारी चीजें सोचता है जो उस विशेष सामाजिक परिस्थिति में वह कर या कह सकता होता है।[41] मनोवैज्ञानिकों का अनुमान है कि लगभग 95 प्रतिशत किशोर 'फ़ैण्टेसी' में कुछ समय तक संलग्न रहते हैं। 'फैण्टेसी' मे उनके प्रिय विषय होते हैं, शैक्षिक प्रगति, विपरीत लिंग के व्यक्तियों के मामले मे सफलता और भविष्य में प्रसिद्धि तथा धन-दौलत इत्यादि।[42]

मुक्त-साहचर्य अर्थात जाग्रत-अवस्था में मन द्वारा यथार्थ पर सचेत रूप से ध्यान दिए बिना ही मुक्त-भाव से एक बिंब के साथ दूसरे बिंब का साहचर्य मनोविज्ञान का प्रमुख सिद्धान्त है। 'युंग' मुक्त-साहचर्य को निर्दिष्ट चिन्तन अर्थात् ऐसे चिन्तन से उल्टा मानते हैं जो एक तर्क-संगत मार्ग पर अर्थात् यथार्थ के हमारे चेतन ज्ञान से संगति रखने वाले मार्ग पर चलने को बाध्य होता है। मुक्त-साहचर्य में चेतना का सहयोग नगण्य होता है। जागृत अवस्था में ध्यान करने पर भी 'फ़ैण्टेसीकार' अपने पर्यावरण के प्रति चैतन्य नहीं रहता, उसकी सोच और कल्पना पर अवचेतन हावी रहता है। इस तरह की 'फ़ैण्टेसी' की सृष्टि अवचेतन के नियमों के अधीन रहती

है। दूसरे शब्दो मे ऊपरी तौर पर स्वतन्त्र और स्वच्छन्द दिखने वाली 'फ़ैण्टेसी' परोक्ष रूप मे अवचेतन मन के नियंत्रण मे होती है परन्तु यहाँ हमारी चेतना भी कुछ सजग रहती है, इसी कारण यह स्वप्न की तरह खण्डित, अस्पष्ट और ऊलजलूल नहीं प्रतीत होती।[43]

मुक्त-साहचर्य स्वतःस्फूर्त लेखन या आटोमैटिक राइटिंग के निकट है। 'काडवेल' ने मुक्त-साहचर्य की कलात्मक भूमिका के बारे मे लिखा है। अति यथार्थवादी अपनी शिल्पविधि को मुक्त-साहचर्य पर आधारित करता है। इस तरह यह एक स्वतः स्फूर्त कलात्मक कृति की उपलब्धि करने की आशा करता है।[44]

'फ्रायड' के शिष्यों ने मनोविज्ञान को नयी दिशा दी, जिसमें विश्लेषण्वादी मनोविज्ञान के प्रणेता 'एडलर' सर्वप्रमुख हैं। 'फ़ैण्टेसी' के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए 'जुंग' ने उसे अभिप्रेरित चिन्तन के आमने-सामने रखकर स्पष्ट करना चाहा है। 'फ़ैण्टेसी' उनके लिए मनोविज्ञान की भाषा मे मुक्त-साहचर्य का पर्याय है और जैसा कि इस संज्ञा से स्पष्ट है, मुक्त-साहचर्य मे मन को चिन्तन के दबाव से मुक्त रखा जाता है। इस प्रकार यह अवरोधहीन असंगत बिंबो का समुच्चय होता है। इसके विपरीत अभिप्रेरित चिन्तन पर विवेक का दबाव होता है, जो उसे एक निश्चित दिशा मे चलने को बाध्य करता है। यह निश्चित दिशा हमारे यथार्थ ज्ञान के अनुरूप होती है। यह ज्ञान हमारी सजग मानसिक क्रिया का परिणाम होता है, जिसे हम सामान्य इन्द्रियानुभव के माध्यम से प्राप्त करते हैं। इसीलिए अभिप्रेरित चिन्तन एक प्रकार का वैज्ञानिक चिन्तन है और इसके द्वारा हम अपने वस्तु-जगत के अनुभव को सामाजिक रूप प्रदान करते है, यानि उस स्थिति में हमारा अनुभव एक साथ सामाजिक भी होता है और वस्तु मूलक भी।[45]

'युंग' की 'फ़ैण्टेसी' की इस व्याख्या को काडवेल ने अंशतः ही स्वीकार किया है क्योंकि उनकी दृष्टि में यह एक आयामी है। इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने इसमें अभिप्रेरित अनुभूति को जोड़ने का आग्रह किया है। उनके अनुसार 'चिन्तन-प्रक्रिया' और अनुभव-प्रक्रिया को अलग नही किया जा सकता है। जहाँ अभिप्रेरित चिन्तन विवेक-प्रक्रिया का नियंत्रण स्वीकार करता है, वहाँ अभिप्रेरित अनुभूति का नियंत्रण मनुष्य का मन करता है, और वह सौन्दर्य के सामाजिक प्रतिमान को स्वीकारता है।

निर्दिष्ट चिंतन को 'युंग' ने विवेकपूर्ण एवं सुविचारित निश्चित एवं यथार्थ दिशा में

निर्दिष्ट किया जाने वाला चिंतन माना है। 'काडवेल' के अनुसार निर्दिष्ट चिंतन वैज्ञानिक चितन है। निर्दिष्ट चितन द्वारा हम बाह्य यथार्थ के अपने अनुभव को सँवारकर एक सामाजिक उत्पादन बना देते हैं।[46]

आधुनिक युग मे रचनाकार यथार्थ को भी 'फ़ैण्टेसी' शैली मे प्रस्तुत करना चाहता है। इस शिल्प के द्वारा यथार्थ को अभिव्यक्ति देने पर वह बहुत सी परेशानी से बच जाता है। निर्देशित चितन भी यथार्थ और वैज्ञानिक चिन्तन है। यह चिंतन हमारे दैनिक जीवन के क्रिया-कलापो से संबंधित होता है।

निर्देशित चिंतन और निर्देशित अनुभूति को 'फ़ैण्टेसी' मे अभिव्यक्त करने के लिए रचनाकार के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह इन्हें एक रहस्य और भ्रम का आवरण प्रदान करे जिससे कि यथार्थ एक कल्पनामय स्वप्निल रूप ग्रहण कर ले और उसमे निहित प्रतीको एवं संकेतो के माध्यम से वास्तविक यथार्थ व्यक्त हो।

यथार्थ को सीधे-सीधे उसी रूप मे व्यक्त करने पर यह यथार्थवादी शिल्प और प्रत्यक्षबोध के निकट पहुँच जाता है। यह प्रविधि विशेष रूप से गद्य में प्रयुक्त होती है। परन्तु जब रचनाकार उसे सार-भूत या प्रतिनिधिक रूप में अपनी कृति मे प्रकट करता है तो, वह जागृत 'फैण्टेसी' के रूप में व्यक्त होता है। रचनाकार जब अपने निर्दिष्ट चिन्तन और निर्दिष्ट अनुभूति को अपने किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'फ़ैण्टेसी' के रूप में निर्देशित और प्रवाहित करता है, तब वह अत्यन्त सतर्कता पूर्वक सप्रयास इसमें 'फ़ैण्टेसी' का रंग भरते हुए, इन्हे 'फैण्टेसी' का रूप देता है।

प्रायः सभी विद्वान यह मानते हैं कि अपने वर्तमान परिवेश और जीवन से असंतुष्ट व्यक्ति 'फ़ैण्टेसी' की दुनिया में जाते हैं। रचनाकार के लिए भी यही सिद्धान्त लागू होता हैं। वह अपने परिवेश की विद्रूपता, त्रासदी, यंत्रणा और अपने तथा अपने आस-पास के अपने वर्ग के जीवन की विसंगति, समस्या को प्रस्तुत करने के लिए 'फ़ैण्टेसी' के संसार की रचना करता है। इस कारण 'फ़ैण्टेसी' का मनोसंसार जीवन–यथार्थ से उत्पन्न होता है यथार्थ और जीवन की सच्चाइयाँ उसके अप्रस्तुत-विधान में समायी रहती हैं।

रचनाकार जिन समस्याओं और जीवन की सच्चाइयों को अपनी कृति में उठाता है,

उनके व्यापक सामाजिक सदर्भ के प्रति भी वह जागरूक रहता है इसीलिए 'फैण्टेसीकार' इन्हे प्राय निर्वैयक्तिकता एवं तटस्थता की स्थिति मे अभिव्यक्ति देना चाहता है और वह अपने प्रयत्नो द्वारा अपने को इस स्थिति मे स्थापित भी करता है, परन्तु उसे पूरी तरह तटस्थ कहना बेमानी होगा क्योकि वह 'फैण्टेसी' की रचना अपनी आन्तरिक माँग के अनुसार अपने अन्तरव्यक्तित्व से करता है। इसमें उसकी व्यैक्तिक मनःस्थिति, और विचारधारा निहित रहती है। वह जीवन की समस्याओ को अपने सोच के अनुसार प्रस्तुत करता है। वह उन सामाजिक नियमों मे परिवर्तन और संशोधन की माँग करता है जिनसे वह असंतुष्ट है या जिन्हे वह मानव या समाज के विकास मे बाधक मानता है। अतः वह 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से उनका समाधान प्रस्तुत करते समय समाज के निर्धारित नियमो की अवहेलना करते हुए प्रायः ऐसा समाधान प्रस्तुत करता है, जो बाह्य यथार्थ जगत के लिए अपरिचित होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सर्जक 'फ़ैण्टेसी' के द्वारा अपनी समस्याओ एवं समाधानें को मूर्त रूप मे प्रस्तुत करता है।

'फैण्टेसी' अचेतन मन की अनुभूतियों का सत्य है। अतएव उसके निर्माण मे अचेतन मन की भूमिका प्रमुख होती है। यह अचेतन कुछ अश में चेतन मन के माध्यम से व्यक्त होता है। प्रायः सभी तरह की फ़ैटिसियों के निर्माण में यही संयोग पाया जाता है।

मनोविश्लेषकों ने इस तथ्य से हमें अवगत कराया है कि व्यक्तिगत या सामूहिक अवचेतन की सामग्री, दो तरह से सामने आती है। पहला स्वरूप वह है, जब वह अपने अनुषंगो से हिल–मिल कर प्रौढ़ बनकर मानस में कौंध जाती है। दूसरा स्तर वह है कि, हम अपने केन्द्रीभूत सचेतन चिन्तन द्वारा उन्हे एकाग्रता की स्थिति में प्राप्त करते हैं। दोनों ही स्थितियों में चेतन–प्रक्रिया या तो आंशिक रूप से क्रियाशील रहती है या सर्वथा स्थगित रहती है।

'फ़ैण्टेसी' के रचनाकर्म के दौरान कवि वर्तमान यथार्थ के प्रति बहुत सजग नहीं रह पाता। अवचेतन की गति निर्बाध होती है। यहाँ ऐन्द्रिक पर्यावरण के प्रति स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दता का भाव परिलक्षित होता है। यह यथार्थ जगत में लागू एन्द्रिक पर्यावरण के नियमों से युक्त होती है। यह मुक्ति सापेक्ष अर्थ की वाहक है, 'फ़ैण्टेसी' को यथार्थ से सम्बद्ध करके लोकधर्मी और रचनाधर्मी स्वरूप में तालमेल बैठाना आवश्यक होता है। रचनाकार का यह प्रयास सर्वथा अचेतन नहीं होता।

जब रचनाकार अपने किसी विशेष उद्देश्य या अभीष्ट को प्रस्तुत करना चाहता है, तब वह बहुत हद तक सचेत और सतर्क होकर मर्मानुकूल 'फ़ैण्टेसी' का निर्माण करता है। काव्य की 'फैण्टेसी' मे अवचेतन के तत्त्वो की बहुलता होने पर भी वह कवि या लेखक का सचेतन प्रयास होता है। इस स्थिति मे 'फैण्टेसी' के रूप विधान की क्षमता रचनाकार के ऊपर निर्भर करती है। स्वप्न को छोड़कर 'फैण्टेसी' के दूसरे सभी रूपों में चिंतक अस्पष्ट रूप में अपने परिवेश के प्रति सचेत बना रहता है और अपने को अपनी मुक्त कल्पना की रचनाओं मे अवस्थित नही करता।[47]

काव्य में 'फ़ैण्टेसी' का प्रयोग ऐसे यथार्थ को व्यक्त करने के लिए किया जाता है जिसको प्रचलित शिल्प विधान से व्यक्त करना संभव नहीं है।

काव्य मे अवचेतन के इन तथ्यो पर चेतन मन का दबाव बना रहता है। वह अवचेतन में संचित दमित इच्छाओ का कायाकल्प कर उन्हें समाज के लिए उपयोगी बना देता है।

मनोवैज्ञानिकों ने 'फ़ैण्टेसी' को उपयोगिता की दृष्टि से दो भागों में बांटा है, पहला सक्रिय 'फ़ैण्टेसी' या रचनात्मक 'फ़ैण्टेसी' (क्रियेटिव 'फ़ैण्टेसी') दूसरा निष्क्रिय 'फ़ैण्टेसी' या अरचनात्कम 'फैण्टेसी' (नान क्रियेटिव फैण्टेसी)[48]। रचनात्मक 'फैण्टेसी' जीवन को प्रगति की तरफ ले जाती है। इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपने भविष्य के लिए कुछ कल्पनाओं का समय-समय पर निर्माण करता रहे। वैज्ञानिक उपलब्धियां, साहित्यिक रचनाएँ, काव्य संग्रह तथा विश्वविख्यात इमारतें आदि रचनात्मक 'फ़ैण्टेसी' का ही परिणाम हैं इसको आत्मिक चेतना की सक्रियता से समझा जा सकता है। 'फ़ैण्टेसी' की पहचान वस्तुतः आदिम है, जिसे युंग ने मूलवृत्तियाँ कहा है। 'फ़ैण्टेसी' एक प्रकार से अवचेतन की सच्ची अभिव्यंजना है। युंग का कहना है कि सक्रिय 'फ़ैण्टेसी' में वैयक्तिकता के अतिरिक्त कुछ और होता है। कवि वस्तुतः जिस 'फ़ैण्टेसी' की सर्जना करता है उसकी उपयोगिता व्यक्तिगत हित से अधिक है 'फ़ैण्टेसी' संकेतों एवं प्रतीकों से निर्मित होती है।[49] वस्तुतः काव्य साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय 'फ़ैण्टेसी' का ही प्रयोग किया जाता है। इस 'फ़ैण्टेसी' में वैयक्तिकता के साथ ही समष्टि को महत्त्व दिया जाता है। समूह की भावना, वर्ग की भावना, विश्व बन्धुत्व एवं जन कल्याण की भावना से युक्त यह

'फैण्टेसी' उत्कृष्ट एव युगजयी होती है। 'मुक्तिबोध' ने अपनी कृति मे इसी 'फैण्टेसी' प्रारूप का प्रयोग किया है। इस प्रकार की 'फैण्टेसी' के तत्त्व अवचेतन या आन्तर व्यक्तित्व प्रदत्त हो सकते है परन्तु सृजनकर्त्ता अपने सचेतन प्रयास एवं बुद्धि का प्रयोग कर इन्हे संशोधित सम्पादित कर सारभूत एवं सार्वजनिक बनाता हुआ 'फ़ैण्टेसी' के सांचे मे फिट करता है। स्वप्न 'फैण्टेसी' को छोड़कर अन्य सभी फ़ैण्टासियो को कवि काव्य-सर्जना के लिए प्रयुक्त कर सकता है। काव्य में स्वप्न 'फ़ैण्टेसी' का प्रयोग एक शिल्प के रूप मे होता है। यहॉ स्वप्न की बुनावट और प्रस्तुति मे कवि का सचेत प्रयास लगा होता है। उसका वस्तु-तत्त्व कवि द्वारा नियंत्रित होता है और रूप विधान स्वप्न 'फ़ैण्टेसी' शैली पर आधारित होता है। इसमें कोई समस्या और उसका समाधान या कोई विशेष सार्वजनिक सत्य को उद्घाटित किया जाता है। काव्य में प्रयोग की जाने वाली सभी फैण्टेसियो मे अवचेतन के साथ चेतन की भी सक्रिय भूमिका से इन्कार नही किया जा सकता। कवि वास्तविक जीवन तथ्यो को लेकर अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर 'फ़ैण्टेसी' बुनता है, उसकी रूपरेखा तैयार करता है। 'फ़ैण्टेसी' शिल्प में कवि को अपनी कल्पनाशक्ति एवं कौशल को दिखाने का उचित अवसर मिलता है।

अरचनात्मक (निष्क्रिय) 'फ़ैण्टेसी' से व्यक्ति केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। इसमें क्षतिपूर्ति के प्रयास निहित होते है। इसमें व्यक्ति केवल अपनी मानसिक ऊर्जा का अपव्यय करता रहता है, वह कल्पनाओं के आधार पर बनायी गयी योजनाओं को कार्यान्वित नही कर पाता, फलतः उसके व्यक्तित्व की समग्रता को आघात लगता है और समायोजन का ह्रास होता है। निष्क्रिय 'फ़ैण्टेसी' विशुद्धतः अचेतन मस्तिष्क की उपज है। वे विना पूर्व संकेत के स्वतः दिखायी पड़ते हैं। वस्तुतः उनके निर्माण में चेतन मन मस्तिष्क का कुछ भी योग नहीं होता। मन का एक सहज, काल्पनिक प्रवाह है, जिसे कवि बड़ी सहजता से चित्रित कर देता है। ऐसी काव्य-रचना युग सापेक्षता की उत्कृष्टता को स्पर्श नहीं कर पाती।[50] यह परिभाषा 'फ़ैण्टेसी' के मुक्त-साहचर्य और स्वतः स्फूर्त रचना के प्रकारों के निकट हैं। यहाँ कल्पना की मुक्तगति और चेतन विवेक की अल्पता के कारण इसमें अभिव्यक्त होने वाला यथार्थ 'फ़ैण्टेसी' के अन्य प्रकारों में अभिव्यक्त होने वाले यथार्थ की तुलना में बहुत अशक्त होता है। अतः ऐसी

रचना यथार्थ की निर्बल अभिव्यक्ति होने के कारण उत्कृष्टता उपयोगिता और अपने युग को अभिव्यक्ति देने मे समर्थ नही होती। ऐसी रचनाओं मे घोर वैयक्तिकता दिखायी देती है।

वस्तु विषय की दृष्टि से 'फ़ैण्टेसी' को मनोवैज्ञानिको ने निम्न दो वर्गों मे बांटा है — एक तो विजेता हीरो प्रकार, दूसरा पीड़ित हीरो प्रकार। पहले वर्ग मे वे व्यक्ति आते है जो अपने को देश का या विश्व का सबसे बड़ा उद्योगपति, विश्वविख्यात खिलाड़ी, प्रसिद्ध वैज्ञानिक, जॉबाज योद्धा, महान कलाकार अप्रतिम साहित्यकार अथवा राजनेता आदि मानते है। इस वर्ग के व्यक्ति कल्पना मात्र से ही अपने शत्रुओं को समाप्त कर देते हैं और संतुष्ट हो जाते हैं। जबकि दूसरे वर्ग में आने वाले व्यक्ति अपने आप को संसार का सबसे बड़ा भाग्यहीन समझते हैं। असफलता के कारण लक्ष्य तक न पहुंच पाने, इच्छाओं की पूर्ति से वंचित रहने आदि को वे अपने भाग्य का खेल मानते हैं। ऐसे व्यक्ति यह मानकर चलते हैं कि यदि लोग हमारी मुसीबतो के बारे में जान जायेंगे तो निश्चिन ही हमारे प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करेंगे।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आलोक में हम देखते हैं कि 'फ़ैण्टेसी' प्रयोग से कवि को अपने रचना को देश-काल में सार्थक ढ़ंग से प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। वह कौतूहल एव रोचकता उत्पन्न करने के साथ-साथ काल और स्थान के बारे में एक विभ्रम और अनिश्चितता का वातावरण प्रस्तुत करने मे सफल हो जाता है। उसे अपने विषय के लिए इच्छित मनो-भूमिका मिल जाती है। जिससे कवि घटना आदि के तार्किक प्रस्तुतीकरण से बच जाता है। इससे काव्य में प्रस्तुत भारी-भरकम एवं तनाव से युक्त विषय-वस्तु बोझिल न होकर सरस और रुचिकर बन जाती है। 'फ़ैण्टेसी' का गत्यात्मक पहलू अधिक प्रभावी एवं कठिन होते हुए भी गम्भीर बोधयुक्त होता है। 'फ़ैण्टेसी' का यह पक्ष गूढ़ सूक्ष्म कार्य-कारण संबंध प्रकट करता है साथ ही कवि के उस दृष्टिकोण या विचारधारा का भी परिचायक होता है, जिन्हें वह सामान्य जीवन या जगत में तार्किक आधार पर व्यक्त करने में क्लिष्टता का अनुभव करता है या जिन्हें वह सीधे प्रस्तुत नहीं कर सकता। 'फ़ैण्टेसी' उन घटनाओं को लेकर क्रियाशील होती है। जो वास्तविक जीवन-भावों के परिवेश में सम्भव होते हैं।........[51]

'फ़ैण्टेसी' मापन की विधियां

बीसवी सदी के प्रारम्भिक दशकों मे मनोविश्लेषको ने स्वतः स्फूर्त 'फ़ैण्टेसी' का निरन्तर प्रयोग किया और ढ़ेरो शोध पत्र प्रकाशित किए जिनमे मिथकों और लोकप्रिय कथाओं अथवा साहित्य की 'फैण्टेसी' के रूप मे व्याख्या की गयी थी। मनोविश्लेषको ने 'फ़ैण्टेसी' को एक मनौवैंज्ञानिक गोचर माना और इनके मापन का प्रयास किया। उद्देश्य यह था कि इनके मापन के द्वारा व्यक्ति के अवचेतन का अध्ययन किया जा सके। बहुधा इसके परिणामो का उपयोग मनोचिकित्सकीय परिप्रेक्ष्य में किया जाता था। 'फ़ैण्टेसी' का मापन मनोविश्लेषकों ने प्रक्षेपकीय विधियो की सहायता से किया। प्रक्षेपीय विधि का तात्पर्य उन विधियो से है जिनसे प्रायोगिक रूप से व्यक्ति मे किसी सामग्री की सहायता से 'फ़ैण्टेसी' उत्पन्न करायी जा सकती है। इन्हे प्रक्षेपीय इसलिए कहा जाता है, क्योकि इसमे व्यक्ति को किसी चाक्षुष वस्तु या तस्वीर के माध्यम से उत्पन्न एक अस्पष्ट सी स्थिति मे डाला जाता है। यह स्थिति उसे अपने व्यक्तित्व की कुछ विशेषताओ को प्रकट करने के लिए प्रेरित करती है। इन्हे प्रकट करने के क्रम मे व्यक्ति उसे इन स्थितियों दशाओं पर प्रक्षेपित (आरोपित) करता है। इस प्रयास में उसकी 'फ़ैण्टेसी' अभिव्यक्त होती है। उसके सम्मुख कोई वस्तु या तस्वीर प्रस्तुत की जाती है और उससे पूछा जाता है कि वह इसमें क्या देख रहा है, या इसे लेकर वह कोई कहानी रचे। अपनी व्याख्या में वह जिन व्यक्तियो का उल्लेख करता है, उन पर या अन्य वस्तुओं पर कुछ विशेषताएँ आरोपित करता है और इस प्रकार अपनी खुद की विशेषताओं को प्रकट करता है। यहाँ यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इन्हे प्रकट करने मे वह 'फ़ैण्टेसी' का सहारा लेता है। अतः इस 'फ़ैण्टेसी' का मापन करना अनिवार्य हो जाता है, उसके व्यक्तित्व का अध्ययन करने में [52]। ढ़ेर सारी प्रक्षेपीय विधियो मे मुख्यतः दो प्रकार के परीक्षणों का उपयोग इस हेतु किया जाता है- रोर्शा परीक्षण और 'टी0ए0टी0' परीक्षण।

'रोर्शा तकनीक' प्रक्षेपीय विधियों में प्रथम और सर्वप्रमुख है। यह 'रोर्शा इंक ब्लॉट तकनीक' के नाम से जानी जाती है। इसे विकसित करने का श्रेय एक स्विस मनोचिकित्सक 'हर्मन रोर्शा' को जाता है। यह उन्हीं के नाम से जानी जाती है। यह दस कार्डो का एक अपेक्षाकृत अधिक अस्पष्ट परीक्षण है। जिसमें हर कार्ड पर स्याही के धब्बे पड़े रहते हैं, जो

देखने मे किसी आकृति जैसे लगते है। ज्यादातर कार्डो पर सिर्फ काले रंग के और कुछ कार्डो पर कई रग के धब्बे बने रहते है। इन कार्डो को अलग-अलग एक पूर्व निश्चित क्रम से प्रायोज्य के सम्मुख प्रस्तुन किया जाता है और उनसे पूछा जाता है कि 'यह क्या हो सकता है' या यह आपको किस चीज की याद दिलाता है। दस कार्डो पर उसके उत्तर ले लेने के पश्चात उससे इन आकृतियो की अलग से कुछ व्याख्या कराई जाती है। इस प्रकार उसकी प्रतिक्रियाओ या उसकी व्याख्या के आधार पर उसकी 'फ़ैण्टेसी' की क्षमता देखी जाती है। 'रोर्शा परीक्षण मे ज्यादातर गणना विषयानिष्ठ पर कुछ वस्तु निष्ठ भी होती है, जैसे व्यक्ति रंगो के प्रति कितनी अनुक्रियाएँ देता है। 'रोर्शा' ने माना कि व्यक्ति इन आकृतियों के प्रति जो ढ़ेर सारी मानव गतियो को प्रदर्शित करने वाली अनुक्रियाएं देता है, वह न सिर्फ एक प्रेरक (मोटर इन्हिविशन) अवरोध के कारण होता है बल्कि आन्तरिक, जीवन्त कल्पना-शीलता की बढ़ी हुई क्षमता या 'फ़ैण्टेसी' रचना के कारण भी होता है। 'रोर्शा' ने ये भी बताया कि जो व्यक्ति रंगों के प्रति अधिक अनुक्रिया देते हैं, उनके सांवेगिक रूप से अस्थिर होने की संभावना अधिक होती है। मानव गति और रंगो के प्रति अनुक्रिया के सानिध्य ने एक संकेत किया जिसे 'रोर्शा' ने 'अनुभव प्रकार' कहा। इसका तात्पर्य उसने इस सापेक्ष स्तर से बताया, जिसमें 'फ़ैण्टेसी' व्यवहार और आन्तरिक जीवन की क्षमता में सन्तुलन हो और उसको प्रकृति संवेगात्मक और प्रत्यक्ष व्यवहार की और उन्मुख हो।

'रोर्शा' की विधि कुछ परिष्कृत रूप में धीरे-धीरे यूरोप तक फैली। बाद मे अमेरिका में 'डेविड लेवी' और 'सैमुएल बैंक' द्वारा 1920 के आखिर और 1930 के प्रारम्भ मे प्रयोग मे लाई गयी। अमेरिका में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान चिकित्सा मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसे अंगीकृत किया गया था, जिन्होंने इसे मनोरोगियों की व्यक्तिगत 'फ़ैण्टेसी' दुनिया का, बिना सीधे प्रश्नों की सहायता लिये ही, करने वाला अध्ययन पाया और बताया कि यह व्यवहार शत प्रदत्तों (डेटा) को प्रकट करने में सक्षम है जिसका कि मापन किया जा सकता है। इस प्रकार चिकित्सा मनोविश्लेषकों और मनोचिकित्सकों के द्वारा 'फ़ैण्टेसी' मापन के लिए प्रयोग में लाये जा रहे विशुद्ध गुणात्मक उपागम (एप्रोच) पर एकेडमिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा उठाई गयी कुछ आपत्तियों का काफी हद तक सामना किया जा सकता है। आगे चलकर 'रोर्शा तकनीक' और इसके

विशिष्ट पक्षो को लेकर ढ़ेर सारे अध्ययन किए गये। इस 'फ़ैण्टेसी' व्यवहार के परिप्रेक्ष्य मे विभिन्न देशो की विविध संस्कृतियो के तुलनात्मक अध्ययनो और व्यक्तिगत भिन्नताओ के विविध पहलुओ पर केन्द्रित अध्ययन 'रोर्शा परीक्षण' के मदत से ही किये गये। कुछ खामियो के बावजूद अपनी ढ़ेर सारी विशेषताओ के चलते ही 'रोर्शा परीक्षण', मनोवैज्ञानिको द्वारा 'फैण्टेसी' मापन के लिए आज भी व्यापक रूप से प्रयोग होता है।

'फैण्टेसी' मापन हेतु प्रयोग मे लायी जाने वाली दूसरी प्रमुख विधि है- टी0ए0टी0 (थिमैटिक एपरसेप्शन टेस्ट)। यह 1930 के प्रारम्भ मे हावर्ड विश्वविद्यालय (अमेरिका) मे हेनरी मुरे द्वारा 'फैण्टेसी' पर किये जा रहे विपुल अध्ययनो के द्वारा विकसित की गयी। मूल टी0ए0टी0 में कुल बीस तस्वीरें हैं। प्रत्येक तस्वीर अपने आप में इतनी अस्पष्ट है कि इसकी अनन्त प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। व्यक्ति के सम्मुख तस्वीर क्रम से एक-एक करके प्रस्तुत की जाती है और उससे कहा जाता है कि इसमे जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसे लेकर वह एक कहानी रचे। कहानी इस तथ्यों को स्पष्ट करते हुए लिखवायी जाती है कि तस्वीर में ऐसी स्थिति क्यों है, और आगे क्या होगा। ज्यादातर व्यक्ति जब वे कहानियाँ लिखते है खुद को तस्वीर के किसी एक व्यक्ति के साथ अपने को जोड़ लेते हैं। इस प्रकार कहानियाँ एक प्रकार से, उनके खुद के जीवन वृतान्त के रूप में सामने आती हैं। इस रूप में व्यक्ति अपनी 'फ़ैण्टेसी' के रूप में अपने उन विचारों और इच्छाओं को प्रकट करता है, जिन्हे वह किसी अन्य परिस्थिति मे प्रकट करने से हिचकता या कुछ स्थितियों में कदापि स्वीकार नहीं करता। टी0ए0टी0 की कोई मानवीकृत गणना प्रणाली नहीं है। परीक्षक ही कहानियों मे प्रकट थीम के आधार पर इसकी व्याख्या करता है। इसमें विभिन्न अभिप्रेरणात्मक स्थितियों का मूल्यांकन किया जाता है जो कि अनिवार्यतः प्रत्येक वस्तु विषय में निहित होता है। परिणामतः टी0ए0टी0 शोध आवश्यकताओं के अनुरूप एक सुव्यवस्थित और मापनीय मनोविश्लेषणात्मक व्याख्यात्मक विधि मानी गयी है। मूल्यांकन श्रेणी और प्रयोग में आने वाले चित्रों के वस्तु विषय के क्षेत्र मे हुए बहुत सारे सुधारों की वजह से यह विधि आज चिकित्सकीय औद्योगिक और शोध उद्देश्यों के लिए अत्यधिक उपयोग में लायी जा रही है। इसी संदर्भ में यहाँ यह बताया जा सकता है कि टी0ए0टी0 चित्रों को भारतीय परिवेश के अनुसार विकसित करने के कई प्रयास भारतीय मनोविश्लेषकों द्वारा किए

गये है। जिनमे 'उमा चौधरी' द्वारा विकसित चित्र आज सर्वाधिक उपयोग मे लाये जा रहे है। प्रायोगिक रूप में प्रकट करायी गयी 'फैण्टेसी' का सावधानी पूर्वक अध्ययन और विश्लेषण करके उपलब्धि अभिप्रेरणा के क्षेत्र मे 'डेविड मैकीलैण्ड' और 'जान एटकिन्सन' तथा उनके अनेक विद्यार्थियो ने उल्लेखनीय कार्य किया है। अपनी अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ मूल्याकन पद्धति और उपलब्धि तथा संबंधीकरण (एफिलिएशन) अभिप्रेरणा के मूल्यांकन में यह विधि अधिक सफल है। इस विधि मे मूल्यांकन कर्त्ताओं के मूल्यांकन मे उच्चा स्तर की विश्वसनीयता पायी गयी है। किसी वस्तु विषय के मूल्यांकन से प्राप्त किसी आवश्यकता अथवा अभिप्रेरणा की 'फ़ैण्टेसी' अभिव्यक्ति के अध्ययन मे टी0ए0टी अथवा अन्य सम्बद्ध परीक्षण आज व्यापक रूप मे प्रयोग मे लाए जा रहे हैं।

उपर्युक्त दो प्रमुख प्रक्षेपीय विधियों के अतिरिक्त चिकित्सकीय उद्देश्यों हेतु और कुछ हद तक विशुद्ध शोध कार्य हेतु प्रायोगिक रूप से 'फ़ैण्टेसी' उत्पन्न करने वाली कुछ अन्य विधियॉ भी प्रयोग मे लायी जाती है, जैसे- विविध चित्रांकन पद्धतियाँ या कलात्मक क्रियाओ के अध्ययन जैसे- हस्तांगुलि चित्रकला या अपूर्ण वाक्यों की पूर्ति कराना, या ऐसे अनुरोध करना कि 'अपनी तीन इच्छाएँ बताइये' या विभिन्न प्रतीकात्मक वस्तुओं का चयन या फिर कठपुतली खेल इत्यादि [53]। ये सारी विधियाँ इस सामान्य धारणा पर आधारित है कि व्यक्ति की लगभग स्थायी रहने वाली पूर्व वृत्ति (प्रवृत्ति) या शैली, अभिप्रेरणात्मक प्रतिरूप (पैटर्न) या बेतुके विचार और रोग विज्ञान के पहलू उस प्रायोगिक रूप से उत्पन्न कराई गयी 'फ़ैण्टेसी' या अर्थ 'फ़ैण्टेसी' में स्वतः मूर्त होती है। हालांकि अभी तक न तो इन प्रक्षेपीय विधियो का पर्याप्त और क्रमबद्ध पूर्ण परीक्षण ही हुआ है और न ही इनके प्रयोग से मनोविज्ञान को कोई विशेष लाभ ही हो पाया है। वैयक्तिक रूप से चिकित्सा मनोविज्ञान 'फ़ैण्टेसी' उत्पन्न कराने के लिए जिस भी सामग्री का प्रयोग करते हैं, उसके प्रयोग में उन्हें तो पर्याप्त अनुभव रहता है पर इससे मनोवैज्ञानिक ज्ञान मे वास्तव में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होती।

मनोविश्लेषणात्मक और मनोचिकित्सा के विकास का ही परिणाम है कि 'फ़ैण्टेसी' का अध्ययन मनोरोगियों को समझने एवं उनके निदान हेतु किया जाने लगा तभी 'फ़ैण्टेसी' को प्रायोगिक रूप से उत्पन्न कारने की आवश्यकता हुई और उसके लिए प्रक्षेपीय विधियों मुख्यतः

रोर्शा परीक्षण और टी0एन0टी0 परीक्षण का सहारा लिया जाने लगा। इन विधियों के उपयोग के मूल मे यह अवधारणा थी कि व्यक्ति किसी चाक्षुष वस्तु या तस्वीर की व्याख्या करने समय अपने व्यक्तिन्व की कुछ विशेषताओ को ही अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट करता है। इन्हे प्रकट करने मे वह 'फैण्टेसी' का ही सहारा लेता है। इन परीक्षणो के साथ ही 'फ़ैण्टेसी' का सुरक्षात्मक अथवा विरेचक सिद्धान्त उभर कर सामने आया। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक मुख्य रूप से फ्रायड थे। जिसमे आवश्यकतानुसार उनके शिष्यों ने संशोधन तथा परिमार्जन किया। सुरक्षात्मक सिद्धान्त के अनुसार 'फ़ैण्टेसी' व्यक्ति की अपूर्ण इच्छाओ की प्रत्यक्ष पहचान को छिपाने का प्रयास है। इस सिद्धान्त की हालॉकि आलोचना भी हुई, पर इसकी सार्थकता इसके इस प्रतिपादन मात्र से हो जाती है कि दिवास्वप्नो एवं फ़ैण्टेसियो के सचेत अध्ययन से मानव की आकांक्षाओं, कवि की कल्पनाओं एवं व्यक्तित्व के अन्य दूसरे पक्ष का उद्‌घाटन हो सकता है। साहित्य-विवेचन के इस नये आयाम के मूल में फ्रायड की यह स्थापना थी कि स्वप्न-बिंब ही मानसी प्रक्रिया से कला-बिंब बन जाते हैं और वे अन्ततः रचनाकार ꣹ी किसी अवदमित इच्छा की अभिव्यक्ति करते हैं। आगे चलकर साहित्य-विवेचन की यह अवधारणा सम्पूर्ण मनोविश्लेषणात्मक चिन्तन में किसी न किसी प्रकार व्याप्त हो गयी।[54]

'फैण्टेसी' के विरेचक सिद्धान्त के परीक्षण का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास 'पेशबैक' (1955) के अध्ययन में हुआ। जिसमें उसने कुछ अपमानित प्रयोज्यों का किस्सागोई के माध्यम से आक्रामकता प्रदर्शित करने का अवसर दिया। 'पेशबैक' के अपमानित प्रयोज्यों ने उस समूह की तुलना में जिसे किसी आक्रामक अभिव्यक्ति युक्त 'फ़ैण्टेसी' का अवसर नहीं मिला था, अपने परिवर्ती मूल्यांकन में अपेक्षाकृत कम आक्रामकता प्रदर्शित की। 'पेशबैक' ने ये भी बताया कि किसी कोध्रित व्यक्ति को यदि किसी इनामी कुश्ती मुकाबले की फिल्म दिखा दी जाए तो उसके परिवर्ती आक्रामकता मूल्यांकन में अंशतः कमी आ सकती है।[55]

नवीन अनुसंधानों के परिपेक्ष्य में 'फ़ैण्टेसी' का विरेचन सिद्धान्त कुछ खरा उतरता नही दिखाई देता, पर यह भी सत्य है कि जो आकड़े हैं वे मुख्यतः आक्रामक व्यवहार के अध्ययनों पर ही है और सामान्यतः स्वाभाविक दिवास्वप्नों तथा इनके परिणामों पर अथवा आक्रोश और आक्रामक व्यवहारों के अतिरिक्त भावों पर कम ध्यान दिया गया है। फिर भी इस

सिद्धान्त की सफलता इसी रूप मे है कि इसने 'फ़ैण्टेसी' पर किये जा रहे अध्ययनों को नयी दिशा दी।

'मुक्तिबोध' की दृष्टि में 'फ़ैण्टेसी' का सैद्धान्तिक पक्ष

हिन्दी मे सर्वप्रथम 'मुक्तिबोध' ने ही 'फ़ैण्टेसी' के सिद्धान्त पर अपना विचार प्रस्तुत किया। कला को एक 'आत्मपरक' प्रयास मानने वाले मुक्तिबोध की दृष्टि में 'फ़ैण्टेसी' काव्यभिव्यक्ति की यथार्थाभिव्यक्ति की एक आत्मपरक भाववादी शैली है।[56] 'मुक्तिबोध' के अनुसार 'फैण्टेसी' सृजनात्मक क्षणों मे मनस्पटल पर जीवनानुभूतियों की अनुभूत की जाने वाली 'स्वप्न चित्र श्रृंखला' या दूसरे शब्दो मे मनश्चित्र है।[57] 'फैण्टेसी' मे निर्वैयक्तिकता की स्थिति होते हुए भी सृजनकर्ता के निजी व्यक्तित्व की प्राथमिकता होती है।

भाववादी 'फ़ैण्टेसी' में कवि की कल्पनाशक्ति को अपेक्षाकृत स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की सुविधा प्राप्त होती है तथा 'फैण्टेसी' के रूप निर्माण में कल्पना का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, उसमें कृतिकार के स्वानुभूत जीवन के तथ्य एवं विशेषताएं प्रतीकात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत होती है। परन्तु उसमें जीवन तथ्य सीधे उद्घाटित न होकर प्रतीकों मे छिपे होते हैं। कृतिकार, कृति के बीच-बीच मे कहीं-कहीं उसे प्रतीकात्मक ढ़ंग से सांकेतिक रूप मे अभिव्यक्त करता रहता है। भाव-पक्ष प्रमुख होता है और कृति के प्रस्तुत भाव स्थिति के आधार पर वर्णित वस्तु-तत्त्व (जीवन तथ्य) का अनुमान लगाया जा सकता है। संक्षेप में 'फ़ैण्टेसी' के अन्तर्गत भाव-पक्ष प्रधान होकर विभाव पक्ष मात्र सूचित होता है, मात्र ध्वनित होता है, अथवा केवल प्रतीकों मे प्रकट होता है। इस प्रकार के शिल्प में वास्तविकता प्रतीकात्मक रूप से ही झलकती है।[58]

'मुक्तिबोध' के अनुसार 'फ़ैण्टेसी' में रचनाकार मन की निगूढ़-वृत्तियो का अनुभूत जीवन समस्याओं का इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवन-स्थितियों का प्रक्षेप करता है।[59] प्रमुख तत्त्व कल्पना एवं निगूढ़ चेतना है। कल्पना 'फ़ैण्टेसी' का अपरिहार्य तत्त्व है जिसका मुख्य कार्य होता है कला के विभाव पक्ष को प्रच्छन्न करते हुए भाव पक्ष को अधिक से अधिक उजागर करना- "फ़ैण्टेसी के अन्तर्गत कवि-कल्पना, जीवन की सारभूत विशेषताएं प्रकट करते हुए,

एक ऐसी चित्रावली प्रस्तुत करता है कि जिससे वह तथ्यात्मक जीवन जिसकी कि स्वानुभूत विशेषताएँ प्रोद्भाषित की गयी हैं अधिकाधिक प्रच्छन्न, गौण और नेपथ्यवासी हो जाय''[60] लेकिन मुक्तिबोध का आशय 'फैण्टेसी' मे विभाव पक्ष की अवहेलना नहीं था वे उसके महत्त्व को स्वीकार करते हुए ही कहते है कि ''इस मूर्त विधान मे विभाव पक्ष मात्र सूचित होता है, मात्र ध्वनित होता है। किन्तु उस नेपथ्यवासी मूलाधार के बिना, उस अंडरग्राउण्ड—भूमिगत— विभाव–पक्ष के बिना, उस मूर्त विधान का जीवन महत्त्व प्रोद्भासित ही नहीं हो सकता।''[61]

शिल्प के दो रूपो भाववादी और यथार्थवादी को स्वीकार करते हुए 'मुक्तिबोध' कहते हैं - ''यथार्थवादी शिल्प और यथार्थवादी दृष्टिकोण में अन्तर है। यह बहुत ही सम्भव है कि यथार्थवादी शिल्प के विपरीत जो भाववादी शिल्प है— उस शिल्प के अन्तर्गत, जीवन को समझने की दृष्टि यथार्थवादी रही हो। कवि के जीवन ज्ञान के स्तर पर और कवि व्यक्तित्व की अनुभव-सम्पन्नता के स्तर पर, उसकी दृष्टि पर, यह निर्भर है कि वह कहाँ तक वास्तविक जीवन जगत को उसके सारे वास्तविक संबंधो के साथ ग्रहण कर, उसे वस्तुतः समझता है। संक्षेप मे कला, के शिल्प और उसकी आत्मा में अन्तर करना होगा। यह बहुत ही संभव है कि तथाकथित यथार्थवादी ने कलाकार यथार्थ को रंगीन चश्मे से देखकर उस यथार्थ की अशुद्ध व्याख्या करते हुए उसका अशुद्ध मूल्यांकन करते हुए, और इस प्रकार उस यथार्थ ही को विकृत बनाकर, किन्तु यह विश्वास करते हुए कि उसकी अपनी समझ के अनुसार जो यथार्थ है वही उसका यथार्थ स्वरूप भी है।''[62] सच तो यह है कि कविता मे यथार्थ की असमापनीयता, संश्लिष्टता, विसंगति अन्तर एवं बाह्य जगत सभी को एक साथ समेटने के लिए यह आवश्यक है कि कवि 'फ़ैण्टेसी' का सहारा ले और 'मुक्तिबोध' ने वैसा किया भी है।

'फ़ैण्टेसी' बिंब के अभाव मे सम्भव नहीं है। 'फ़ैण्टेसी' में कल्पना तत्त्व की प्रधानता होती है। इसी कारण इसमे कल्पनाबिंब का प्रयोग किया जाता है। 'फ़ैण्टेसी' मे प्रयुक्त कल्पना बिंब, कल्पनात्मक सतही जीवन तथ्यों को प्रस्तुत न करके वास्तविक यथार्थ के चित्रों एवं तथ्यों को बिम्बित करते हैं। परन्तु यथार्थ बिब की भांति कल्पना बिंब में यथार्थ तत्त्व सीधे-सीधे व्यक्त न होकर संकेतो में बिम्बित होते हैं। यथार्थ में कल्पना बिंब प्रतीक चित्र, उपमा चित्र आदि के माध्यम से व्यक्त होते हैं। इसलिए 'फ़ैण्टेसी' में विभाव-पक्ष के कल्पना बिंब प्रतीकात्मक होकर

अपनी मूल भूमि से इतने दूर जा पड़ते हैं कि वे विभाव-पक्ष का भूगोल और इतिहास छोडकर, उसका दिक्काल त्यागकर, अपना एक स्वतन्त्र भूगोल और इतिहास अपना स्वतन्त्र दिक्काल स्थापित कर लेते है।[63]

'फैण्टेसी' में वस्तु-तत्त्व की स्थिति प्रतीकात्मक होती है, अतः 'फ़ैण्टेसी' में प्रयुक्त कथा, कथा के पात्र और पात्रों के कथ्य और चरित्र, उनकी स्थितियाँ, परिस्थितियॉ सब प्रतीक के पारदर्शी आवरण मे लिपटे रहते है और उस आवरण की ओर से उनकी वास्तविकता आभासिक रूप से झिलमिलाती है। 'फैण्टेसी' का ताना-बाना कल्पना बिंबो में प्रकट होने वाली विविध क्रिया-प्रक्रियाओ से बना होता है।[64] 'मुक्तिबोध' का कहना है कि 'विभाव पक्ष अपनी गौण स्थिति के बाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है .... विभाव-पक्ष के बिना, उस मूर्त विधान का जीवन-महत्त्व प्रोद्भाषित ही नही हो सकता।''[65]

'फैण्टेसी' बिंब के अभाव में सम्भव नही किंतु इसका यह आशय नहीं है कि फैण्टेसी बिंब है। 'फ़ैण्टेसी' बिंब से भिन्न होती है। 'फ़ैण्टेसी' विशृंखल किंतु संश्लिष्ट कल्पना होती है जबकि बिंब एकोन्मुख होते हैं, 'फ़ैण्टेसी' में स्वप्न जैसी गत्यात्मकता होती है, जबकि बिंब आमतौर से 'स्टैटिक' होते हैं। 'फ़ैण्टेसी' विजन से भी अलग है। इसमे और विजन में कल्पना और प्रज्ञा के स्तरों का विभेद है, अन्यथा रहस्य और रोमांच के तत्त्व दोनों मे एक जैसे होते हैं। विजन को प्रज्ञा दर्शन कहा जाता है। यह मनःस्थिति दिवास्वप्न से मिलती-जुलती है। दिवास्वप्न में निद्रा तथा अनुभव जो स्वप्न के तत्त्व हैं, नहीं होते। उनका स्थान चेतना की धारा के अन्तर्गत 'फ़ैण्टेसी' ले लेती है। दिवास्वप्न, स्वप्न की दशा और 'फ़ैण्टेसी' से असमान विचार 'फ़ैण्टेसी' होते हैं। ये अभिलाषा एवं महत्त्वाकांक्षा को तृप्त करते हैं और बहुधा कथा चक्र के रूप में खुलते हैं।

'मुक्तिबोध' के अनुसार 'फ़ैण्टेसी' में जीवन तथ्यों को चित्रात्मक पद्धति से अभिव्यक्त किया जाता है। काव्य में प्रस्तुत यथार्थ से सम्पृक्त विविध प्रकार के कल्पना चित्रों की शृंखलाएं एक व्यवस्थित रूप में आपस मे संश्लिष्ट होती हैं। इस शृंखला का संचालन काव्य के संवेदनात्मक उद्देश्य करते हैं। 'फ़ैण्टेसी' के इन मनश्चित्रों में गतिमयता होती है। इसी गतिमयता के कारण पाठक ऐसा अनुभव करते हैं मानो वे उन दृश्यों को अपनी आंखों से देख रहे हैं, वे

दृश्य उनके सम्मुख गुजर रहे हैं यह गतिमयता काव्य के अन्त तक बनी रहती है।

'मुक्तिबोध' मानते हैं कि 'फैण्टेसी' यथार्थ की प्रतिकृति न होकर उसके सारभूत और प्रतिनिधिक रूप को प्रकट करती है। उनके अनुसार कृति, कृतिकार की कल्पनात्मक क्षमता के द्वारा उसके स्वानुभूत जीवनानुभव की पुनर्रचना है। इस पुनर्रचना मे वह कल्पना के अतिरिक्त, भावना बुद्धि और सवेदनात्मक उद्देश्य को उपकरण के रूप मे प्रयुक्त करती है। ये पुनर्रचना वास्तविक यथार्थ से कुछ समानता रखने के साथ ही बहुत कुछ भिन्नता लिए रहती है। इसका कारण विशिष्ट का समान्यीकरण, 'स्व' का पर मे परिणत हो जाना, वैयक्तिकता का निर्वैयक्तिकता मे परिवर्तिन होना है। यद्यपि पूर्ण रूप से निर्वैयक्तिक कहना बेमानी है। 'पर' की स्थिति या सामान्यीकरण के बाद भी उसमें वैयक्तिकता निहित रहती है। रचना मे आयी निर्वैयक्तिकता या सामान्यीकरण के कारण ही वह यथार्थ जीवन की प्रतिकृति न रहकर उसकी प्रतिनिधि बन जाती है। निर्वैयक्तिकता की स्थिति को प्राप्त सृजनकर्त्ता सामान्यीकृत हुए जीवन तथ्य एवं अपने बौद्धिक निष्कर्ष को अपनी कलात्मक एवं कल्पनाशक्ति द्वारा 'फैण्टेसी' के रंग रूप में रूपान्तरित करता है। इस तरह उसमे (वस्तु-तत्त्व) प्रतिनिधिता आ जाती है और लेखक वास्तविकता के प्रदीर्घ चित्रण से बच जाता है। संक्षेप में ज्ञान गर्भ 'फ़ैण्टेसी' द्वारा सार रूप में, जीवन की पुनर्रचना करता है।''[66]

'मुक्तिबोध' की दृष्टि में 'फ़ैण्टेसी' में वर्णित वस्तु-तत्त्व रचनाकार के नितान्त व्यक्तिगत और भोगे गये जीवन अनुभव के अतिरिक्त अन्यान्यों द्वारा भोगे गये और अनुभूत किये अनुभव भी हो सकते हैं जो कवि के सम्पर्क में आये हों। मुख्य बात ये है कि वे यथार्थ अनुभव सतही या छिछले न हो, उनमें (वस्तु तत्त्व) महत्त्व की भावना हो।''....... ''कलाकृति में वास्तविकता का साक्षात्कार और आत्मचरित्रात्मक संस्पर्श तो होना ही चाहिए।''[67] ''यह कवि बुद्धि पर निर्भर है कि जिए और भोगे गये जीवन की सारभूत विशेषता कौन-सी है और कौन-सी नहीं''।[68]

'फ़ैण्टेसी' में प्रतीक की स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। प्रतीक ही काव्य के वास्तविक मर्म को स्पष्ट करता है। इसलिए कवि अपने पात्र एवं उनके चरित्र के विषय में बहुत सी ऐसी बाते उद्घाटित करता है जो पात्र अथवा उसके चरित्र में उपस्थित नहीं होती और न ही

उन पात्रो के क्रिया से ही वे प्रकट हो सकती हैं। पात्र उसके कार्य एवं चरित्र के विषय मे ये बहुत सी बाते स्वयं सृजनकर्त्ता के अपने निजी भाव–दृष्टि की उपज होती है। ये बाते जहाँ उसके इच्छित विश्वास की पूर्ति करती है वही कथ्य के अभिप्राय के स्पष्टीकरण में भी सहायक होती हैं।

'फैण्टेसी' रहस्यमय और असम्भव रूप में प्रस्तुत होने के बाद भी संभावना की परिधि मे देखी व मानी जाती है। इसी कारण इसमें अतार्किकता एवं असँगति खप जाती है। असॅगतियाॅ 'फैण्टेसी' में आवश्यक रूप से रहती हैं तथा काव्य के संवेदनात्मक उद्देश्य की असॅगतियां खप नही सकती।[69] क्योकि इन असँगतियो के द्वारा संवेदनात्मक उद्देश्य के अनुरूप कुछ बातों को दबाकर मर्मानुकूल भावो को उभारा जाता है। इसीलिए काव्य सृजन के क्षण में कवि को सतर्क रहना पड़ता है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि जो बातें आवेग लिए प्रकट होती है, वे कथ्य की संवेदना के अनुरूप नहीं होती तथा कथ्य का मूल मर्म इनसे पूरी तरह प्रकट या स्पष्ट न होकर अन्यत्र होता है। कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि जो बाते दब गयी हैं वे ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती हैं। इसीलिए 'फैण्टेसी' में मर्मानुकूल असँगति ही खप सकती है। 'फ़ैण्टेसी' की आत्मपरक शैली के कारण ऐसी असंगतियाँ यूँ ही खप जाती हैं और हम उस आरोप को एकदम पहचान नहीं पाते।[70]

'फ़ैण्टैसी' में कथा, कथा के पात्र एवं चरित्र से महत्त्वपूर्ण कवि का वास्तविक जीवनानुभव, चिरकाल से उसके हृदय में संचित होता आया जीवन-ज्ञान, एवं निष्कर्ष है जिनका वह 'फैण्टेसी' के कथा, पात्र एवं चरित्र मे आरोपण करता है, तथा मनोनुकूल पात्र एवं घटनाओं की मनःरचना करता है।......'फ़ैण्टेसी' वस्तुतः लेखक के आभ्यन्तर-भाव-उत्सों को मुक्त कर देती है।''[71]

'फ़ैण्टेसी' के निर्माण में बिंब-प्रतीक-रूपक-कल्पना के अतिरिक्त मिथक और ऐतिहासिक पौराणिक गाथाओं का भी विशेष योगदान होता है। 'फ़ैण्टेसी' में प्रयुक्त बिंब, प्रतीक रूपक जहाँ कवि के मानसिक बोध और अनुभूति को मूर्त, स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाते हैं, वहीं मिथक और ऐतिहासिक पौराणिक गाथाएँ उन्हें 'फ़ैण्टेसी' की कथा भवन के निर्माण का आधार प्रदान करते हैं।

इन कथाओं मे उसका वर्तमान युग, परिवेश जीवन और उसकी समस्याएँ आदि अप्रस्तुत-विधान द्वारा प्रतीको द्वारा व्यक्त होना है। इस प्रकार 'फैण्टेसी' की कथा रोचक और आकर्षक होने के साथ-साथ यथार्थ के संत्रास को कड़ुवाहट रहित बनाता है। अतः 'फैण्टेसी' एक साथ दो कार्य करती है। पहला आधुनिक जीवन के तथ्यो नथा निष्कर्षो की चित्रात्मक समीक्षा के लिए विशाल कैनवास प्रदान करती हैं, दूसरा उन तथ्यो तथा निष्कर्षो की तीव्र आधुनिक सप्रश्नता को काल तथा स्थान से हटाकर उसके अस्तित्त्व के तीखेपन को समाप्त करता है।[72]

'मुक्तिबोध' के अनुसार भिन्न-भिन्न वस्तु तत्त्वो के अभिव्यक्ति के लिए उसी के अनुरूप विविध रूप तत्त्वों का प्रयोग होता है। यही कारण है कि 'फ़ैण्टेसी' के विभिन्न वस्तु तत्त्व, 'फैण्टेसी' के नियम मे बंधकर, अपने अनुसार अपना रूप निर्माण करती है। इसलिए 'फैण्टेसी' में प्रतिच्छायित जीवन तथ्य 'फ़ैण्टेसी' के अपने फ्रेम के अंग ही हो यह आवश्यक नही है आवश्यक इतना ही है कि फैण्टेसी के रंग जीवन तथ्यों के रंग से मिलते जुलते हो, अथवा उन तथ्यो के रंग से अनुस्युत हो।[73]

'फैण्टेसी' का ताना-बाना तथ्यों के प्रति की गयी क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा ही निर्मित होता है। इसलिए जरूरी है कि "सबसे पहले हम 'फ़ैण्टेसी' मे गुँथी हुई क्रिया-प्रतिक्रियाएँ जाने, और उन क्रिया-प्रतिक्रियाओं के सूत्र से हम प्रच्छन्न और अर्ध-प्रच्छन्न जीवन-तथ्यों तक जाएं।"[74]

'फ़ैण्टेसी' के प्रयोग से कुछ सुविधाएँ भी होती हैं, कुछ असुविधाएं भी होती हैं। 'मुक्तिबोध' 'फैण्टेसी' प्रयोग की सुविधाओं को रेखांकित करते हुए कहते हैं — कि "जिये और भोगे गये जीवन की वास्तविकताओं के बौद्धिक अथवा सारभूत निष्कर्षों को, अर्थात् जीव-ज्ञान को, (वास्तविक जीवन चित्र उपस्थित न करते हुए) कल्पना के रंगों में प्रस्तुत किया जा सकता हैं। इस प्रकार की ज्ञान-गर्भ 'फ़ैण्टेसी' वास्तविक जीवन ही का प्रतिनिधित्व करती है। लेखक वास्तविकता के प्रदीर्घ चित्रण से बच जाता है। वह, संक्षेप में, ज्ञान गर्भ 'फ़ैण्टेसी' द्वारा सार रूप मे, जीवन की पुनर्रचना करता है।[75]

'मुक्तिबोध' के उपयुक्त कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपनी काव्य अभिव्यक्ति का माध्यम 'फ़ैण्टेसी' क्यों चुना। अपने जीवन मे भोगे गये भयानक यथार्थ के सारभूत निष्कर्ष को वे 'फ़ैण्टेसी' कल्पना शक्ति के भावात्मक माध्यम से ही व्यक्त कर सकते थे।

उनकी काव्य वस्तु का स्वरूप यथार्थपरक होते हुए भी इतना कटु-तीक्ष्ण था कि उसे प्रचलित विधात्मक शिल्पो में व्यक्त कर पाना संभव न हो सका। चूंकि उस भयानक यथार्थ को वास्तविक धरातल पर मूर्त रूप देना अनपेक्षित था, इसीलिए उसे कलात्मक 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से उघाडा गया।

'मुक्तिबोध' 'फैण्टेसी' शिल्प की असुविधाओ का भी उल्लेख करने से नहीं चूके —

''किन्तु 'फैण्टेसी' का प्रयोग कुछ विशेष असुविधाएँ भी उत्पन्न करता है, जिसमे से एक यह है कि 'फैण्टेसी' मे कभी-कभी क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ की अभिव्यक्ति में कवि इतनी क्लिष्ट कल्पना करता है कि सामान्य पाठको की समझ से परे हो जाती है। इसके अतिरिक्त इसमे दुरुहता तब भी उत्पन्न हो जाती है जब प्रसंग के अनुरूप प्रयोग न किया गया हो, क्योंकि तब प्रतीक वास्तविक अर्थ को उद्घाटित नहीं कर पाते या दूसरे शब्दों में प्रतीक का सही अर्थ नहीं मिल पाता। ऐसे मे 'फ़ैण्टेसी' मे प्रयुक्त जीवन तथ्य का क्रम स्थापित करने में अड़चन होने लगती है। प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत होने के कारण वास्तविकता या जीवन तथ्य अधिकतर अनुमान ही से संवेदनात्मक अनुमान ही से, पहचाने जाते हैं।''[76] यहाँ इस बात की ओर सकेत कर देना समीचीन होगा कि 'मुक्तिबोध' की कविताओं को लेकर पाठक आलोचक को जो असुविधा होती है, उसमें से यही असुविधा सबसे बड़ी है। इसी कारण 'मुक्तिबोध' की कविताओ को दुरुह और अनावश्यक रूप से जटिल मान लिया जाता है। यही कारण है कि 'मुक्तिबोध' 'फैण्टेसी' और जीवन तथ्य के परस्पर संबंध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि — 'फ़ैण्टेसी' में प्रतिच्छायित जीवन-तथ्य 'फ़ैण्टेसी' के अपने फ्रेम के अंग ही हो, यह आवश्यक नहीं है। आवश्यक इतना ही है कि 'फ़ैण्टेसी' के रंग जीवन तथ्यों के रंग से मिलते जुलते हों अथवा उन तथ्यों के रंग से अनुस्यूत हों।''

'मुक्तिबोध' की दृष्टि में 'फ़ैण्टेसी' और सृजन का मनोविज्ञान

'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' के सृजन में सृजनकर्ता के अवचेतन का महत्त्वपूर्ण योगदान स्वीकार करते हैं। उन्होंने अपने काव्य में 'फ़ैण्टेसी' के विषय वस्तु में मानवता, मानव समाज और मानव जीवनुभूतियों को ही स्थान दिया है। उनके अनुसार 'मानव चरित्र के चित्त का नाम कला है। व्यक्ति धारा जब मानवता सिंधु में डूब जाता है तब उसके संगम स्थल पर जो कलरव

होता है वही कला बन जाती है।...... कला मानव समाज की वाणी मे झंकृत व्यक्तिगत कम्पन है।[77] 'मुक्तिबोध' ने पहले ही संकेत दिया है कि अवचेतन के तत्त्व समाज से प्राप्त होते है। मनुष्य के भीतर एक आन्तरिक भावात्मक तृष्णा होती है। यह तृष्णा उसके जीवन का ही एक अभिन्न अंग होती है। इस समाज मे रहते हुए मनुष्य का आन्तरिक व्यक्तित्व अपना विकास करना चाहता है। यह आन्तरिक संसार उसके मौलिक एवं व्यक्तिगत अनुभूति से निर्मित होता है। उसके अनुसार यह अन्तर व्यक्तिगत सभी वयक्तियो मे होता है। 'मुक्तिबोध' ने इस तृष्णा को मनुष्य एव उसके समाज को विकास भावना से जोड़कर देखा है। तृष्णा सभी व्यक्तियो में निहित होने के बाद भी कला, का रूप नही ग्रहण करती। क्योकि साधारण व्यक्ति की अनुभूति मे अपनी अभिव्यक्ति के लिए उचित आवेग, उत्कंठा एवं प्रतिभा का अभाव होता है। जिससे वह कला मे परिणति नही हो पाती और वे अनुभूतियाँ केवल उन तक ही सीमित होकर रह जाती है।

मनुष्य की विकास भावना उसे अपने गौरवशाली अतीत के गौरवान्वित जीवन-मूल्य से भी जोड़ कर रखती है। इस समाज में रहते हुए वह विविध स्थितियों और परिस्थितियों से द्वन्द्व करता हुआ अपने जीवन मूल्यो का निर्माण करता है। कलाकार अपने संघर्ष को विश्वस्तरीय बनाता हुआ विश्वात्मक जीवन मूल्य का निर्माण करता है।

'मुक्तिबोध' के अनुसार मनुष्य की विकासात्मक इच्छाओं का संगठित एवं एकीकृत स्रोत अवचेतन मे संग्रहित होता है और अवेचतन शक्ति बनता है। यही आत्मतृष्णा उसका आदर्श स्वप्न बनकर उसके चेतन से जुड़ता है। चेतन में प्रवाहित होकर समाज से सम्बद्ध होता है। अवचेतन मे इच्छाएँ अव्यक्त और दमित विकास तृष्णा के रूप में रहती हैं। "वह जीवन जो अन्धकारमय अन्तर्कन्दराओं मनुष्य को आन्तरिक आवश्यकता के अनुकूल सामाजिक रोल प्राप्त हो। यानि, व्यक्ति और समाज के सामंजस्य से चेतन और अवचेतन का सामंजस्य सफल हो सकता है, अन्यथा नही क्योंकि उचित रोल के अभाव में व्यक्ति कुंठित हो जाता है।

'फ़ैण्टेसी' में अनायासता जहाँ एक अनिवार्य गुण के रूप में विद्यमान रहता है वही उसमें 'फ़ैण्टेसी' के रूपानुसार भव्य, रंगीन, गतिमान चित्रों का आयोजन भी होता है। यह सृजनात्मकता अवचेतन के चेतन से सक्रिय संबंध पर आश्रित है। विषय की काल्पनिक प्रस्तुति होने पर वह मानव जीवन से गहन रूप से सम्पृक्त होती है तथा यथार्थ प्रतीकात्मक होती है।

'मुक्तिबोध' के अनुसार सृजनशीलता के लिए चेतन का अवचेतन से सहयोग और सामंजस्य बेहद आवश्यक शर्त है। 'फ़ैण्टेसी' निर्माण मे परिकल्पना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, इसीलिए अवचेतन महत्त्वपूर्ण है। उच्च कोटि और उत्कृष्ट 'फ़ैण्टेसी' के निर्माण में अवचेतन सृजनशील चेतन को और अधिक सशक्त बनाती है। उसे तरह-तरह की परिकल्पनाओ से युक्त करती है।

'फैण्टेसी' सृजन मे अवचेतन की भूमिका ज्यादा अहम है। उसमें भय, आतंक, दमित जीवनादर्श, जीवन मूल्यों की कसमसाहट, मन की अन्धगलियों आदि का चित्रण होता है, जो अवचेतन मन द्वारा उसे प्रदत्त किया जाता है। 'फ़ैण्टेसी' के फ्रेम में मिथकीय विधान उसे वंशगत, समाजगत एवं संस्कारगत प्राप्त होते हैं। यह उसके जातिगत सामूहिक अवचेतन से उपजते हैं। परन्तु इसके साथ यह भी सच है कि काल्पनिकता, रहस्यमयता और मन की अन्धगलियो के साथ-साथ उसमें चेतना और जीवन यथार्थ भी प्रच्छन्न होता है। यही कारण है कि उसका कल्पना बिंब मात्र कपोल कल्पित संसार न रहकर यथार्थ के प्रखर तेज को व्यक्ति में से गुप्त बहता हुआ अनुभूति द्वारो से ऊपर की सतहों पर आ जाता है, चेतन मन में अपने अबाध आकुल उत्साह से फूट पड़ता है।[78] दमित विकास तृष्णाएं मनुष्य को आगे बढ़ने के लिए धक्का देती हैं एव उसे सक्रियता प्रदान करती है। ''इसी अर्थ मे ये उसकी भावना बुद्धि (ब्रेन आफ बेशन) हो जाती है।[79] ''साहित्यकार के मन में जब तक कि चेतन के किसी भाग का अवचेतन से आवयविक संबंध न हो तब तक उस चेतन शक्ति की साहित्यिक अभिव्यक्ति असम्भव है''[80] यानि साहित्य सृजन मे चेतन और अचेतन दोनो का सहयोग सम्मिलत होता है।

'मुक्तिबोध' के लिए अवचेतन केवल दमित इच्छाओं का पुंज न होकर ''प्राकृत शक्ति का एक गतिमान प्रवाह''[81] भी है। अवचेतन को तत्त्व तो समाज से मिलते हैं, परन्तु ''संस्कार और अनुवांशिकता द्वारा यह प्रवाह अपने शक्ति रूप में व्यक्तिगत (जेनोटाइप) होता है''[82]

''साहित्य में अवचेतन मन अनायासता और रंगीन चित्रात्मकता भरता है, परन्तु वही प्राकृत शक्ति चेतन में मन में परिकल्पना (कन्सैप्सन) होकर उस अवचेतन की चेतन में मार्ग रेखा बनाती है। कलाकृति को कल्पना (कन्सैप्सन) चेतन मन का एक उच्चतर समन्वय है। कला में इन दोनों की अवचेतन शक्ति और कल्पना का सामंजस्य अनिवार्य है। अवचेतन सामंजस्य की

क्रिया मे चेतन को सशक्त करता है।[83] चेतन मन का सृजनशील धर्म... . समन्वय स्वयं अन्तः शक्ति और बाह्य के तत्त्वो से निर्मित होता है। इसलिए, चेतन से निर्मित कन्सैप्सन और अवचेतन शक्ति धारा का जब सामजस्य हो जाता है तभी किसी भी क्षेत्र मे सृजन सम्भव है। यह सामजस्य तभी सम्भव है जबकि मनुष्य को आन्तरिक आवश्यकना के अनुकूल सामाजिक रोल प्राप्त हो। यानि व्यक्ति और समाज के सामजस्यों से चेतन और अवचेतन का सामंजस्य सफल हो सकता है, अन्यथा नही, क्योकि उचित रोल के अभाव में व्यक्ति कुंठित हो जाता है।

'फैण्टेसी' सृजन मे उस चेतन को महत्त्व देते हुए भी चेतन के महत्त्व को नकारा नही जा सकता। क्योकि अवचेतन अभिव्यक्ति है। उसे कला में व्यक्त होने के लिए चेतन का सहयोग आपेक्षित है। अवचेतन के तत्त्व को यथार्थ से चेतन ही संश्लिष्ट करता है, वास्तविकता का गहरा रंग भरता है। जीवन के तत्त्व, मूल्य, आदर्श के गूढ़तम चिन्तन और विवेचन, विश्लेषण मे दोनो का सहयोग अवश्यक है। चेतन के सहयोग के अभाव में सृजन सम्भव नहीं है।

''फैण्टेसी'' आधुनिक काल मे व्युत्पन्न हुई अधुनातन साहित्यक शिल्प-विधा है। इसका प्रयोग आज से पहले भी हुआ है, पर तब और अब की 'फ़ैण्टेसी' में गुणात्मक अन्तर है। पहले की 'फ़ैण्टेसी' मनोरंजन से पूर्ण होती थी। उसमें काल्पनिकता, जीवनादर्श का विशेष स्थान था। वास्तविक यथार्थ से उसका संबंध प्रायःवायवीय था। आज के 'फ़ैण्टेसी' का प्रयोग इससे भिन्न है यह शिल्प के प्रमुख घटक के रूप में अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व स्थापित कर चुकी है।

आज के पूर्व इसे कल्पना या परिकल्पना का पर्याय माना जाता था पर अब वह धारणा बदल चुकी है। यह वर्तमान संदर्भ में मानव-जीवन की जटिल वास्तविकता के परिग्रहण और अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। इसीलिए इसके जटिल स्वरूप को समझने के लिए सूक्ष्मबोध और व्यापक ज्ञान की अपेक्षा होती है।

आज का जीवन विभीषिकाओं से भरा हुआ है समाज में सर्वत्र शोषण, असंगति, असन्तोष और वैयक्तिक स्वार्थ लिप्सा का नग्न, ताण्डव हो रहा है। इससे अजनबीपन मूल्यहीनता, विक्षिप्तता, विघटन और बेगानगी को प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। वर्तमान समस्याओ से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विरूपीकरण हो गया है। उसे समझने के लिए यथार्थ के सभी पूर्ववर्ती

शिल्प के घरौंदे बेकार सिद्ध हो रहे हैं। ऐसी स्थिति मे आज की त्रासद स्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए किसी नये शिल्प की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। ''फ़ैण्टेसी'' उसी की पूर्ति का साधन है। यह आज के जीवन की आन्तरिक एव बाह्य रिक्तता और तिक्तता को कलात्मक ढ़ंग मे व्यक्त करके पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष

'फैण्टेसी' का संबंध प्रायः सभी समीक्षक एवं आलोचक मानसिक जगत से मानते है तथा काल्पनिक सोच विचार ही इसके उद्गम का मूल आश्रय है। यह यथार्थ से किसी न किसी रूप से सम्बद्ध है। इसका निर्माण स्थल सृजनकर्ता का अन्तस्थल है, इसमे उसकी वैयक्तिकता प्रधान होती है।

मनोजगत से सम्पृक्त होने के कारण 'फ़ैण्टेसी' का सीधा संबंध मनोविज्ञान से है। वस्तुतः सभी विद्वानो ने इस साहित्यिक शिल्प-विधा को मनोविज्ञान से सम्बद्ध करके देखा है और अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुॅचते है कि 'फ़ैण्टेसी' साहित्य में मानसिक छटपटाहट से विरेचन और मानसिक संतोष प्रदान करने का समर्थ साधन है।

'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' को भाववादी शिल्प के अन्तर्गत स्वीकार किया है। उन्होने भाववादी शिल्प और शैली में अन्तर माना है। भाववादी शिल्प भी यथार्थ अभिव्यक्त का सशक्त साधन हो सकता है किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि सृजनकर्ता इसमें व्यक्त यथार्थ के गहरे स्तर तक पहुँचा हो।

'मुक्तिबोध' ने भी 'फ़ैण्टेसी शिल्प की प्रविधि को मनोविज्ञान के आधार पर रखा। उनकी मनोवैज्ञानिक मान्यताएँ फ्रायड की तुलना में युंग के अधिक करीब है। 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की कार्य प्रणाली और सुविधाओं का विश्लेषण करते हुए उन्होंने उसके प्रयोग से उत्पन्न होने वाली दुरुहता एवं खतरों को पूर्ण बौद्धिकता के साथ व्यक्त किया है।

पाद टिप्पणी

1. 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया - अशोक चक्रधर पृ0 72
2. वही - पृ0 72
3. वृहद अग्रेजी हिन्दी कोश-प्रथम खण्ड - हरदेव बाहरी पृ0 690
4. अग्रेजी हिन्दी कोश - फादर कामिल बुल्के पृ0 235
5. दर्शन कोश - प्रगति प्रकाशन (1988) - पृ0 11
6. मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य — डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव पृ0 414
7. इनसाइक्लोपिडिया आफ साइकालाजी - पृ0 231
8. विभ्रम और यथार्थ – क्रिस्टोफर कॉडवेल — अनुवाद– भगवान सिंह पृ0 177
9. ए डिक्शनरी ऑफ मॉर्डन क्रिटिकल टर्मस, उद्धृत 'मुक्तिबोध' की युग चेतना और अभिव्यक्ति- डॉ0 आलोक गुप्ता पृ0 176
10. इनसाइक्लोपीडिया आफ अमेरिकाना।
11. इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज – खण्ड 7 पृ0 327 - पृ0 231
12. मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य – डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव पृ0 414
13. असामान्य मनोविज्ञान – डॉ0 राम कुमार ओझा – प्रथम संस्करण पृ0 258
14. इनसाइक्लोपिडिया आफ साइकालोजी – पृ0 231
15. 'मुक्तिबोध' की समीक्षाई – अशोक चक्रधर पृ0 157
16. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज – खण्ड 7 पृ0 327-328
17. 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया – अशोक चक्रधर पृ0 13
18. मिथक और आधुनिक कविता - शम्भूनाथ पृ0 73
19. मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य–डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव पृ॰ 420
20. मुक्तिबोध रचनावली भाग - 4 कामायनी एक पुनर्विचार पृ0 216
21. वही– पृष्ठ 217
22. वही– पृष्ठ 223
23. वही– पृष्ठ 222
24. वही– पृष्ठ 223

25 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 5 पृष्ठ - 200
26 विभ्रम और यथार्थ- क्रिस्टोफर काडवेल - अनुवाद भगवान सिह पृष्ठ 160
27 वही- पृष्ठ 176
28 वही- पृष्ठ 176
29 वही पृष्ठ 178
30 मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य - डॉ0 जगदीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0 415
31 वही- पृष्ठ 415
32. 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया - अशोक चक्रधर पृष्ठ 74
33 वही- पृष्ठ 166
34 वही- पृष्ठ 75
35 इनसाइक्लोपिडिया आफ अमेरिका।
36 मनोविश्लेषण - सिगमड फ्रायड पृष्ठ 119
37 वही- पृष्ठ 120
38 विभ्रम और यथार्थ- काडवेल - पृष्ठ 188
39 मनोविश्लेषण - सिगमड फ्रायड पृष्ठ 88
40 इन्साइक्लोपिडिया आफ सोशल साइन्सेज - खण्ड ? पृष्ठ 327
41 इन्ट्रोडक्शन टु साइकोलजी- ण ऊ. मार्गन और किंग - छ सस्करण पृष्ठ 378-379
42 वही- पृष्ठ 378-379
43. विभ्रम और यथार्थ- क्रिस्टोफर काडवेल- अनुवाद भगवान सिंह पृष्ठ 192
44. वही- पृष्ठ 188
45. 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया- अशोक चक्रधर- पृष्ठ- 72
46. विभ्रम और यथार्थ - क्रिस्टोफर काडवेल - अनुवाद भगवान सिंह पृष्ठ 192
47. वही- पृष्ठ 153
48 नव स्वच्छन्दतावाद - डॉ0 अजब सिंह- पृष्ठ 153
49 वही- पृष्ठ 153
50. वही- पृष्ठ 153
51 वही- पृष्ठ 456
52 इन्ट्रोडक्शन टु साइकोलाजी- ण.ऊ. मार्गन और किग - छ संस्करण पृष्ठ 378-379
53 इनसाइक्लोपिडिया आफ सोशल साइन्सेज - खण्ड ? पृ0 329
54 वही- पृ0 330
55. वही- पृ0 330-331

56 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 4 कमायनी एक पुनर्विचार पृष्ठ

57 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 5 पृष्ठ 41

58 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 4 पृष्ट-220

59 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 4 कमायनी एक पुनर्विचार पृष्ठ - 216

60 वही- पृष्ठ 217

61 वही- पृष्ठ 217

62 वही- कमायनी एक पुनर्विचार पृष्ठ- 220

63 वही- पृष्ठ 219

64 वही- पृष्ठ- 148

65 वही- पृष्ट- 219

66 वही- पृष्ठ 220

67 वही- पृष्ठ 219

68 वही- पृष्ठ- 219

69. वही- पृष्ठ- 222

70 वही- पृष्ठ 199

71 वही- पृष्ठ- 199

72 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 4 कमायनी एक पुनर्विचार पृष्ठ 223

73 वही- पृष्ठ- 198

74 वही- पृष्ठ- 198

75 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 4 कमायनी एक पुनर्विचार पृष्ठ 220

76 वही- पृष्ठ- 220

77. वही- पृष्ठ- 221

77 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 5 साहित्य मे व्यक्तिगत आदर्श पृष्ठ 31

78. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 5 मानव जीवन स्रोत की मनोवैज्ञानिक तह मे पृष्ठ 27

79 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग- 5 साहित्य में व्यक्तिगत आदर्श पृष्ठ 33

80 वही पृष्ठ- 33

81. वही पृष्ठ- 34

82 वही पृष्ठ- 33-34

83 वही पृष्ठ- 34

●●●

द्वितीय अध्याय

'मुक्तिबोध' की रचना प्रक्रिया और 'फ़ैण्टेसी' संबंधी विचार

'मुक्तिबोध' ने काव्य की रचना प्रक्रिया के सभी पक्षो का वैज्ञानिक ढ़ंग से सूक्ष्म निरूपण किया है और इसे एक स्थापना के रूप मे स्वीकार किया है। 'नयी कविता' और 'नयी समीक्षा' की समालोचना करते हुए 'मुक्तिबोध' ने काव्य-रचना प्रक्रिया एवं मूल्यांकन के समीक्षात्मक रूप-रेखा के प्रति अपना नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने कथ्य के स्तर पर जनवादी मान्यताओं को ग्रहण और स्थापित किया है। उनके अनुसार— "प्रगतिशील जनवादी कथ्य के लिए कला का कोई क्षेत्र निषिद्ध नहीं है।" उन्होंने कला के क्षेत्र में किसी भी शाश्वत मूल्य, आदर्श और उपलब्धि को नकारा नहीं वरन काव्य कला के क्षेत्र में उसकी महत्ता एवं उपयोगिता को स्वीकृति प्रदान की। उन्होंने जीवन के विकास विरोधी, रुढ़ एवं विकृत मूल्यो का विरोध किया है। उन्होने सदियों से प्रचलित अनुपयोगी एवं दूषित जीवनादर्शो को ढ़ोते रहने की प्रवृत्ति का निषेध किया है। उन्होंने अपनी जनवादी कला में, प्रगतिशीलता, मानवता एवं उच्च मानव जीवनादर्शो एवं मूल्यों को स्थान दिया है।

'मुक्तिबोध' ने प्राचीन भाववादी शैली की कलात्मक विशिष्टता को पहचाना। उन्होंने अपने काव्य की अभिव्यक्ति के लिये भाववादी शिल्प का ही चयन किया है। इस शिल्प के माध्यम से उन्होंने अपनी प्रगतिशील जनवादी चेतना को अत्यन्त सार्थक एवं सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। 'मुक्तिबोध' ने अपने काव्य मे जिस भाववादी शिल्प का प्रयोग किया है वह अपने परम्परागत रूप से थोड़ी भिन्न है। इसका कारण यह है कि 'मुक्तिबोध' ने उसके बारे में पूर्व निर्धारित मापदण्ड को पूर्ण स्वीकृति प्रदान नहीं की, बल्कि उसकी निर्धारित रूपरेखा में

मौलिक स्तर पर कुछ परिवर्तन किया। उसमे प्रयुक्त होने वाले रूपकों बिंबो एवं प्रतीको को नवीन अर्थ-सम्पर्श दिया।

'मुक्तिबोध' के काव्य एवं उनके द्वारा प्रस्तुत साहित्य-समीक्षा का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि वे भाववादी 'फैण्टेसी' शिल्प की सरलता और क्लिष्टता दोनो से ही परिचित थे। इसके बावजूद उन्हे 'फैण्टेसी' से विशेष लगाव था। दरअसल 'मुक्तिबोध' को चुनौतियो का सामना करने मे विशेष आनन्द मिलता था। वह उससे जूझने मे अपनी पूरी शक्ति और निष्ठा लगा देते थे।

'मुक्तिबोध' की दृष्टि में काव्य की रचना-प्रक्रिया और 'फ़ैण्टेसी' के बीच एक घनिष्ट सबध हैं। उन्होंने वस्तु-तत्त्व या उसके कथ्य को 'फ़ैण्टेसी' के रूप में ढ़ालने के लिए अपनी मौलिक परिकल्पना का सहारा लिया है। नए-पुराने एवं कुछ नवीन बिंब विधानों, प्रतीकों एवं रूपकों को सृजित करते हुए उनके अद्वितीय योग से उन्होंने अपने काव्य 'फ़ैण्टेसी' का ढ़ाचा निर्मित किया है। प्राचीन मिथकों को भी सम-सामयिक प्रसंग से सश्लिष्ट कर प्रयुक्त किया है।

'फ़ैण्टेसी' और रचना-प्रक्रिया

'मुक्तिबोध' ने अपने सृजनात्मक क्षणों में 'फ़ैण्टेसी' का विशेष महत्त्व स्वीकारा है। 'फैण्टेसी' उनके काव्य के सृजन-प्रक्रिया में रचना-प्रक्रिया का एक अंग बनकर प्रस्तुत हुई है। उन्होने सृजन-प्रक्रिया को तीन क्षणो मे विभक्त किया है 'फ़ैण्टेसी' सृजन-प्रक्रिया मे सृजनात्मकता का दूसरा क्षण या स्तर बनकर उपस्थित हुई है।

'एक साहित्यक की डायरी में 'तीसरा क्षण' शीर्षक लेख में 'मुक्तिबोध' ने रचना प्रक्रिया मे 'फ़ैण्टेसी' के योगदान एवं महत्त्व पर विस्तार से चर्चा की है। इस लेख में कविता की सृजन-प्रक्रिया के आरम्भिक स्तर (अनूभूति और कथ्य) से लेकर अन्तिम स्तर (अभिव्यक्ति) तक की प्रक्रिया को तीन स्तरो मे विभक्त किया गया है। ''कला का पहला क्षण है, जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है, इस अनुभव का अपने कसकते-दुःखते हुए मूलो से पृथक् हो जाना, और एक ऐसी 'फ़ैण्टेसी' का रूप धारण कर लेना, मानों वह 'फ़ैण्टेसी' अपनी आंखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस 'फ़ैण्टेसी' के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया का

आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता।[1] शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह मे वह 'फ़ैण्टेसी' अनवरत रूप से विकसित परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार वह 'फैण्टेसी' अपने मूलरूप को बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है।

. . .. '' 'फैण्टेसी' को शब्द-बद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो-जो सृजन होता है— जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है— वही कला का तीसरा और अन्तिम क्षण है।''[2]

कला के तीनो क्षणो को अपनी 'डायरी' मे विस्तार के साथ 'मुक्तिबोध' ने स्पष्ट किया है। इसके बिना वे कला को असम्भव मानते हैं। रचना प्रक्रिया के संबंध मे अपने अन्य निबन्धों मे उन्होने एक प्रकार से उक्त कथन की विस्तृत व्याख्या की है। 'मुक्तिबोध' के अनुसार— 'फैण्टेसी' अनुभव प्रसूत होती है, उसकी प्रतिकृति नहीं। उसी प्रकार कलाकृति 'फैण्टेसी' प्रसूत होती है उसकी प्रतिकृति नही।

अनुभव और 'फैण्टेसी' में 'मुक्तिबोध' पिता-पुत्री का सबंध देखते हैं। इसी संबंध की व्याख्या मे 'फ़ैण्टेसी' की निर्वैयक्तिक और स्वतंत्र भूमिका की पहचान भी हो जाती है। 'फ़ैण्टेसी' की सृजन-प्रक्रिया का आरम्भ अनुभव की तीव्रता से होता है। उसके बाद जो प्रक्रिया आरम्भ होती है उसमे ''यह अनुभव विचित्र रूप से अन्य मनस्तत्त्वों से जुड़ता हुआ मनस्पटल पर स्वयं को प्रक्षेपित कर स्वयं ही बदल जाता है। ज्यों हि यह घटना होती है, अनुभव के मूल अपनी दु:खती हुई भूमि से पृथक् हो जाते हैं। अर्थात् वे निरे वैयक्तिक न रहकर अपने से परे हो उठते है। जो 'फैण्टेसी' अनुभव की व्यक्तिगत पीड़ा से पृथक होकर अर्थात् उससे तटस्थ होकर अनुभव के भीतर की ही संवेदनाओं द्वारा उत्सर्जित और प्रक्षेपित होगी, वह एक अर्थ में वैयक्तिक होते हुए भी दूसरे अर्थ में नितान्त निर्वैयक्तिक होगी। उस 'फ़ैण्टेसी' में अब एक भावात्मक उद्देश्य की सगति आ जायेगी। इस भावात्मक उद्देश्य के द्वारा ही वस्तुतः 'फ़ैण्टेसी' को रूप रंग मिलेगा। किन्तु यह होते हुए भी वह 'फ़ैण्टेसी' यथार्थ में भोगे गये वास्तविक अनुभव की प्रतिकृति नहीं हो सकती। वैयक्तिक से निर्वैयक्तिक होने के दौरान में ही उस 'फ़ैण्टेसी' ने कुछ ऐसा नवीन ग्रहण कर लिया कि जिससे वह स्वयं भी वास्तविक अनुभव से स्वतंत्र बन बैठी। 'फ़ैण्टेसी'

अनुभव की कन्या है और उस कन्या का अपना स्वतंत्र विकासमान व्यक्तित्व है। वह अनुभव से प्रसूत है इसीलिए वह उससे स्वतंत्र है।[3]

'मुक्तिबोध' ने उपर्युक्त रूपक मे 'फैण्टेसी' और अनुभव के संबंध को सारगर्भित रूप मे स्पष्ट किया है। 'फैण्टेसी' अनुभव से ही उपजती है किन्तु उसके समरूप न होकर उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है, जैसे पिता से उत्पन्न होकर भी पुत्री का अपना अलग व्यक्तित्व होता है। रक्त के और जनेटिक संबध तो होते हैं, किन्तु व्यक्तित्व अलग होता है।

'मुक्तिबोध' ने कला के जिन तीन क्षणो का उल्लेख किया है वे आपस मे एक दूसरे पर पूर्णतया आधारित हैं। कला का पहला क्षण जीवनानुभूति का क्षण है। यह क्षण प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होता है। सभी व्यक्तियों मे अनुभूति क्षमता होती है। सभी अपने परिवेश और अपनी अनुभूति क्षमता के अनुरूप पृथक्-पृथक् जीवनानुभूति संचित करते हैं, इसीलिए कला का यह क्षण सबके लिए सामान्य रूप से उपलब्ध होता है। किसी भी कलाकृति के सृजन के लिए कला के तीनो क्षणो का क्रमिक रूप मे पूर्णावस्था तक पहुंचना अनिवार्य है। कलाकार की अनुभूति मे तीव्र आवेग और अभिव्यक्ति की भावना निहित होती है। परन्तु जन सामान्य मे इसका अभाव होता है। इसी बुनियादी अन्तर के कारण उसकी अनुभूति कलात्मक अभिव्यक्ति की दिशा में गतिशील नही हो पाती है। साहित्यकार की अनुभूति का तीव्र आवेग आत्माभिव्यक्ति के लिए गतिशीलता प्रदान करता है। यह गतिमयता उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है और उसकी गति का निर्धारत भी यहीं से प्रारम्भ हो जाता है। सृजनशीलता के इस क्षण की अनुभूति में भोक्तृत्व एवं सृष्टामन दोनो ही उपस्थित होते हैं और इसी क्षण में अनुभूति में कल्पना तत्त्व का योग भी होता है। सृजनात्मक कल्पना के सहयोग से अनुभूति तत्त्व अपना विस्तार करती हुई आगे बढ़ती है।

आगे चलकर भोक्ता और सृष्टा मन में एक 'संतुलित एकीभूत' की स्थिति स्थापित होती है क्योकि इस एकीभूत संतुलन के अभाव में कोई प्रक्रिया रचना उत्कृष्ट नही हो सकती। इस विषय में 'मुक्तिबोध' ने काव्य की रचना प्रक्रिया दो नामक निबन्ध में लिखा है "यदि दर्शक मनोरूपों की गतियो से इतना निर्लिप्त है कि वह शब्द संवेदनाओं में खो जाता है और मनोरूपो की गति जड़ हो जाती है, तो ऐसी निर्लिप्तता भी उसके काम की नही होती। और यदि वह उन

मनोरूपो की गतियो मे पूर्णतः विलीन हो जाता है, तो शब्द-संवेदनाओं के लिए अवकाश की हीनता के फलस्वरूप अभिव्यक्ति निर्बल अथवा दुरुह हो जाती है"।[4] कृति के सर्जन-प्रक्रिया में भोक्ता की स्थिति-बद्ध संवेदना और दर्शक या सृष्टा की स्थित-मुक्त संवेदना का समन्वय होता है और एक तटस्थता की स्थिति होती है। अनुभूति की अभिव्यक्ति मे भोक्ता और सृष्टा तत्त्व की तटस्थता एव सतुलित समन्वय का समावेश आवश्यक है।

कला के प्रथम क्षण मे भोक्ता मन की संवेदनाएँ और सृष्टामन की संवेदनाएँ पृथक्-पृथक् एवं परस्पर विरोधी अवस्था मे रहती हैं। इनका योग कला के दूसरे क्षण मे पहुंचकर होता है, इसी चरण मे आकर वे समन्वित इकाई बनकर ऐसी स्थिति मे पहुंचती है जो 'संतुलित एकीभूतना' की स्थिति है। परन्तु यह संतुलन द्वन्द्व प्रक्रिया के बाद स्थापित होता है। 'मुक्तिबोध' के अनुसार सृजन एक द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया है। काव्य की रचना-प्रक्रिया के आरम्भिक स्तर से लेकर अत तक के सभी स्तरों में यह द्वन्द्व प्रक्रिया चलती रहती है। कला के प्रथम क्षण मे भोक्तृत्व प्रधान होता है। दर्शकत्त्व, भोक्तृत्व की तुलना में कम प्रभावी रूप मे रहता है।

आरम्भिक स्तर पर कृतिकार की अनुभूति, उसका निजी वैशिष्टय या वैयक्तिक अनुभूति प्रमुख होती है। वह उसका अपने बुद्धि विवेकानुसार सामान्यीकरण करता है। इस प्रक्रिया में वह अपने स्व से ऊपर उठते हुए अपनी अनुभूतियों का विस्तार करता है। यों कह ले कि अपने को तटस्थ बनाते हुए अपनी विशिष्टानुभूति को सामान्यीकृत करता है, जिससे उसकी अनुभूति सार्वजनिक बन जाती है।

'मुक्तिबोध' के अनुसार— रचना–प्रक्रिया एक खोज है। इसलिये कवि में आत्मनिरीक्षण और आत्मसंघर्ष की प्रक्रिया आवश्यक है। 'मुक्तिबोध' के अनुसार— किसी भी अनुभूति या वस्तु को अपनी काव्यात्मक परिणति के लिए सार्वजनिक या विश्वात्मक होना चाहिए। किसी के नितान्त व्यक्तिगत अनुभव, जीवन तथ्यानुभूति, जीवन निष्कर्ष और मूल्य तब तक विश्वस्तरीय सत्य के रूप को ग्रहण नहीं कर सकते जब तक वे अपने ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक परिवेश की कसौटी पर न कसे गये हों। इस प्रक्रिया में संवेदना में ज्ञानतत्त्व का समावेश होता है।

यथार्थ जीवन के सत्य तथ्यों एवं मूल्यों को प्राप्त करने के लिए रचनाकार को अपने

'स्व' के दायरे से बाहर निकलता है। वह सामान्य जन के अनुभवो से जुड़कर, उनसे अपना सामजस्य स्थापित करता है। तदोपरान्त प्राप्त अनुभवो एव परिवेश के आधार पर अपने अनुभव का निरीक्षण एवं परीक्षण कर उन्हे सशोधित एव परिष्कृत करता है। इसी के आधार पर वह अपनी मूल्य दृष्टि निर्मित करता है। यह तथ्य संकेत करता है कि जीवन मूल्य और जीवन सत्य की प्राप्ति हेतु रचनाकार के अन्तः और बाह्य परिवेश में संघर्ष होता है और परिणामस्वरूप उसकी विशिष्टानुभूति की परिणति सामान्यनुभूति मे होती है तथा अनुभूति विश्वस्तरीय हो जाती है। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब उसके आत्मसंघर्ष के पश्चात उसके अन्त·बाह्य मे एकत्त्व स्थापित हो जाता है, वे एकाकार हो जाते हैं। इस निर्वैयक्तिकता मे उसकी निजता भी निहित रहती है। 'मुक्तिबोध' के शब्दो मे— ''यह क्षण बहुत आगे तक प्रवाहित हो जाता है तब आत्मपरकता मे भी एक निर्वैयक्तिकता और निर्वैयक्तिकता में भी एक आत्मपरकता उत्पन्न हो जाती है मानो स्थिति-बद्ध संवेदना ने स्थिति-मुक्त दृष्टि को अपनी स्थिति-बद्धता प्रदान कर, उससे अपने लिए स्थिति-मुक्तता ले ली है''।[5] इस प्रकार उसका निजी दृष्टिकोण निर्वैयक्तिक स्थिति ग्रहण करता है और अन्त. बाह्य के सहयोग से प्राप्त जीवन तथ्यो से प्रेरणा प्राप्त कर उसका एक भावात्मक लक्ष्य निर्धारित होता है। यही भावात्मक उद्देश्य 'फ़ैण्टेसी' का रूप निर्धारित करता है, और यही सवेदनात्मक उद्देश्य अपनी पूर्ति हेतु उसमे लक्ष्यों के प्रति हार्दिक स्नेह उत्पन्न करता है। इसीलिए कृतिकार मे 'सतत जागरुकता, सतत संस्कार सतत जिज्ञासा और अपने लक्ष्यो के प्रति हार्दिक स्नेह के बिना आत्मनिरीक्षण और आत्मसंघर्ष जो कवि को करना पड़ता है व्यर्थ है।[6]

संवेदनात्मक उद्देश्य ही जीवन तथ्यों को उचित दिशा देता है। वही कला का विधान करता है तथा अपनी अभिव्यक्ति के लिए 'फ़ैण्टेसी' के ढ़ांचे और रूप को रचता है।

'मुक्तिबोध' ''फ़ैण्टेसी'' को कला का दूसरा क्षण मानते हैं, यह क्षण सौन्दर्यानुभूति का भी क्षण है। उनके अनुसार— 'फ़ैण्टेसी' जीवनानुभूति पर आधारित सौन्दर्यानुभूति है। 'फैण्टेसी' या सौन्दर्यानुभूति जीवनानुभूति का पुनः सृजित रूप है जब वास्तविक अनुभव-संवेनदना, सृजनात्मक कल्पना के सहयोग से अपना क्षेत्र विस्तार करती है तब 'फ़ैण्टेसी' का उदय होता है। 'फ़ैण्टेसी' जीवन अनुभव का ही कल्पनोद्भासित रूप है। कलाकार अपनी निजबद्धता को त्यागकर, सृजनात्मक कल्पना के द्वारा अनुभूति का विस्तार करना चाहता है, तब

उसके अनुभव के पुज कल्पना के संयोग से एक चित्र-शृंखला के रूप में उसके मनस्पटल पर प्रवाहित होने लगते हैं। अनुभव और कल्पना के योग से उसके मनस्पटल पर उभरने वाले मनश्चित्र अपने पूर्व रूप (अनुभव के मूलरूप) से भिन्न हो जाते है। इस तरह कलाकार के व्यक्तिगत अनुभव और अनुभव से व्युत्पन्न 'फ़ैण्टेसी' मे अन्तर आ जाता है। इस प्रक्रिया मे कल्पना की मुख्य भूमिका होती है। उसका मन कल्पना के उन चित्रो मे तन्मय होकर रस मे निमग्न हो जाता है। यही सौन्दर्य प्रतीति है। अनुभूति को 'फैण्टेसी' में रूपान्तरित करने, कलात्मक क्षण मे प्रविष्ट करने उसकी गतिमानता को बनाए रखने में कल्पना का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

''तीसराक्षण'' नामक लेख मे 'फ़ैण्टेसी' को कला का दूसरा क्षण स्वीकार करने वाले 'मुक्तिबोध' ने काव्य की रचना प्रक्रिया दो में लिखा है,- ''आत्म चरित्रात्मक और सृजनशील ये सवेदनशील उद्देश्य, हृदय में स्थित जीवन्त अनुभवों को संकलित कर उन्हें कल्पना के सहयोग से उद्दीप्त और मूर्तिमान करते हुए, एक ओर प्रवाहित कर देते हैं। यह कला का प्रथम क्षण है, या, कहिये सौन्दर्य प्रतीति का क्षण है। यह क्षण सामान्य-जन को भी प्राप्त होता रहता है।''[7] यहाँ 'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' (सौन्दर्य-प्रतीत) को पहला क्षण माना है। एक अन्य लेख 'कलात्मक अनुभव' में उन्होंने कहा है, 'ध्यान मे रखने की बात है कि वास्तविक सौन्दर्यानुभवों के अर्थात् कलात्मक अनुभवों के क्षण में अर्थात् मनोमय जीवन के तीसरे स्तर पर, जब संवेदनात्मक उद्देश्यों से प्रेरित कल्पना जीवन विधान है, तब उस जीवन विधान के अनुभव तत्त्व (इसी दूसरे स्तर मे गड़ी हुई) इसी संचित अनुभव व्यवस्था से प्रस्फुटित होते हुए उस तीसरे अर्थात् कलात्मक क्षण को उपलब्ध होते हैं। संक्षेप में, विधायक कल्पना संवेदात्मक उद्देश्य द्वारा विचलित किये गये जिन अनुभवों के पैन्टर्न बनाती है, वे अनुभव इसी दूसरे स्तर में समाहित रहते हैं। इसी को उन्होंने तीसरा स्तर स्वीकार किया है और अभिव्यक्ति को इसका अगला स्तर बताया है। फिलहाल उनके विविध लेखों में उनके द्वारा क्षणों का विभक्तीकरण भले ही भिन्न-भिन्न हो, स्तर या क्षणों की संख्या भले ही कहीं अधिक या कम हो, परन्तु उन सब में वर्णित काव्य की रचना प्रक्रिया एक जैसी है।

मूल अनुभूति 'फ़ैण्टेसी' का रूप ग्रहण करते समय प्रारम्भिक अवस्था से भिन्न हो

जाती है, जिसके कारण वह भोगे गये यथार्थ की वास्तविकता की प्रतिकृति नही रह जाती वह प्रतिनिधि बन जाती है। दर्शक तत्त्व का ज्ञान और भोक्ता तत्त्व की संवेदना के समन्वय से उत्पन्न हुआ एकत्त्व और 'स्व' के विलगन से उत्पन्न हुई सामान्यीकरण से उसे प्रतीत होता है कि उसकी अनुभूति या तथ्य सबके लिए महत्त्वपूर्ण है। "आत्मा, अनुभवप्रसूत 'फ़ैण्टेसी' मे दार्शनिक या व्याख्यात्मक ढ़ंग से जीवन का अर्थ नहीं खोजती, वरन् स्वयं, आप-ही आप, नये-नये संकेत और नये-नये अर्थ आंकलन करने लगती है।[8] इस प्रयास में उसका ज्ञान पक्ष भी समाहित रहता है और इस तरह संवेदना ज्ञानात्मक हो जाती है।

इस प्रकार अनुभूति में प्रतिनिधिक महत्त्व भावना के उदय होने से 'फैण्टेसी' संवेदनात्मक उद्देश्य से परिचालित जीवन-मर्म को अभिव्यक्त करने के लिए उत्कठित हो उठती है। 'मुक्तिबोध' के अनुसार 'फैण्टेसी' प्रतिनिधिक होती है इसीलिए "उसमे संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना होती है"[9] और 'कला के दूसरे क्षण मे उपस्थित 'फ़ैण्टेसी' की इकाई मे सवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक सवेदनाएं कुछ इस प्रकार समायी रहती हैं कि, लेखक उन्हे शब्द-बद्ध करने के लिए तत्पर हो उठता है।"[10] यहीं से शब्दाभिव्यक्ति का प्रयास प्रारम्भ होता है और यहीं से शुरु होता है कला का तीसरा और अन्तिम क्षण।

तीसरे क्षण को 'मुक्तिबोध' नये संघर्ष की शुरुआत मानते हैं लेखक ज्यों ही 'फैण्टेसी' शब्दो मे व्यक्त करने लगता है, उसका रंग घुलने लगता है वह प्रवाहित होने लगती है। 'फैण्टेसी' को शब्द-बद्ध करने की प्रक्रिया में अनेक तत्त्व उसमें मिल जाते हैं ये तत्त्व निरन्तर उसे संशोधित करते रहते हैं। इस 'फ़ैण्टेसी' के भीतर की दिशा और उद्देश्य को उसका मर्म-प्राण मानते हुए 'मुक्तिबोध' का मत है- दिशा और उद्देश्य के मर्म प्राण को धारण कर 'फ़ैण्टेसी' गतिहीन नही रह सकती। 'फ़ैण्टेसी' गतिहीन स्थिर-चित्र नहीं है। उद्देश्य और उद्देश्य की दिशा के कारण ही वह गतिमय है। 'फ़ैण्टेसी' डायनेमिक होती है। कला के प्रथम क्षण के अन्तिम सिरे पर उत्पन्न होते ही उसकी गतिमानता शुरु हो जाती है। 'फ़ैण्टेसी' जो शुरु में एक आभासा-रूप होती है, वह तुरन्त ही अनेक चित्रो की सुसंगत पाँत बनने लगती है। एक-एक मर्म के आस-पास ये चित्र संगठित होकर प्रवाहमान होते हैं[11] शब्द-बद्ध होने की प्रक्रियाएं 'फ़ैण्टेसी' मे परिवर्तित होने लगती हैं। 'मुक्तिबोध' इसका कारण बताते हुए लिखते हैं— "चूंकि 'फ़ैण्टेसी'

से मर्म को शब्द-बद्ध करते समय अनेक अनुभव- चित्र भाव और स्वर तैर आते है, इसीलिए 'फ़ैण्टेसी' के उद्देश्य और दिशा के निर्वाह के लिए कलाकार को भाव-सम्पादन करना पड़ता है जिससे कि केवल मर्म के अनुकूल और उसको पुष्ट करने वाले स्वर, भाव तथा चित्र ही कविता में आ सके, और इस बीच यदि कोई अन्य अनुकूल मार्मिक अनुभव तैर आये, तो उसे भी 'फैण्टेसी' के मर्म की उद्देश्य-दिशा में प्रवाहित कर दिया जाये अर्थात भाषा प्रवाहित कर दिया जाय।''[12]

जैसा कि मैंने कहा कि कला के तीसरे क्षण में अर्थात 'फ़ैण्टेसी' के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया में 'फ़ैण्टेसी' का पिघलाकर बहना प्रारम्भ होता है। 'मुक्तिबोध' बताते हैं कि— '' 'फ़ैण्टेसी' को शब्द–बद्ध करने या चित्रित करने की प्रक्रिया के दौरान में ही वह 'फ़ैण्टेसी' पिघलकर उस प्रक्रिया के प्रवाह मे बहने लगती है................और शब्द-बद्ध होने पर अथवा चित्रित होने पर जो कृति या रचना तैयार होती है, वह कृति या रचना कला के दूसरे क्षण की 'फैण्टेसी' की पुत्री है ,प्रतिकृति नहीं। इसीलिए मूल 'फ़ैण्टेसी' से उसका व्यक्तित्व स्वतंत्र, विचित्र और पृथक् है।[13]

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि रचना-प्रक्रिया में 'मुक्तिबोध' एक नही दो 'फैण्टेसी' की बात करते हैं। अनुभव अपने मूल से अलग हो जाता है तब एक 'फ़ैण्टेसी' बनती है। यह मूल 'फ़ैण्टेसी' होती है। उससे उत्पन्न दूसरी 'फ़ैण्टेसी' स्वतंत्र, विचित्र और पृथक व्यक्तित्व लेकर उत्पन्न होती है इसको इस रूप में देखा जा सकता है-

अनुभव की उत्कट तीव्रता का क्षण

।

अनुभव का अपने मूल से अलग हो जाना

।

अलग हुए अनुभव का 'फ़ैण्टेसी' को जन्म देना

(अर्थात अनुभव - कन्या = मूल 'फ़ैण्टेसी')

।

शब्द - बद्ध या चित्रित 'फ़ैण्टेसी' = रचना

(अर्थात मूल 'फ़ैण्टेसी' की पुत्री)

कवि का अनुभव, उसका ज्ञान, उसकी इच्छाएँ और उसकी विश्वदृष्टि किसी उत्कट तीव्रता के क्षण में विशिष्ट अनुभव बनकर कौंधते है, वह अनुभव फिर अपने मूल से अलग होता है, तब एक 'फैण्टेसी' बनती हैं। उसमें उत्पन्न होती है वह 'फैण्टेसी' जिसे कला कृति या रचना कहा जाता है।

कला का तीसरा क्षण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि इस क्षण मे अमूर्त भावो को मूर्त रूप देने का प्रयास होता है और अभिव्यक्ति की समस्त सफलता और असफलता इस क्षण मे निहित रहती है। यह सृजनकर्त्ता के सृजनात्मक कौशल प्रस्तुति का क्षण है। इस क्षण में भावाभिव्यक्ति हेतु भाव एव शब्द के बीच द्वन्द्व प्रक्रिया चलती है। इस क्षण में 'फैण्टेसी' के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया आरम्भ होती है। कलाकार अपने विचारो और भावो को कलात्मक और साहित्यिक मूर्त रूप देने की दिशा में प्रयासरत होता है।

आरम्भिक अवस्था मे 'फ़ैण्टेसी' एक धुंधले छाया चित्र के रूप मे रहती है वह तीसरे क्षण मे पहुंचकर स्पष्ट होने लगती है। काव्य मर्म से संबंधित अनेक चित्रावलियाँ शृंखलाबद्ध हो एक सुसंगत, व्यवस्थित एवं क्रमिक रूप से उद्‌घाटित होने लगती है।

कला का तीसरा क्षण, शब्द साधना का क्षण है। 'मुक्तिबोध' के अनुसार 'फ़ैण्टेसी' को शब्द-बद्ध करते समय अनेक भाव सृजनकर्त्ता के हृदय में उत्पन्न होते है। तब सृजनकर्त्ता काव्य के मर्मानुकूल भावों का उसमें से चयन करता है और इससे असम्बद्ध भावों को त्यागता चलता है। क्योकि अनावश्यक भाव-तत्त्व उसके काव्य को बोझिल एवं विकृत कर देते हैं। भाव-चयन प्रक्रिया कृति के पूर्ण होने तक चलती रहती हैं।

कवि काव्य के संवेदनात्मक उद्देश्य और दिशानुसार हृदयगत् भाव-चित्रों का संशोधन और संपादन करता चलता है। यदि उसके हृदय में पूर्व संचित भाव के अतिरिक्त, अन्य मर्म से संबंधित कोई नवीन भाव प्रविष्ट कर जाए तो उस भाव-तत्त्व को अपने मर्मानुकूल रूप (फार्म) मे संपादित करते हुए उसे अपने काव्य में स्थान देता है। इस प्रकार काव्य का वस्तु तत्त्व अपने अर्थ क्षेत्र का विस्तार करता है। इस अर्थ-विस्तार की प्रक्रिया से गुजरते हुए और कल्पना के योग से 'फ़ैण्टेसी' अपने जिस रूप को तैयार करती है, उसमे सर्जक की अनुभूतियों के भाव और स्वर दोनों विद्यमान रहते हैं। परन्तु इन सबके निर्माण व संचालन में संवेदनात्मक उद्देश्य की नियामक

भूमिका निहित रहती हैं। इसी कारण हम संवेदनात्मक उद्देश्य को 'फ़ैण्टेसी' का प्राणतत्त्व भी मान सकते हैं। ''संवेदनात्मक उद्देश्य विद्युत की वह धारा है जो अन्तर्व्यक्तित्व में प्रसूत होकर जीवन-विधान करती है, कला-विधान करती है, अभिव्यक्ति-विधान करती है।''[14] इससे स्पष्ट है कि 'फैण्टेसी' के रूप तत्त्व का निर्माण, संगठन व दिशा निर्धारण तथा मर्म-भाव समर्थित नए आगतुक भावो का ग्रहण, संपादन, संशोधन, उनकी क्रमबद्धता एवं गति का परिचालन यही संवेदनात्मक उद्देश्य करती है।

'फैण्टेसी' जैसे ही शब्दाभिव्यक्ति की दिशा में आगे बढ़ती है वैसे ही 'फ़ैण्टेसी' के भीतर व वह मर्म जिसमें एक उद्देश्य है, एक पीड़ा है, और एक दिशा है— अनेक जीवनानुभवों से समर्थित, संवर्धित और पुष्ट होकर प्रकट होना चाहता है। इन जीवनानुभवो के चित्र, भाव और स्वर 'फ़ैण्टेसी' के मर्म में घुलने लगते हैं। 'फ़ैण्टेसी' की गतिमानता की धारा मे वे प्रवाहित होकर उस धारा को अधिक सार्थक और पुष्ट करते हैं........।''[15]

'' ....चूंकि 'फ़ैण्टेसी' के मर्म को शब्द-बद्ध करते समय अनेक अनुभव चित्र, भाव और स्वर तैर आते हैं, इसलिए 'फैण्टेसी' के उद्देश्य और दिशा के निर्वाह के लिए कलाकार को भाव-सपादन करना पड़ता है, जिससे कि केवल-मर्म के अनुकूल और उसको पुष्ट करने वाले स्वर, भाव तथा चित्र ही कविता में आ सकें और इस बीच यदि कोई अन्य अनुकूल मार्मिक अनुभव तैर आये, तो उसे भी फ़ैण्टेसी के मर्म की उद्देश्य-दिशा में प्रतिपादित कर दिया जाये, अर्थात् भाषा प्रवाहित कर दिया जाये।''[16]

इस स्तर में 'फ़ैण्टेसी' अपना रूप विकास करती है और अपने अंदर कई नवीन तथ्य को समेट लेती है, जिसके फलस्वरूप वह दूसरे क्षण में निर्मित कवि के मनश्चित्र अर्थात् पूर्व रचित हुई 'फ़ैण्टेसी' से बहुत भिन्न हो जाता है।

कला के तीसरे क्षण का संघर्ष भाव और शब्द के बीच का संघर्ष है, कवि की भाव-साधना की प्रक्रिया में उसके अनुभव-चित्र, एक कल्पनात्मक चित्रों को शृंखला की रूप में उसके मनस्पटल पर प्रवाहित होते हैं, तब रचनाकार 'फ़ैण्टेसी' की भावात्मक संगति के अनुसार अपने कल्पना-चित्रों का संपादन करते हुए भाव-चित्रों की रूपरेखा अपने हृदय में तैयार कर लेता है। मन में स्थूल रूप से तैयार इस रूप (फार्म) के अनुसार ही वह अभिव्यक्ति के लिए प्रयासरत होता

है। इस तरह उसके हृदयगत संचित भावों के प्रकटीकरण की शब्द-साधना प्रारम्भ होनी है।

काव्य सृजन में शब्दो का अति विशिष्ट योगदान होता है। प्रत्येक शब्द अपने में कोई न कोई अर्थ-प्रतीति और अर्थसत्ता रखते है। प्रत्येक शब्द मे एक शक्ति, चित्रात्मकता, भावात्मकता, ध्वन्यात्मकता, एक विशिष्ट अर्थ-संकेत निहित होता है। रचनाकार अपने भाव-संकेतो का उचित प्रकटीकरण करने वाले शब्दो का चयन करता है। तात्पर्य यह है कि वह अपने काव्य के लिए ऐसे शब्दो को चुनता है जो उसकी भावना और भाव-ध्वनियों के उचित अर्थ को समुचित रूप में ध्वनित करने में सक्षम हों। भावों और शब्दों के उचित संतुलन पर ही रचना की गुणवत्ता व श्रेष्ठता आधारित होती है एवं काव्य में सम्प्रेषणीयता का गुण आता है। इसीलिए वह "अपने हृदय के तत्त्व के रंग, रूप, आकार के अनुसार अभिव्यक्ति का रंग, रूप और आकार तैयार करना चाहता है। इसलिए उसे अपने हृदय की भाव-ध्वनियों की, शब्दो की, अर्थ-ध्वनियों से अनवरत तुलना करनी पड़ती है"।[17] इस तरह रूप के विकास की इस अवस्था में भाव और भाषा के बीच द्वन्द्व की स्थिति आरम्भ होती है।

'मुक्तिबोध' के अनुसार— "भावाभिव्यक्ति के क्रम में लेखक भावानुकूल भाषा का संरचनात्मक विधान करना चाहता है। वह भाषा के द्वारा अपने मानसी 'फ़ैण्टेसी' चित्रों को फ्रेम में गूँथने का प्रयास करता है इसके फलस्वरूप 'फ़ैण्टेसी' में दो प्रतिक्रियाएं होती हैं। (1) भाव-ध्वनियो को उपलब्ध शब्द-ध्वनियों के कटघरे में फँसाने का प्रयत्न, जिसके फलस्वरूप काफ़ी से मनस्तत्त्व अपना मौलिक और मूल तेज त्यागकर एक नये संदर्भ से संबद्ध आकार में प्रकट होते है...... ....(2) इसके विपरीत दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अभिव्यक्ति साधना के दौरान मे स्वयं अभिव्यक्ति 'फैण्टेसी' को संपन्न और परिपूर्ण करने लगती है। 'फ़ैण्टेसी' अपने को प्रकट करने के लिए समानार्थ-वाचक शब्दों को लाती है।[18]

इसको स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है........'फ़ैण्टेसी' द्वारा उद्बुद्ध शब्दों के अर्थ-अनुषंग और उनसे सम्बद्ध चित्र नयी भाव-धाराएँ बहा देते हैं। ये भाव धाराएँ 'फ़ैण्टेसी' के अनुकूल और समीपवर्ती होती है। उन भाव-धाराओं में अनेकों नये-पुराने अनुभव और अपने-पराये भाव होने से 'फ़ैण्टेसी' की अर्थ-सत्ता का विस्तार हो जाता है। साथ ही इस विस्तृत क्षेत्र में, ये भाव-धाराएं 'फ़ैण्टेसी' पर, और 'फ़ैण्टेसी' इन भाव-धाराओं पर, क्रिया-प्रतिक्रिया करने

लगती है। इस क्रिया-प्रतिक्रिया से फैण्टेसी का क्षेत्र और विस्तृत हो जाता है अनुभव की पर्सपेक्टिवता प्राप्त हो जाता है। 'फैण्टेसी' के भीतर के मूल उद्देश्य और दिशा मे विस्तार भर उठना है''[19] इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा है '' 'फैण्टेसी' अपने अनुकूल शब्दो मे स्थित अर्थ-स्पंदन को उद्बुद्ध करती है। इन शब्दो के ढ़ाँचों मे 'फ़ैण्टेसी' को फ़िट करना पड़ता है, इसलिए 'फ़ैण्टेसी' का मौलिक तेज काफ़ी कट-छँट जाता है। शब्दो के पीछे की अर्थ-परम्परा 'फ़ैण्टेसी' के मूल रंगों को छाँट देती है, उसके आकार में परिवर्तन कर देती है, उसकी मौलिक गहराई को भिन्न बना देती हैं, उसकी मौलिक गहनता अर्थात् व्यक्तिगत संदर्भ भी तराश देती है।''[20]

'मुक्तिबोध' भाव और भाषा दोनो को महत्त्वपूर्ण मानते है पर भाव-तत्त्व को भाषा तत्त्व पर तरजीह देते हैं। काव्य का मुख्य अभिप्राय तो भाव या कथ्य से होता है। भाषा उसके उचित प्रकटीकरण में सहायक होती है, उसकी उचित एवं कलात्मक अभिव्यक्ति करती हैं, शब्द चमत्कार या पांडित्य प्रदर्शन के नाम पर भाव तत्त्व की काँट-छाँट के वे विरोधी है। वे अपने रचना-प्रक्रिया के विवेचन मे दोनो का आनुपातिक सामंजस्य स्थापित करते हैं। इसको वे काव्य की प्रमुख शक्ति मानते हैं।

तीसरा क्षण कवि-प्रतिभा की कसौटी होता है। उसकी कुशलता इस तथ्य में निहित है कि वह कथ्य के मुख्य रूप की रक्षा करते हुए अर्थ एवं भाव क्षेत्र का विस्तार करें। 'मुक्तिबोध' के अनुसार— ''अपने कथ्य के अनुरूप नवीन भाषिक संरचना करने वाला कवि, निःसंदेह महान् है।''[21]

कला के तीन क्षणों और 'फ़ैण्टेसी' -निर्माण की प्रक्रिया का संबंध सौन्दर्यानुभवों से जोड़ते हुए अर्थात पाठक या दर्शक के सौन्दर्यानुभवों को साथ रखते हुए 'मुक्तिबोध' समझाते हैं कि ''सौन्दर्य तब उत्पन्न होता है जब सृजन— शील कल्पना के सहारे, संवेदित अनुभव ही का विस्तार हो जाये। कलाकार का वास्तविक अनुभव और अनुभव की संवेदनाओं द्वारा प्रेरित 'फ़ैण्टेसी', इन दोनों के बीच कल्पना का एक रोल होता है। वह रोल— वह भूमिका एक सृजनशील भूमिका है। वही कल्पना उसे वास्तविक अनुभव की व्यक्ति–बद्ध पीड़ाओं से हटाकर, उस अनुभव ही को दृश्यवत् करके, उसी अनुभव को नये रूप में उपस्थित कर देती है। किन्तु,

यह अनुभव दृस्यवत् होते ही मूल अनुभव से पृथक् होकर भिन्न हो जाना है। इस दृश्यवत् उपस्थित और विस्तृत अनुभव या फ़ैण्टेसी मे, (जो कला का दूसरा क्षण है) अनुभविता अर्थात 'फैण्टेसी' का जनक-दर्शक, जीवन के नये-नये अर्थ ढूँढ़ने लगता है, अनुभव-प्रसूत 'फ़ैण्टेसी' मे जीवन के अर्थ खोजने और उसमे आनन्द लेने की इस प्रक्रिया मे ही जो प्रसन्न भावना पैदा होती है, वही एस्थेटिक एक्सपीरियेन्स (सौन्दर्यानुभव) का मर्म है।"[22]

'फैण्टेसी' मे जीवन के अर्थ खोजने और उसमें आनन्द लेने की प्रक्रिया मे उत्पन्न सौन्दर्यानुभव की व्याख्या को 'मुक्तिबोध' अपने मित्र केशव के साथ तर्क करते हुए और आगे बढ़ाते है। "आत्मा अनुभवप्रसूत 'फ़ैण्टेसी' में दार्शनिक या व्याख्यात्मक ढ़ंग से जीवन का अर्थ नही खोजती, वरन् वह स्वयं आप-ही-आप, नये-नये संकेत और नये-नये अर्थ आकलन करने लगती है।"[23]

यहाँ विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि मुक्तिबोध सौन्दर्यानुभव (एस्थेटिक एक्सपीरियेन्स) को एक सृजनशील प्रक्रिया मानते हैं। उसमें सौन्दर्यानुभव के साथ-साथ अन्य तत्त्व भी रहते हैं, जैसे नये-नये अर्थ, महत्त्व और अर्थ संकेतों की प्राप्ति। इन अर्थ-संकेतों के प्राप्तकर्ता दोनो होते हैं-'फ़ैण्टेसी' के जनक अर्थात रचनाकार और उसके पाठक दर्शक या श्रोता। 'मुक्तिबोध' इस रूप मे इसे रखते हैं कि "इस प्रक्रिया में जो प्रसन्न भावना पैदा होती है वही एस्थेटिक एक्सपीरियेन्स का एक तत्त्व है। पूरे एस्थेटिक एक्सपीरियेन्स मे इस प्रसन्न भावना के अतिरिक्त नये-नये अर्थ-महत्त्व की प्राप्ति भी शामिल है। एस्थेटिक एक्सपीरियन्स एक सृजनाशील प्रक्रिया है। पाठक या दर्शक स्वयं ज़ब कोई काव्य, उपन्यास या नाट्क देखता है, तो जब तक उसे नये-नये अर्थ-महत्त्व और अर्थ-संकेत प्राप्त न होते जायें, तब तक उसको एस्थेटिक एक्सपीरियेन्स प्राप्त हो ही नहीं सकता। हाँ यह सही है कि पाठक या श्रोता को, वैसे ही 'फ़ैण्टेसी' के जनक को, 'फ़ैण्टेसी' में, जो नये-नये अर्थ-महत्त्व या अर्थ प्राप्त होते हैं, वे अपनी-अपनी उत्तेजित जीवन-संवेदनाओं द्वारा ही मिलते हैं। ये संवेदनायँ ज्ञानात्मक होती हैं। कला के दूसरे क्षण में अनुभव-प्रसूत 'फ़ैण्टेसी' में जब तक आत्मा को नये-नये महत्त्व और अर्थ दिखाई नहीं देगें, तब तक वह आत्मा आतुर, आकुल भावना में बहकर उस 'फ़ैण्टेसी' को शब्द-बद्ध करने की ओर प्रवृत्त ही नहीं होगी। इस दृष्टि से देखने पर, कलाकार को कला के

तीन क्षणो मे, भिन्न रूपों से अलग-अलग प्रकार से सौन्दर्य-प्रतीतियाँ होती रहती हैं। असल मे ये सौन्दर्य-प्रतीतियाँ, महत्त्व प्रतीतियाँ हैं, भावनामय अर्थानुभव हैं।''[24]

उल्लेखनीय है कि 'मुक्तिबोध' रचना की प्रक्रिया और आस्वादन की प्रक्रिया को एक साथ सामने रखकर 'फ़ैण्टेसी' के स्वरूप पर विचार कर रहे हैं। इसीलिए अन्त मे यह जोड़ना आवश्यक समझते हैं कि ''पाठक या श्रोता अपने ढ़ंग से ये अर्थ-प्रतीतियाँ करता है और कलाकार अपने ढ़ंग से।''[25]

एक अन्य वाक्यांश भी अविस्मरणीय है कि पाठक और रचनाकार दोनों अपनी-अपनी उत्तेजित जीवन संवेदनाओं (ज्ञानात्मक) द्वारा ही 'फ़ैण्टेसी' मे नये-नये अर्थ महत्त्व और अर्थ प्राप्त करते हैं। केशव द्वारा प्रस्तुत तर्क के रूप में 'मुक्तिबोध' कला के प्रथम क्षण में अनुभव तत्त्व के साथ-साथ दर्शकत्त्व का कुछ-न-कुछ अंश भी स्वीकार करते हैं। भोक्तृत्व और दर्शकत्व 'फैण्टेसी' के उदय और 'फ़ैण्टेसी' के ही रंगो में अनुभव के विस्तार के समय साथ-साथ रहते हैं। इन दोनों के मूल को कला के प्रथम क्षण में अर्थात् अनुभव-तत्त्व की आदिम प्रधानता मे, ही खोजा जाना चाहिए। तर्क यह है कि जब प्रथम क्षण में वे प्रच्छन्न रहेगे, तभी दूसरे भाग में उदित व्यक्त और विकसित होंगे।''[26]

यहाँ सृजन-प्रक्रिया और सौन्दर्य-प्रतीति दोनों को द्वन्द्वात्मक मानकर इस व्याख्या को आगे बढ़ाया गया है। ''सारी सृजन-प्रक्रिया एक प्रवाहमान गति है''[27] अतः ''पहले क्षण में ही भोक्ता और दर्शक के गुणों का आविर्भाव होना चाहिए। दूसरे क्षण में, जो 'फ़ैण्टेसी' उत्पन्न होती है - उस 'फ़ैण्टेसी' के दर्शक की जो महत्त्व प्रतीति होती है, उसके बीज पहले क्षण मे होना आवश्यक है। यदि कला के प्रथम क्षण में प्राप्त अनुभव के भीतर, अनुभव के महत्त्व की भावना नही है, तो वह क्षण, कला के दूसरे क्षण में परिणत नहीं होगा! मतलब यह है कि कला के प्रथम क्षण का अनुभव जीवन के अन्य साधारण अनुभवों से भिन्न होता है। उसमें अनुभव और अनुभव के महत्त्व की भावना दोनों बीज रूप मे रहने से, दर्शकत्त्व और भौक्तृत्व की स्थिति-मुक्तता और स्थिति-बद्धता के परस्पर-विरोधी बिन्दु रहते हैं।''[28]..........अर्थात् अनुभव और अनुभव के महत्त्व की संवेदना, दोनों एक साथ होना कला के प्रथम क्षण में आवश्यक है।

केशव के ही शब्दों में 'मुक्तिबोध' यह बताते हैं कि व्यक्तित्त्व में अनुभविता की

स्थिति-बद्ध संवेदना और दर्शक की स्थिति-मुक्त दृष्टि एक समन्वित इकाई बनकर एक नये क्लाइमैक्स तक पहुँच जाती है। ऐसा न हो पाने पर कलाकार अच्छी रचना नहीं कर सकता।''[29]

दूसरे क्षण के आगे बढ़ने की प्रक्रिया इस प्रकार सम्पन्न होती है ''स्थितिग्रस्त आक्रमणकारी सवेदनाएँ और स्थिति-मुक्त दृष्टि, दोनो एक दूसरे के विरुद्ध हैं, किन्तु ये दोनो विरोधी बाते, एक-दूसरे पर प्रतिक्रिया करती हुई एक उच्चतर बिन्दु पर 'फ़ैण्टेसी' खड़ी कर देती हैं। इन दोनो की क्रिया-प्रतिक्रिया से परिष्कृत होकर कला का दूसरा क्षण आगे बढ़ता जाता है। जब यह क्षण बहुत आगे तक प्रवाहित हो जाता है, तब आत्मपरकता में भी एक निर्वैयक्तिकता और निर्वैयक्तिता में भी एक आत्मपरकता उत्पन्न हो जाती है, मानों स्थित-बद्ध संवेदना ने स्थिति-मुक्त दृष्टि को अपनी स्थिति-बद्धता प्रदान कर, उससे अपने लिए स्थिति-मुक्तता ले ली हो। दूसरे शब्दों में, वे अपने-अपने गुण-धर्मो को एक-दूसरे को प्रदान कर देते हैं।''[30]

कलाकार को अपनी बात स्वयं अपने लिए महत्त्वपूर्ण लगे, दूसरों के लिए उसका कोई महत्त्व न हो, तो वह रचना क्यो करेगा। वह रचना करता है इस विश्वास के बल पर कि उसकी बात सभी के लिए महत्त्वपूर्ण है। ऐसा विश्वास लेखक को किस आधार पर प्राप्त होता है, इसे बताते हुए 'मुक्तिबोध' प्रतिनिधिकता उत्पन्न होने की प्रक्रिया समझाते हैं। ''यह इसलिए होता है कि दृष्टि की स्थिति-युक्त वैयक्तिकता और संवेदना की स्थिति-बद्ध वैयक्तिकता का समन्वय होकर वह समन्वय अपने उच्चतर स्थिति मे पहुँच जाता है। इसीलिए 'फ़ैण्टेसी' में संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनाएँ रहती हैं। कृतिकार को महसूस होता रहता है कि उसका अनुभव सभी के लिए महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान है। तो मतलब यह कि भोक्तृत्व और दर्शकत्त्व का द्वन्द्व एक समन्वय में लीन होकर एक-दूसरे के गुणों का आदान-प्रदान करता हुआ सृजन-प्रक्रिया आगे बढ़ा देता है। दर्शक का ज्ञान और भोक्ता की संवेदना परस्पर विलीन होकर, अपने से परे उठने की भंगिमा को प्रोत्साहित करती रहती है। इस प्रकार सृजन-प्रक्रिया के विशिष्ट मे सर्वसामान्य महत्त्व प्रतिबिम्बित होता-सा प्रतीत होता है। दूसरे शब्दों मे, संवेदना के स्थिति बद्ध गहरे रंग, दृष्टि के स्थिति-मुक्त रूप से परिष्कृत होकर प्रतिनिधिक हो उठते हैं।..........कला के दूसरे क्षण में उपस्थित 'फ़ैण्टेसी' की इकाई में संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना कुछ

इस प्रकार समायी रहती हैं कि लेखक उन्हे शब्द-बद्ध करने के लिए तत्पर हो उठता है।''[31]

संवेदना के गहरे रंगों का दृष्टि के स्थिति मुक्त रूप से परिष्कार ही कवि या रचनाकार की बात को सबके लिए महत्त्वपूर्ण अर्थात् प्रतिनिधिक बनाता है। मुक्तिबोध की इस स्थापना को भारतीय काव्य शास्त्र की रस-दशा और साधारणीकरण के साथ रखकर देखने पर इसका विशेष महत्त्व स्पष्ट होता है। यहाँ 'फ़ैण्टेसी' पर ही ध्यान केन्द्रित रखना है, इसीलिए दोनों की विस्तृत समीक्षा और तुलना का अवसर नही है। किन्तु इस बात की ओर ध्यान जाना आवश्यक है कि 'मुक्तिबोध' की 'फैण्टेसी' की अवधारणा कितनी व्यापक है और वे उसके माध्यम से रचना-प्रक्रिया के साथ ही आस्वादन-प्रक्रिया का कितना सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं।

कला के तीसरे क्षण की ओर फिर लौट कर 'मुक्तिबोध' शब्दों में व्यक्त होती हुई 'फैण्टेसी' के रूपान्तरण की प्रक्रिया को और अधिक सूक्ष्मता के साथ विश्लेषित करते हैं। ''अब यहॉ से एक नये संघर्ष की कहानी शुरु होती है। लेखक ज्यों ही 'फ़ैण्टेसी' को शब्दों मे व्यक्त करने लगता है, 'फ़ैण्टेसी' के रंग घुलने लगते हैं और सतत प्रवाहित होने लगते हैं। व्यक्त करने के दौरान में प्रकट करने की प्रक्रिया में 'फ़ैण्टेसी' बदलने लगती है।''[32]

उसका कारण है शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया में बहुत से नये तत्त्वों का आकर मिलते जाना। इन नये तत्त्वों की पहचान कराते हुए मुक्तिबोध बताते हैं कि ''होता यह है कि 'फ़ैण्टेसी' को शब्द-बद्ध करने की प्रक्रिया में बहुत-से नये तत्त्व उससे जा मिलते हैं। ये तत्त्व उसे लगातार संशोधित करते रहते हैं। यह 'फ़ैण्टेसी' अनुभव-प्रसूत होते हुए भी अनुभव बिम्बित होती है।''[33]

'मुक्तिबोध' के लिए, उनके जीवन-दर्शन के कारण कला का निश्चित उद्देश्य होना ही चाहिए। इसीलिए सौन्दर्यानुभवों हो या कला की 'फ़ैण्टेसी', उसमें उद्देश्य का होना अनिवार्य है। कलावादियों से मुक्तिबोध का अन्तर इस स्तर पर और भी स्पष्ट हो जाता है। 'फ़ैण्टेसी' को शब्द-बद्ध करने की प्रक्रिया में जो अन्य तत्त्व आ जाते हैं, उनमें यह उद्देश्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसीलिए वे स्पष्ट कहते हैं कि -''इस 'फ़ैण्टेसी' में वस्तुतः एक भावानात्मक उद्देश्य समाया रहता है। उसमें एक संवेदनात्मक दिशा रहती है।''[34]

यह उद्देश्य यह दिशा कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसको जानने के लिए 'मुक्तिबोध' का अगला वाक्य पर्याप्त है कि '' 'फ़ैण्टेसी' के भीतर यह दिशा और उद्देश्य उस 'फ़ैण्टेसी' का

मर्म-प्राण और प्राण है।''[35]

'फैण्टेसी' के उद्देश्य का उल्लेख करते हुए मुक्तिबोध एक नये आयाम की ओर संकेत करते है। वे बताते हैं कि 'फ़ैण्टेसी' गतिहीन स्थिर चित्र नहीं है। ''दिशा और उद्देश्य के मर्म-प्राण को धारण कर 'फैण्टेसी' गतिहीन नही रह सकती। 'फ़ैण्टेसी' गतिहीन स्थिर–चित्र नहीं है। उद्देश्य और उद्देश्य की दिशा के कारण ही वह गतिमय है। 'फैण्टेसी' डायनेमिक होती है।''[36]

इसके साथ ही 'मुक्तिबोध' यह बताते हैं कि 'फ़ैण्टेसी' की गतिमानता कब और कहाँ शुरू होती है। ''कला के प्रथम क्षण के अन्तिम सिरे पर उत्पन्न होते ही उसकी गतिमानता शुरु हो जाती है। 'फ़ैण्टेसी', जो शुरू मे एक आभास-रूप होती है, वह तुरंत ही अनेक चित्रों की सुसंगत पाँत बनने लगती है। एक-एक मर्म के आस-पास ये चित्र संगठित होकर प्रवहमान होते है।''[37]

'फ़ैण्टेसी' की गति उसके उद्देश्य से परिचालित होती है। इस प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए 'मुक्तिबोध' लिखते हैं कि- ''ज्यो कि यह 'फ़ैण्टेसी' शब्द-बद्ध होने लगती है, 'फैण्टेसी' का भावनात्मक उद्देश्य, या कहिये कि 'फ़ैण्टेसी' की प्रधान पीड़ा, अपना समर्थन, सरक्षण और पोषण करने वाले अन्य अनेक जीवानानुभवो के तत्त्वो को समेटने लगती है। 'फ़ैण्टेसी' के भीतर का वह मर्म-जिसमें एक उद्देश्य है, एक पीड़ा है, और एक दिशा है— अनेक जीवनानुभवो से समर्थित, संवर्धित और पुष्ट होकर प्रकट होना चाहता है। इन जीवनानुभवो के चित्र, भाव और स्वर, 'फ़ैण्टेसी' के मर्म में घुलने लगते हैं। 'फ़ैण्टेसी' की गतिमानता की धारा मे वे प्रवाहित होकर उस धारा को अधिक सार्थक और पुष्ट करते हैं।''[38]

'फ़ैण्टेसी' की गतिमान धारा में तो अनुभव चित्र भाव और स्वर आ जाते हैं उन पर 'फ़ैण्टेसी' के रचयिता कवि की कुछ पकड़ होती है या नहीं, उनको कवि देख पाता है या नहीं, समझ पाता है या नहीं, और अगर देख-समझ पाता है तो उनको ज्यों का त्यों छोड़ देता है या अपनी ओर से कुछ करता है। इस तरह के प्रश्नों के प्रति मुक्तिबोध सजग हैं। वे बताते हैं कि - ....चूँकि 'फ़ैण्टेसी' के मर्म को शब्द-बद्ध करते समय अनेक अनुभव-चित्र, भाव और स्वर तैर आते हैं, इसीलिए 'फ़ैण्टेसी' के उद्देश्य और दिशा के निर्वाह के लिए कलाकार को

भाव-सम्पादन करना पड़ता है, जिससे कि केवल मर्म के अनुकूल और उसको पुष्ट करने वाले स्वर, भाव और चित्र ही कविता मे आ सके, और इस बीच यदि कोई अन्य अनुकूल मार्मिक अनुभव तैर आये, तो उसे भी 'फ़ैण्टेसी' के मर्म की उद्देश्य-दिशा मे प्रतिपादित कर दिया जाये अर्थात भाषा प्रवाहित कर दिया जाये।''[39]

'फ़ैण्टेसी' का यह सम्पादन निश्चय ही बहुत निर्णायक है। यही 'फैण्टेसी' को अर्थात् कविता को श्रेष्ठ या निकृष्ट बनाने के लिए जिम्मेदार होता है। कविता को अर्थात् 'फैण्टेसी' को कब पूरा हो जाना चाहिए, यह निर्णय भी यही सम्पादन विवेक करता है। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार पूरी होती है- ''कला के तीसरे क्षण में 'फ़ैण्टेसी' का मूल मर्म, अनेक संबंधित जीवनानुभवों से उत्पन्न भावो और स्वरों से युक्त होकर, इतना अधिक बदल जाता है कि लेखक उस पूरी 'फैण्टेसी' को एक नयी रोशनी मे देखने लगता है। मेरा मतलब है, मूल 'फ़ैण्टेसी' का मर्म, जो सिकुड़ा हुआ एक दर्द था, अब फैलकर एक पर्सपेक्टिव का रूप धारण करने लगता है। इस पर्सपेक्टिव से समन्वित मूल मर्म शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया मे बदल जाता है। वह पुराना मर्म न रहकर अब नया बन जाता है। उसमें नये मनस्तत्त्व आ जाते हैं। शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया के दौरान में, जब तक उस मर्म में ओज और बल कायम है, तब तक वह नये तत्त्व समटेता रहेगा। किन्तु जब वह चुक जायेगा, तब गति बन्द हो जायेगी, उद्देश्य समाप्त हो जायेगा। कविता वहाँ पूरी हो जानी चाहिए। यदि वह पूरी नही हुई तो मर्म के साक्षात्कार में कहीं कुछ कमी रह गयी, दिशा-ज्ञान ठीक नहीं रहा है, उद्देश्य में कुछ कमजोरी आ गयी है-ऐसा मानना होगा।''[40]

'फैण्टेसी' की रचना करते समय कवि का सम्पादन-कार्य कितना महत्त्वपूर्ण है और उद्देश्य की कैसी गम्भीर भूमिका है, यह उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है। उद्देश्य के मूल स्वरूप के साथ आने वाले नये तत्त्व किस प्रकार आते हैं और उनका आना कब तक चलता रहता है, यह मूल मर्म की शक्ति पर निर्भर रहता है। आगे 'मुक्तिबोध' तीसरे क्षण को पूर्ण क्षण बताते हुए उसकी प्रक्रिया को शब्द साधना के रूप में व्याख्यायित करते हैं शब्द-साधना में ध्वनि-अनुंषगों और उनके अनेक रूपों की विस्तृत विवेचना है। अपने मित्र केशव के पत्र के रूप में लिखते हैं कि -''कला का तीसरा क्षण कला का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और पूर्ण क्षण है। यहाँ से 'फ़ैण्टेसी'

साहित्यिक, कलात्मक अभिव्यक्ति का रूप धारण करने लगती है। यहाँ से शब्द साधना शुरू होती है। शब्द के अपने ध्वनि-अनुषंग होते हैं, जिनमें चित्र और ध्वनि दोनों शामिल हैं। कलाकार अपने हृदय के तत्त्व के रंग रूप, आकार के अनुसार, अभिव्यक्ति का रंग, रूप और आकार तैयार करना चाहता है। इसीलिए उसे अपने हृदय के भाव-ध्वनियो की, शब्दो की, अर्थ ध्वनियों से अनवरत तुलना करनी पड़ती है।''[41]

'फैण्टेसी' की भाषिक-संरचना की अत्यन्त सूक्ष्म व्याख्या करते हुए 'मुक्तिबोध' बताते हैं कि उपर्युक्त तुलना के ''दो परिणाम होते हैं। (1) ''भाव-ध्वनियों को उपलब्ध शब्द-ध्वनियो के कटघरे में फँसाने का प्रयत्न, जिसके फलस्वरूप काफी से मनस्तत्त्व अपना मौलिक और मूल तेज त्यागकर एक नये संदर्भ से सम्बद्ध आकार में प्रकट होते हैं।''[42]

'मुक्तिबोध' यहाँ कवि के व्यक्तित्व और उसकी क्षमता का ध्यान रखकर स्पष्ट अन्तर करते हुए कहते हैं कि- ''कई कवि तो भाषा की चमक और सफ़ाई के लिए अपने भाव-तत्त्वों का बलिदान भी कर देते हैं।''[43]

स्पष्ट है कि भाषा की चमक और सफाई के लिए अपने भाव-तत्त्वों का बलिदान करने वाले कवि रूपवाद से प्रभावित होते हैं। मुक्तिबोध की काव्य-भाषा के ऊबड़-खाबड़ और अनगढ़ होने की ओर जिन लोगो का ध्यान बार-बार जाता है, उन्हे उपर्युक्त वाक्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

हृदय की भाव-ध्वनियों और शब्दों की अर्थ ध्वनियों से अनवरत तुलना के पहले परिणाम के रूप में, ''शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया में '''फ़ैण्टेसी' की काँट-छाँट होने लगती है।'' (2) ''किन्तु इसके विपरीत, दूसरी, महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अभिव्यक्ति - साधना के दौरान मे स्वयं अभिव्यक्ति 'फ़ैण्टेसी' को सम्पन्न और परिपूर्ण करने लगती है। 'फ़ैण्टेसी' अपने को प्रकट करने के लिए समानार्थ-वाचक शब्दों को लाती है भाषा एक जीवित परम्परा है, शब्दों में एक स्पन्दन है। शब्दों में जो अर्थ-स्पन्दन है, वह 'फ़ैण्टेसी' द्वारा उद्‌बुद्ध होकर नयी भाव-धाराएँ बहा देता है।''[44]

ध्यान देने की बात यह है कि अभिव्यक्ति कर्त्ता के रूप में कार्य करने लगती है। वह 'फ़ैण्टेसी' को सम्पन्न और परिपूर्ण करती है। बहुत सूक्ष्म स्तर पर कटेंण्ट और फार्म का रूप

और कथ्य का एक दूसरे को प्रभावित करना यहाँ देखा जा सकता है।

यहीं पर 'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' की अभिव्यक्ति प्रक्रिया में एक और बात जोडते है. मुख्य भाव धारा के साथ-साथ समीपवर्नी भाव धाराओ की। ये समीपवर्ती भाव-धाराएँ मुख्य धारा के तेज को कम करने के स्थान पर उसके तेज को बढ़ा देती है। 'मुक्तिबोध' कहते है कि- ''ये भाव धाराएँ 'फैण्टेसी' की समीपवर्ती भाव-धाराएँ है। वे 'फैण्टेसी' के जगत् को और भी विस्तृत कर देती है, उसके मौलिक तेज को और भी फैला देती हैं।''[45]

इस स्थिति को ध्यान से देखे तो रस-प्रक्रिया स्थायी भाव और संचारी भावो की स्थिति का स्मरण हो आता है। रस-दशा की ओर बढ़ते हुए स्थायी भाव के उत्कर्ष को बढ़ाने के लिए ही अनेक सचारी भाव उद्बुद्ध होते हैं और अपना काम करके उसी मे विलीन हो जाते हैं। टीक इसी तरह समीपवर्ती भाव धाराएँ 'फ़ैण्टेसी' की मूल भाव-धारा को तीव्र कर देती हैं।

इससे आगे 'मुक्तिबोध' यह बताते हैं कि ''इन समीपवर्नी भाव-धाराओं में अनेक नये-पुराने अनुभव, अपने-पराये भाव, सब प्रवाहित होते रहते हैं। 'फ़ैण्टेसी' के जगत् की अर्थमत्ता तो उनसे बढ़ जाती है, साथ ही उनके द्वारा 'फ़ैण्टेसी' को एक नया पर्सपेक्टिव प्राप्त हो जाता है। इस पर्सपेक्टिव से संयुक्त होकर 'फ़ैण्टेसी' एक तेजोवलय मे चमकने लगती है। 'फ़ैण्टेसी' अब पूर्णरूप से सार्वजनीन हो जाती है।''[46]

कला के क्षणो के भीतर 'प्रतिनिधिकता' उत्पन्न होने के कारणो की व्याख्या करते हुए कलाकार के इस विश्वास का उल्लेख किया गया था कि-उसकी बात सभी के लिए महत्त्वपूर्ण होगी ही। यहाँ 'फैण्टेसी' की मूल भाव धारा का समीपवर्ती भाव धाराओं से पुष्ट हो जाने और 'फैण्टेसी' के सार्वजनिन हो जाने की बात कही गयी है। ऐसा होने की व्याख्या 'मुक्तिबोध' भाषा की सामाजिकता के सहारे ही कर पाते हैं। उनकी व्याख्या इस प्रकार है-

''ऐसा क्यों? भाषा सामाजिक निधि है। शब्द के पीछे एक अर्थ-परम्परा है। ये अर्थ जीवनानुभवों से जुड़े हुए हैं। 'फ़ैण्टेसी' अपने अनुकूल शब्दों में स्थित अर्थ-स्पंदन को उद्बुद्ध करती है। इन शब्दों के ढ़ाँचों में 'फ़ैण्टेसी' को फ़िट करना पड़ता है। इसीलिए 'फ़ैण्टेसी' का मौलिक तेज काफ़ी कट-छँट जाता है। शब्दों के पीछे की अर्थ-परम्परा 'फ़ैण्टेसी' के मूल रंगो को छाँट देती है, उसके आकार में परिवर्तन कर देती है, उसकी मौलिक गहराई को भिन्न बना

देती है, उसकी मौलिक गहनता अर्थात् व्यक्तिगत सन्दर्भ भी नराश देती है।''[47]

'मुक्तिबोध' यहाँ भाषा की सामाजिक शक्ति और व्यक्ति द्वारा निर्मित 'फ़ैण्टेसी' के आपसी संबध की बहुत सूक्ष्म व्याख्या करते हैं। रचनाकार व्यक्ति होता है। यद्यपि यह समाज का ही अंग होता है, तथापि उसकी व्यक्तिगत सृजनशीलता जिस 'फ़ैण्टेसी' को निर्मित करती है, वही सामाजिक भाषा में व्यक्त होते समय बहुत कुछ कट-छँट जाती है। इस बात को इस रूप में भी कहा जा सकता है कि 'फ़ैण्टेसी' में से व्यक्तिगत तत्त्व कट-छँट कर उसकी सामाजिकता अर्थात् प्रातिनिधिकता अथवा सार्वजनीनता को बढ़ा देते हैं। तभी व्यक्ति की रचना समाज के लिए सार्थक हो पाती है और उसका पूरी मनुष्यता के लिए कोई अर्थ निकलता है।

यहाँ 'फ़ैण्टेसी' की अभिव्यक्ति के समय भाषा के दबाव को लेकर कवियों में दो तरह की प्रतिक्रिया होती है। कुछ कवि भाषा के दबाव को झेलकर भी 'फ़ैण्टेसी' की मौलिक गहराई को बदलने नही देते। दूसरी ओर कुछ कवि ऐसे भी होते हैं जो ''शब्दों की अर्थ-परम्परा से आच्छन्न होकर भाषा की सफ़ाई और चमक के निर्वाह के लिए, प्रकटीकरण के लिए आतुर भाव तत्त्वों को ही काट देते हैं।''[48]

जो कवि 'फ़ैण्टेसी' के मूल भाव को भाषा की सफाई और शब्दो की चमक के लिए मन्द नहीं होने देते थे, जब 'फ़ैण्टेसी' को अभिव्यक्त करते हैं तो उनकी '' 'फ़ैण्टेसी' के द्वारा उद्‌बुद्ध शब्दों के अर्थ-अनुषंग और उनसे सम्बद्ध चित्र नयी भाव-धाराएँ बहा देते हैं। ये भाव-धाराएं 'फ़ैण्टेसी' के अनुकूल और समीपवर्ती होती है। उन भाव-धाराओं में अनेकों नये-पुराने अनुभव और अपने पराये भाव होने से 'फ़ैण्टेसी' की अर्थमत्ता का विस्तार हो जाता है। साथ ही इस विस्तृत क्षेत्र में, ये भाव-धाराएँ 'फ़ैण्टेसी' पर, और 'फ़ैण्टेसी' इन भाव-धाराओं पर, क्रिया प्रतिक्रिया करने लगती है। इस क्रिया प्रतिक्रिया से 'फ़ैण्टेसी' का क्षेत्र और विस्तृत हो जाता है, अनुभव को पर्सपेक्टिव प्राप्त हो जाता है। 'फ़ैण्टेसी' के भीतर मूल उद्देश्य और दिशा में विस्तार भर उठता है।[49]

'फ़ैण्टेसी' के उद्देश्य और दिशा मे विस्तार की इस प्रक्रिया को 'मुक्तिबोध' दूसरे शब्दों में चित्रित करते हुए फिर कहते हैं कि ''कला के तीसरे क्षण में सृजन-प्रक्रिया जोरों से गतिमान होती है। कलाकार को शब्द-साधना द्वारा नये-नये भाव और नये-नये अर्थ-स्वप्न मिलने

लगते हैं। पुरानी फैण्टेसी अब अधिक सपन्न, समृद्ध और सार्वजनीन हो जाती है। यह सार्वजनीनता, अभिव्यक्ति-प्रयत्न के दौरान में शब्दों के अर्थ-स्पंदनों द्वारा पैदा होती है। इसलिए अर्थ-स्पन्दनों के पीछे सार्वजनिक सामाजिक अनुभवों की परम्परा होती है, इसीलिए अर्थ परम्पराएँ न केवल मूल 'फ़ैण्टेसी' को काट देती है, तराशती है, रंग उड़ा देती है, वरन् उसके साथ ही ये नया रग चढ़ा देती है, नये भावों और प्रवाहों से उसे सम्पन्न करती है, उसके अर्थ क्षेत्र का विस्तार कर देती है।''[50]

यहाँ यह रहस्य खुल जाता है कि अर्थ-स्पन्दनों की परम्परा के भीतर निहित सार्वजनिक सामाजिक अनुभवों के कारण ही 'फ़ैण्टेसी' में यह विशेषता उत्पन्न होती है कि पाठक-श्रोता उसके लिए अर्थ और प्रायोजन की उपलब्धि कर लेता है। इसका कारण है भाषा की सामाजिकता।

अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में 'फ़ैण्टेसी' के मूल मर्म और कवि का व्यक्तित्त्व एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। कवि को नये साक्षात्कार एक के बाद एक होते हैं और यह प्रक्रिया चलती रहती है- ''इसीलिए अभिव्यक्ति-प्रयत्न के दौरान मे, कवियों को नये साक्षात्कार होने लगते है। एक ओर, मूल 'फ़ैण्टेसी' के मूल-मर्म की अभिव्यक्ति पर उस सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व का केन्द्रीयकरण हो जाता है, तो दूसरी ओर इस केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व का विस्तार होने लगता है। उसे नये-नये साक्षात्कार होने लगते हैं। एक साक्षात्कार कई भाव-सत्यो का उद्घाटन करता है। एक साक्षात्कार कवि को दूसरे साक्षात्कार तक पहुँचा देता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया चालू रहती है।''[51]

'मुक्तिबोध' इसे स्पष्ट रूप में मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया कहते हैं और इसके पीछे भाषा की साधना शक्ति को देखते हैं। ''इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के पीछे भाषा की अगाध अनवरत साधनाशक्ति है। भाषा 'फ़ैण्टेसी' को काटती-छाँटती है, और इस प्रक्रिया के विपरीत 'फ़ैण्टेसी' भाषा को सम्पन्न और समृद्ध भी करती है।''[52]

'फ़ैण्टेसी' और भाषा का एक दूसरी को प्रभावित करने वाला संबंध सभी कवियों में नही मिलता। जिनमें मिलता है, वे महान कवि होते हैं। 'मुक्तिबोध' कहते हैं कि ''कवि की यह 'फ़ैण्टेसी' भाषा को समृद्ध बना देती है, उसमें नये अर्थ-अनुषंग भर देती है, शब्द को नये चित्र

प्रदान करती है। इस प्रकार कवि भाषा का निर्माण करता है, विकास करता है, वह निस्संदेह महान् कवि है।''[53]

'फैण्टेसी' के निर्माण की प्रक्रिया के व्याख्या के अन्त में 'मुक्तिबोध' भाषा और भाव के बीच के द्वन्द्व को ही रेखांकित करते है। ''इस प्रकार कला के तीसरे क्षण में मूल द्वन्द्व है- भाषा तथा भाव के बीच। इन दोनों की परस्पर प्रतिक्रिया और संघर्ष बहुत उलझे हुए होते हैं और वे उन दोनो को बदलते रहते हैं। इन दोनो मे संशोधन होता जाता है। यह द्वन्द्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सृजनशील है। भाषा, एक परम्परा के रूप में, 'फ़ैण्टेसी' के मूल रंग को विस्तृत कर देती है किन्तु साथ ही उस 'फैण्टेसी' में संशोधन भी उपस्थित करती जाती है। साथ ही 'फैण्टेसी' अपने मूल रंगो के अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर दबाव लाती है, उसके शब्दों और मुहावरो मे नयी अर्थवत्ता, नयी अर्थ क्षमता, नयी अभिव्यक्ति भर देती है।''[54]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं, कि काव्य-सृजन प्रक्रिया संघर्ष की प्रक्रिया है। कला के प्रत्येक क्षण में द्वन्द्व है। यह द्वन्द्व अलग-अलग तत्त्वों के बीच होता है। प्रत्येक क्षण की सौन्दर्य प्रतीति अलग-अलग होती है।

'फ़ैण्टेसी' के प्रति उनके रूझान का निम्न कारण है-

1. सांस्कृतिक- सामाजिक तथा मानव जीवन के उत्थान की आकांक्षाएं और समस्याओं को अपने मनोनुकूल मनश्चित्र के माध्यम से प्रस्तुत करने की सुविधा रहती है। इसके तत्त्व अपने वर्तमान के सप्रश्नता से मुक्त हो जाते हैं, जिससे कथ्य का वर्तमान तनाव बोध कम हो जाता है।

2. वास्तविक जीवन तथ्यों एवं निष्कर्षो को कल्पना के रंग में रंगते हुए कृति मे, उसे सांकेतिक ढ़ंग से प्रस्तुत करने की सुविधा रहती है, जिसके कारण कृति वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करते हुए, वास्तविकता के प्रदीर्घ चित्रण से बच जाती है।

3. 'मुक्तिबोध' ने अपने जीवन में जन-सामान्य को शोषण, भ्रष्टाचार और आतंक की भयानकता से ग्रस्त देखा था। इस बाह्य जगत से उनका अभ्यंतर

सदैव टकराता था। और उनके बीच सदैव सघर्ष की स्थिति बनी रहनी है। यह सघर्ष उनके काव्य मे '[illegible]' के रूप मे व्यक्त हुआ है। उनके चेतन और अवचेतन, बाह्य संसार और [illegible], आस्था व अनास्था आदि के बीच व्यापक संघर्ष की स्थिति उनके काव्य मे सदैव परिलक्षित होनी है। इस प्रकार के जटिल कथ्य की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने 'फैण्टेसी' को ही सबसे उचित एवं समर्थ्यवान शिल्प (माध्यम) के रूप मे पाया।

4. 'मुक्तिबोध' जासूसी उपन्यास[55] और ''साइन्स फिक्शन' के बहुत प्रेमी थे। इसका उन पर प्रभाव भी पड़ा था। उनका काव्य जासूसी वातावरण मे पूरी तरह ओत-प्रोत है।

5. 'मुक्तिबोध' ने कामायनी-एक पुनर्विचार नामक आलोचना पुस्तक लिखी थी। इसमे उन्होंने इस रचना को 'फ़ैण्टेसी' के रूप में ग्रहण किया था। उसके शिल्प का उन पर प्रभाव था।

6 वे 'फ़ैण्टेसी' के प्रयोग को क्षतिपूर्ति का साधन मानते थे। उनकी दृष्टि में इसके माध्यम से यथार्थ के अछूते पक्षो के उद्घाटन से सहायता मिलती है।

पाद टिप्पणी

1 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 तीसरा क्षण पृष्ठ 97
2 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 तीसरा क्षण पृष्ठ 97
3 वही– पृष्ठ 97
4 मुक्तिबोध रचनावली भाग - 5 'काव्य की रचना प्रक्रिया– दो' पृष्ठ 228-229
5 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 तीसरा क्षण पृष्ठ 101
6 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 काव्य की रचना प्रक्रिया पृष्ठ 192
7 वही-काव्य की रचना प्रक्रिया-2 पृष्ठ-227
8 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 तीसराक्ष पृष्ठ 99
9 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 तीसरा क्षण पृष्ठ 101
10 वही पृष्ठ 102
11 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग-4 पृष्ठ 102
12. वही – पृष्ठ 102
13. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 तीसरा क्षण पृष्ठ 98
14 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 227
15 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 तीसरा पृष्ठ 102
16 वही– पृष्ठ 102-103
17 वही पृष्ठ 104
18 वही– पृष्ठ 104
19 वही– पृष्ठ 105
20. वही– पृष्ठ 105
21 वही– पृष्ठ 106
22. वही– पृष्ठ 98
23. वही– पृष्ठ 99
24. वही– पृष्ठ 99
25. वही– पृष्ठ 99

26 वही- पृष्ठ 99
27 वही- पृष्ठ 100
28 वही- पृष्ठ 100
29 वही- पृष्ठ 101
30 वही- पृष्ठ 101
31 वही- पृष्ठ 102
32 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग-4 पृष्ठ 102
33 वही- पृष्ठ 102
34 वही- पृष्ठ 102
35 वही- पृष्ठ 102
36 वही- पृष्ठ 102
37 वही- पृष्ठ 102
38 वही- पृष्ठ 102
39 वही- पृष्ठ 102
40 वही- पृष्ठ 103
41 वही- पृष्ठ 104
42 वही- पृष्ठ 104
43 वही- पृष्ठ 104
44 वही- पृष्ठ 104
45 वही- पृष्ठ 104
46. वही- पृष्ठ 104
47. वही- पृष्ठ 105
48. वही- पृष्ठ 105
49. वही- पृष्ठ 105
50 वही- पृष्ठ 105
51 वही- पृष्ठ 105
52 वही- पृष्ठ 106
53. वही- पृष्ठ 106
54. वही- पृष्ठ 106
55. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' सम्पा0 लक्ष्मण दत्त गौतम पृष्ठ 53

तृतीय अध्याय

'मुक्तिबोध' की कविताओं में 'फ़ैण्टेसी' की निर्माण-प्रक्रिया

'मुक्तिबोध' के 'फ़ैण्टेसी' की अवधारणा अन्य कवियो [illegible] की भाँति संकुचित नही है। वे कला की सम्पूर्ण प्रक्रिया को ही 'फ़ैण्टेसी' की रचना के रूप में देखते है। इसीलिए 'मुक्तिबोध' के लिए 'फैण्टेसी' का शिल्प सम्पूर्ण रूप से ग्राह्य है। वे अपनी कविताओ में 'फ़ैण्टेसी' का शिल्प अपनाते हुए उसके व्यापक फलक का उपयोग करते हैं। उनका शिल्प जिन प्रमुख बिन्दुओं के आधार पर प्रत्येक कविता मे रूपायित होता है, उसे निम्नलिखित रूपो मे देखा जा सकता है –

1. 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से कविता में वातावरण की रचना।
2. वस्तुस्थिति का प्रत्यक्षीकरण।
3. बिंब निर्माण।
4. वर्णनशैली का उपयोग।
5. कविता में कर्त्ता का आविर्भाव।
6. काव्यवस्तु और कर्त्ता के बीच संबंध के संकेत।
7. काव्यवस्तु और कर्त्ता के बीच की अन्तः क्रियाओं के सूत्रों की रचना।
8. कथ्य का उभरता हुआ स्वरूप।
9. प्रतीकों और बिंबों से कविता का निश्चित दिशा की ओर प्रस्थान।
10. कविता के भीतर उभर रही 'फ़ैण्टेसी' से बाहर निकलकर वर्णनकर्त्ता या वाचक द्वारा की गयी टिप्पणी।

11 'फ़ैण्टेसी' का पुनःपुनः सक्रिय होकर कविता के जटिल कथ्य को आगे बढ़ाना।

12. कथ्य के भीतर से उसकी पूर्णता अथवा परिणति के संकेतों का उभरना।

13 कविता के निहितार्थों की सम्पूर्ण व्यंजना की ओर 'फ़ैण्टेसी' का बढ़ जाना।

14. पाठक के मन में 'फ़ैण्टेसी' के निहितार्थों का उतरना।

'फैण्टेसी' के निर्माण की प्रक्रिया में ध्यान देने की बात यह है कि 'मुक्तिबोध' इस पूरी प्रक्रिया को एक ही कविता मे कई बार दुहराते हैं 'अँधेरे में', 'भविष्यधारा', 'जमाने का चेहरा', 'इसी बैलगाड़ी को', 'चकमक की चिनगारियाँ', 'एक स्वप्न कथा', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'एक प्रदीर्घ कविता' आदि कविताओं मे इस प्रक्रिया को दोहराते है। इसके अतिरिक्त छोटी कविताओ मे 'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' की प्रक्रिया को संक्षिप्त कर देते हैं। छोटी कविताओं मे 'फैण्टेसी' निर्माण-प्रक्रिया के अनेक पड़ावों में से केवल एक या दो का ही उपयोग करते हैं। 'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' की सामान्य विशेषताओ के अतिरिक्त कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं। 'मुक्तिबोध' की 'फैण्टेसी' का अपना अलग पैटर्न है, आंशिक रूप से उसमें प्रतीक, बिंब, लक्षणात्मकता, रूपक, उपमान, संबोधन आदि सभी दिख जाते हैं। 'फ़ैण्टेसी' की प्रक्रिया वर्णन से जुड़ी हुई है। 'मुक्तिबोध' की कविता 'फ़ैण्टेसी' से आरंभ होकर वर्णन, फिर आत्मकथन, फिर संबोधन, फिर बिंब-प्रतीक, फिर वातावरण-निर्माण और फिर से 'फ़ैण्टेसी' और तदंतर ऐसे ही या हेर-फेर के आगे-पीछे वाले क्रम में बढ़ती है। जाहिर है, कविता का यह एक जटिल शिल्प है, जिसमें परस्पर विरोधी-पैटर्न भी साथ-साथ दिखते हैं, जैसे -

1. प्रतीक एवं बिंब।

2. वर्णनात्मकता और लाक्षणिकता।

3. आत्मकथन और वस्तु-जगत चित्रण आदि। 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की विशेषता ही यह है कि ये सारे अंतर्विरोध उसमे समा जाते हैं।[1]

'मुक्तिबोध' निर्मित 'फ़ैण्टेसी' की निजी विशेषताओ की ओर संकेत करने के साथ ही 'अशोक चक्रधर' शब्द के स्तर पर 'फ़ैण्टेसी' की निर्माण-प्रक्रिया बताते हुए लिखते हैं कि - '''मुक्तिबोध' शब्दो का प्रयोग उनकी निरंतर गति में करते हैं। वे शब्दों को जितने भी अर्थ देते

है, 'फैण्टेसी' उनका इस्तेमाल कर लेती है। एक ही शब्द कही प्रतीक होता है, कहीं बिंब, कहीं वातावरण का निर्माण करता है एवं कहीं साधारण भाषा के ही रूप मे इस्तेमाल होता है।[2]''

'फैण्टेसी' की रचना करते हुए कोई भी कवि 'फ़ैण्टेसी' को मनोरोगियों की 'फैण्टेसी' की तरह अनियन्त्रित नहीं छोड़ देता बल्कि अपनी विश्व-दृष्टि और काव्य-दृष्टि के अनुरूप 'फैण्टेसी' के उद्देश्य का निर्धारण करके उसी के अनुरूप 'फैण्टेसी' के उद्देश्य 'फैण्टेसी' पर नियत्रण करता चलता है। 'मुक्तिबोध' के लिए मार्क्सवाद ही विश्व दृष्टि और काव्य-दृष्टि दोनो प्रस्तुत करता है। इसीलिए उनकी 'फैण्टेसी' उनके द्वारा निश्चित संवेदनात्मक उद्देश्य के अन्तः सूत्र से नियंत्रित होती है, इस बात को 'अशोक चक्रधर' निम्नलिखित रूप मे प्रस्तुत करते हुए 'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' प्रक्रिया को वस्तुवादी परिणति तक ले जाते हैं।

'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' को खुली छूट-पट्टी नहीं देते कि वह चाहे जितनी एवं चाहे जिस ओर बढ़ती जाय, बल्कि उसे, बाहर दिये वक्तव्यों से एवं आंतरिक सूत्र से नियंत्रित रखते है। यह उनके संवेदनात्मक उद्देश्यों की भूमिका होती है। भाववादी शिल्प, भाव से शुरू होकर भाव पर समाप्त हो जाता है, किन्तु 'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' एक भौतिक आधार देती है, प्रच्छन्न एवं अर्द्धप्रच्छन्न जीवन-तथ्यों को उजागर करती है स्थितियो के प्रति सचेत करती है। इस प्रकार 'मुक्तिबोध' की रचना प्रक्रिया पूर्वोक्त प्रकार से बनते हुए भाववादी नही है, बल्कि वस्तुवादी, यथार्थवादी है।[3]

'अशोक चक्रधर' और उनके जैसे अन्य मार्क्सवादी समालोचक, मार्क्सवाद के प्रति 'मुक्तिबोध' की आस्था के अनुरूप, उनकी कविताओं में अर्थ का संधान करते हैं। इससे एक ओर तो सुविधा होती है, किन्तु दूसरी ओर, उनके 'फ़ैण्टेसी' की अर्थ व्याप्ति सीमित हो जाती है। तब भी इस प्रकार के विश्लेषण से 'मुक्तिबोध' के काव्य मर्म और उनकी 'फ़ैण्टेसी' की निर्माण-प्रक्रिया को समझने में सरलता होती है, क्योंकि मार्क्सवाद तो उनका आधार है ही। उपर्युक्त सूत्रों को ध्यान में रखकर 'मुक्तिबोध' की कविताओं के माध्यम से क्रमशः उनकी 'फ़ैण्टेसी' निर्माण-प्रक्रिया का विश्लेषण किया जा सकता है -

(1949-56) इस दौर तक 'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' और स्वप्न चित्र का विशेष जिक्र नहीं किया। कुछ कविताओ में अधिकांशतया स्वप्न चित्र आते हैं। 'उलट-पुलट' कविता

मे एक स्वप्न चित्र आया है,। 'सांझ रंगी उँची लहरों में' कविता मे [illegible] जन-क्रान्ति को चित्रित किया गया है। इसी तरह 'सूरज के वंशधर' कविता के अन्त मे 'फैण्टेसी' द्वारा जन-क्रान्ति का सदेश दिया गया है।

> 'सोचता हूँ कि देखना हूँ सामने
> हवा में लहराती सुनहली ज्वाला एक
> रेंगती सी मेरे पास
> धीरे-धीरे आती हुई
> आसमान छूती हुई व धरती पर चलती हुई
> बिखरा कर नीले-नीले स्फूलिंग समूह
> वह बनती है अकस्मात
> विराट मनुष्य रूप
> नही जान पाता कि छूकर मुझे मुझमे समा गयी
> कि उसमे समा गया मैं।
> सुनहली कांपती सी सिर्फ एक लहर रह जाती है
> कि जिसे क्रान्ति कहते हैं
> कि कहते हैं जन क्रान्ति।'[4]

इस तरह यहाँ 'फ़ैण्टेसी' का आंशिक प्रयोग हुआ है। इस दौर तक आते-आते कवि ने स्वयं को जन साधारण से, समाज से जोड़ लिया।

1957-64 के दौर मे 'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' का अत्यधिक प्रयोग किया है। इसमे पहले की कविताओं में स्वप्न–चित्र और 'फ़ैण्टेसी' के कुछ संकेत मिलते हैं। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है।' संग्रह की 'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग उटांग', 'ओ काव्यात्मन् फणिधर', 'एक अन्तर्कथा', 'एक स्वप्न कथा', 'अन्तःकरण का आयतन', 'लकड़ी का रावण', 'चकमक की चिनगारियाँ', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'ब्रह्मराक्षस', 'अँधेरे में', 'चम्बल की घाटी में' आदि 'फैण्टेसी' युक्त कविताएँ इसी दौर की हैं। दूसरे इस दौर में 'फ़ैण्टेसी' के बिना भी कुछ प्रभावी कविताएँ लिखी गयी हैं। 'भूल गलती', 'नक्षत्र खण्ड', 'कहने दो उन्हें जो यह कहने हैं', ' एक

अरूप शून्य के प्रति' आदि कविताएँ बिना 'फ़ैण्टेसी' के प्रभावक बन पड़ी हैं। ज्यादा लम्बी न होने पर भी इन कविताओं की प्रभावक क्षमता कम नहीं है। वास्तव में 'मुक्तिबोध' ने 'फैण्टेसी' का प्रयोग कविताओं को भाव संकुल बनाने के लिए किया था। 'फ़ैण्टेसी' उनका शौक नही, मजबूरी थी। 'फैण्टेसी' युक्त कविताओं में एक ओर काव्यनायक का आत्मविस्तार होता है उसके साथ ही परिवेश की विषमता और सत्ता का आततायी रूप भी प्रकट होता जाता है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि सन् 60 के बाद की कविताओ में सत्ता का रूप क्रमशः भयानक होता गया है। 'चॉद का मुँह टेढ़ा', एक प्रदीर्घ कविता', 'चकमक की चिनगारियाँ', 'अँधेरे में', 'चम्बल की घाटी में', आदि कविताओं का रचनाकाल सन् 60 के बाद का है[5]। 'मुक्तिबोध' की कुछ प्रौढ़ रचनाओ के माध्यम से हम 'फ़ैण्टेसी' की निर्माण-प्रक्रिया को स्पष्ट करेंगे।

पता नहीं

'पता नहीं' कविता सबोधन शैली मे लिखी गयी है। प्रथम खण्ड में कवि उस अनुभूति को मूर्तित करता है जो किसी आत्मीय के आकस्मिक मिलने से होती है। पता नहीं कब, कौन, कहाँ, किस जगह मिले, किस सॉझ मिले किस सुबह मिले लेकिन आत्मीय के मिलने पर वही अहाते मेंहदी के लगने लगते है। आत्मीय का यह मिलन, मौज-मजा के लिए नहीं है, बल्कि गम्भीर वृक्ष तले बैठकर अपने-अपने तप्त अनुभवों के आधार पर पक्षधरता का निर्णय करने का है।

कविता के तीसरे खण्ड में मित्र के बारे में संकेत मिलता है - कि उसकी आँखें आलोक भरी हैं, जो संबोधित व्यक्ति की थाह ले रही हैं। यह मित्र आत्म-चेतस क्रान्ति-धर्मा है, जो व्यक्ति के जड़त्व को तुड़वाना चाहता है। ऐसे मित्र के सामीप्य से संबोधित व्यक्ति में क्रान्ति-चेतना उद्दीप्त होने लगती है। चौथे खण्ड में व्यक्ति के इस बदलाव को 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से व्यक्त किया गया है—

> 'तब तुम्हे लगेगा अकस्मात्,
>
> ——————————
>
> ले प्रतिमाओं का सार, स्फुलिंगों का समूह
>
> सबके मन का
>
> जो एक बना है अग्नि व्यूह

अन्तस्तल मे,
उस पर जो छायी है ठण्डी
प्रस्तर-सतहें
सहसा कापी, तड़की, टूटी
औ, भीतर का वह ज्वलन् कोष
ही निकल पड़ा!!
उत्कलित हुआ प्रज्वलित कमल!!
यह कैसी घटना है . .....
कि स्वप्न की रचना है।
उस कमल-कोष के पराग-स्तर
पर खड़ा हुआ
सहसा होता है प्रकट एक
वह शक्ति-पुरूष
जो दोनों हाथों आसमान थामता हुआ
आता समीप अत्यन्त निकट
आतुर उत्कट
तुमको कन्धे पर बिठला ले जाने किस ओर
न जाने कहाँ व कितनी दूर'।।[6]

व्यक्ति के अंतरस्थल में जो अनुभव सत्य और क्रान्ति-चेतना का 'अग्नि व्यूह' दबा पड़ा है, वह क्रान्ति-धर्मा मित्र के समीप्य के कारण प्रगट हो गया है। अन्तर्मुख और असंग रहने के कारण जो जड़ता और ठहराव आ गया था, उसके खत्म होने का संकेत 'प्रस्तर सतहों' के टूटने से दिया गया है। जड़त्व के हट जाने से व्यक्ति-मन की क्रान्ति-चेतना मुखर हो गयी है। जिसे 'प्रज्वलित कमल' के प्रतीक द्वारा निर्देशित किया गया है। 'फ़ैण्टेसी' की प्रभाव क्षमता को बढ़ाने और पाठक को साथ लिये चलने के लिए कवि ने दो पंक्तियों में स्पष्टीकरण दिया है। उसके बाद 'फ़ैण्टेसी' फिर सक्रिय होती है और शक्ति पुरुष प्रकट होता है जो व्यक्ति की

आकांछाओ का प्रतीक है। इस तरह 'फ़ैण्टेसी' के द्वारा व्यक्ति के मानसिक बदलाव और आत्म-विस्तार की प्रक्रिया को संक्षिप्त रूप से संकेतित कर दिया गया है। आत्मचेतस और दायित्व सजग होने पर ही वह गतिशील हो सकता है, खतरों को उठा सकता है, और नये-नये पथों की खोज में अग्रसर हो सकता है :

"फिर वही यात्रा सुदूर की,
फिर वही भटकती हुई खोज भरपूर की,
कि वही आत्मचेतस् अन्तः संभावना,
...... जाने किन खतरो मे जूझे जिन्दगी!![7]

यद्यपि कविता का परिवेश रूमानी है, लेकिन उसमे प्रयुक्त अनुभूतियाँ सामाजिक जीवन से संबद्ध है। आत्मीय छवि व्यक्ति को पूर्ण मनुष्य बनाने के लिए प्रयत्नशील है।

दिमागी गुहान्धकार का ओरांग उटांग

यह कविता मनोवैज्ञानिक सत्य को केन्द्र में रखकर रची गयी है। मनुष्य के मन मे तीन स्तर हैं — चेतन, अर्धचेतन और अवचेतन। चेतन स्तर पर दमित की गयी सभी इच्छाएँ, अचेतन मे संग्रहित रहती हैं। यहाँ पर एकत्र इच्छाओं मे आपसी अन्तर्विरोध नहीं होता। यहाँ ये साथ-साथ रहती हैं।[8] दमित इच्छाएँ कभी-कभी अचेतन से उभड़ कर चेतन स्तर पर आती हैं पर वहाॅ पर प्रस्तुत विवेक के 'सेंसर द्वार से टकराती हैं। विवेक सम्मत या सामाजिक न होने के कारण वे अचेतन मे ढ़केल दी जाती हैं। वहाँ वे मनोग्रंथि का रूप ले लेती हैं। उनके कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व एकांगी हो जाता है, जिन व्यक्तियों या वर्गों में ये 'सेंसर' स्वार्थ से परिचालित होता है। उनकी चेतना पैशाचिक बन जाती है। स्पष्ट है कि मन के कई अज्ञात स्तर हैं।

इस कविता में कवि ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से व्यक्त किया है।

आरम्भ से अन्त तक कविता 'फ़ैण्टेसी' में है। कविता आत्मपरक शैली में है। काव्य नायक आत्मलोचन करता है। 'फ़ैण्टेसी' के द्वारा उसकी स्वार्थ वृत्ति को प्रकट किया गया है। जो काव्यनायक की तरह अन्य मनुष्यों में भी होती है। कविता का प्रारम्भ 'फ़ैण्टेसी' से होना है।

'स्वप्न के भीतर एक स्वप्न
विचारधारा के भीतर और
एक अन्य
सघन विचारधारा प्रच्छन्न!!
कथ्य के भीतर एक अनुरोधी
विरूद्ध - विपरीत
नेपथ्य - संगीत!!
मस्तिष्क के भीतर एक मस्तिष्क
उसके भी भीतर एक और कक्ष
कक्ष के भीतर
एक गुप्त प्रकोष्ठ और
कोठे के सांवले गुहान्धकार में
मजबूत सन्दूक
दृढ़, भारी - भरकम
और उस सन्दूक भीतर कोई बन्द है'।[9]

इस 'कोई' के आगे 'यक्ष' या 'ओरांग उटांग' कहा गया है। यह 'ओरांग उटांग' उन पाशवी वृत्तियो का प्रतीक बन कर आया है, मनुष्य जिनका प्रयोग सामाजिक एवं नैतिक बन्धनो के कारण परोक्ष रूप से करता है। आत्मलोचना के कारण काव्य नायक इन वृत्तियों का संस्कार कर रहा है। बहस में भाग लेते हुए, उसे अनुभव होता है कि उसके कथनों और क्रियाओ में 'ओरांग उटांग' की बौखलाती ध्वनियाँ प्रकट हो रही हैं। गर्दन पर सघन अयाल और शब्दों पर उगे हुए बाल तथा 'ओरांग उटांग' के बढ़े हुए नाखून महसूस होते हैं।[10] अचेतन मन से सचालित होने के कारण पाशवी वृत्तियां मनुष्य के कार्यों को प्रभावित करती रहती है। परन्तु मनुष्य को इसका बोध नहीं होता। चूंकि काव्य नायक आत्मलोचन कर रहा है, इसीलिए उसे इसका पता चलता है।[11]

'ओरांग उटांग' एक तरह का जंगली बर्बर और आदिम संस्कारों वाला आदि मानव

होता है। यह उत्तरी सुमात्रा मे पाया जाने वाला बन्दर प्रजाति का जीव है। डच वैज्ञानिक हरमैन रिफैक्शन ने नजदीकी से शोध किया और उसमे अजब-गजब बाते देखी। उन्होंने पाया कि झुंड मे रहने वाला 'ओरांग-उटांग' अपने बच्चो को बेहद प्यार करता है वह उन्हे सीने मे चिपकाये रहता है। रोचक बात तो यह है कि सोते हुए सपने भी देखता है, कभी आदमी की तरह मुस्कराता है तो कभी गंभीर हो जाता है । कई परीक्षणो मे यह भी पाया गया कि सोचने की क्षमता रखता है, सिर खुजलाता हुआ याद भी करता है।[12] कविता मे 'ओरांग-उटांग' को लेकर कवि ने जो लिखा है वह इस शोध से काफी मिलता-जुलता है। 'ओरांग-उटांग' की वाचक नायक द्वारा की गयी व्याख्या है कि यह असत्य शक्ति का प्रतिरूप है। कविता के वर्णन ने बताया है कि यह 'ओरांग-उटांग',असत्य शक्ति मानव के (वाचक नायक के) अभ्यांतर में निवास करती है। कविता मे लक्षणा से अर्थ लगाया जाय तो मानव के अभ्यांतर की करीने से सजे संस्कृत प्रभागम अध्ययन कक्ष के वर्णन मे कर्त्ता एवं बहस में हिस्सा लेने वाले लोग पेटी बुर्जुआ बुद्धिजीवी लोग है। इस प्रकार 'ओरांग-उटांग' का प्रतीकार्थ होगा- पेटी बुर्जुआ चेतना।[13]

आत्मचेतस हो जाने के कारण काव्यनायक को अपने अन्दर छिपे 'ओरांग-उटांग' की गतिविधि पर क्षोभ और ग्लानि होती है। वह इन वृत्तियों का दमन करता है जिसका संकेत सन्दूक के बन्द करने और हाथ मे पिस्तौल के महसूस करने से मिलता है।

'करता हूँ महसूस
हाथ में पिस्तौल बन्दूक!!
अगर कहीं पेटी वह खुल जाये,
ओरांग उंटाग यदि उसमें से उठ पड़े,
धांय-धांय गोली दागी जायेगी।''[14]

'फ़ैण्टेसी' जारी है। काव्य नायक इस असत्य शक्ति और अहं भावना का त्यागकर चुका है। वह एक प्रतिबद्ध बुद्धिजीवी की तरह बहस मे भाग लेता है। लेकिन वहाँ उसे अन्य व्यक्तियों में असत्य शक्ति और अहं की प्रबलता दिखाई देती है। उनके तर्कों और विवादों में निजी स्वार्थ की बू आ रही है। उनके कार्य अचेतन से संचालित है :

'और मेरी आँखे उन बहस करने वालो के

कपड़ों मे छिपी हुई

सघन रहस्मय लम्बी पूंछ देखनी।।

और मै सोचता हूँ . ...

कैमे सत्य हैं —

ढ़ॉक रखना चाहते हैं बडे-बड़े नाखून!!

किसके लिए है वे वाघनख!!

कौन अभागा वह'!![15]

बुद्धिजीवी के चारित्रिक पतन को 'फ़ैण्टेसी' के प्रयोग से चित्रित किया गया है। काव्य नायक अपने निजतत्त्व को छीनकर आत्मविस्तार करता है तथा अन्य साथियों की प्रकृति को उद्घाटित करता है। संस्कृत प्रभावमय, अध्ययन कक्ष में हो रही बहस के माध्यम से काव्यनायक का आत्मलोचन, आत्मभर्त्सना तथा अन्य साथियों की प्रकृति को स्पष्ट किया गया है।

नायक के अंतिम कथन में आये हुए बुद्धिजीवियों की स्पष्ट पहचान करने के लिए 'मुक्तिबोध' की एक टिप्पणी दृष्टव्य है। "ऊँचे से उँचा साहित्यकार भी जब असलियत को, मनुष्य के यथार्थ को अपनी संकुचित वेदनाओं, ओछी पीड़ाओं और अहंग्रस्त भावनाओ का आदर्शीकरण करते हुए दुनिया को देखता है, तब लेखक के प्रतिभाशाली होने के कारण उसका चित्रण कार्य प्रभावशाली होते हुए भी उस प्रभाव का ऐसा गुण न होगा जो मनुष्य को पिघलाकर उसकी आत्मा को उन्नत बनाये"।[16]

एक अन्य टिप्पणी द्रष्टव्य है — "आज दिल्ली में बूढ़े पकेबाल साहित्यिकों का जमघट इकट्ठा हो गया है। उनका स्वर्गवास नहीं दिल्ली वास हुआ है। अब तो प्रतिष्ठा और सम्मान के स्वर्ग में हैं और उस स्वर्ग में वे अधिक से अधिक श्रद्धा और पद के लिए राजनीति चलाते हैं। सूत्र हिलाते हैं, किंतु सूत्रधार होने के बदले वस्तुतः विदूषक हो जाते हैं।"[17]

कविता के अन्त में जो बड़े-बड़े नाखून और वाघनख दिखाई पड़ते हैं उनका लक्ष्य कौन होगा अर्थात् कौन हो रहा है। इसी के उल्लेख के साथ कविता पूर्ण हो जाती है। 'मुक्तिबोध' के स्वीकृत मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार मध्यवर्गीय अर्थात् पेटी बुर्जुआ के चरित्र की विशेषताओं

का बहुत अच्छा विश्लेषण 'क्रिस्टोफर काडवेल' ने अपनी पुस्तक – '[illegible] संस्कृत का अध्ययन' 'स्टडीज इन ए ड्राइग कल्चर' मे किया है – ''पूजीवाद की उत्पादित वस्तुओं मे पेटी बुर्जुआ एक ऐसा अप्रिय वर्ग है, जिसका सम्पूर्ण अस्तित्व झूठ एवं भ्रम पर टिका है।. ... . न केवल उच्च वर्ग से ईर्ष्या एवं निम्न वर्ग से घृणा बल्कि एक दूसरे के प्रति घृणा भाव मे भी यह वर्ग पीड़ित है।''[18] आधुनिक समाज मे सम्पूर्ण विश्व बुर्जुआ और सर्वहारा के बीच संघर्ष से परिचालित होता है, किंतु पेटी बुर्जुआ इस संघर्ष से उठे [illegible] को ही देख पाता है, वास्तविक दुनिया से उसका नाता ही टूट जाता है, इसलिए सब कुछ उसे रहस्यात्मक, अजीबोगरीब, उबड़-खाबड़ लगता है, क्योंकि यह (पेटी बुर्जुआ) उच्च वर्ग को अपनी अस्मिता गिरवी रख चुका है और इस संघर्ष में सर्वहारा के विरूद्ध सत्रुदल में सशस्त्र खड़ा है, इसीलिए उसका प्रत्येक तर्क और बहस उन्हीं को सिद्ध करने के लिए है।[19] अन्ततः उसकी (पेटी बुर्जुआ की) कला उसका विज्ञान एवं कार्य एक ऐसा प्रोपेगंडा है जो एक ओर यदि उसके दासत्व को प्रमाणित करता है तो दूसरी ओर उसके क्षुद्र अहं की पूर्ति करता है। उसे लगता है कि विचारो का संघर्ष ही मूल तत्त्व है। इसी संघर्ष की टकराहट से कुछ होगा। ये विचार झूठी, छद्म वास्तविकता पर आधारित होने के कारण ऊट-पटांग, असंबद्ध और वायवी होते हैं।[20]

काडवेल की उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए 'अशोक चक्रधर' नायक की मानसिकता के संदर्भ में सटीक टिप्पणी करते हैं।

''पेटी बुर्जुआ अपनी इसी स्थिति के कारण एक छद्म और असत्य चेतना से ग्रस्त रहता है। प्रश्न उठता है कि कविता गत कर्ता इससे परिचित होते हुए इससे मुक्ति चाहते हुए भी इसे क्यों समाप्त नहीं कर पाता। इसका उत्तर यह है कि वर्ग-चेतस पेटी बुर्जुआ तब तक इससे मुक्ति नहीं पा सकता, जब तक पूर्ण रूपेण सर्वहारा की ओर अपना वर्ग विस्तार न कर ले, दूसरे इस चेतना से परिचित हो जाने पर भी उसका समस्त तो नहीं बदल सकता, क्योकि उसके समाज का हर व्यक्ति अपने अन्दर 'ओरांग-उटांग' पाले हुए है जाहिर है एक ही समाज में रहकर एक 'ओरांग-उटांग' का उत्तर 'ओरांग-उटांग' में ही दिया जा सकता है। वर्ग चेतस व्यक्ति अपनी असत्य चेतना से परिचित हो जाने पर एक द्वन्द्व की स्थिति में रहता है - न [illegible] कर पाता है, न अपनी छद्म चेतना को ही मार पाता है। 'फ़ैण्टेसी' के कर्त्ता की भी यही स्थिति है। वह

वर्ग चेतस होते हुए भीअपने वर्ग की सीमाएं नहीं तोड़ पाता, रहता अपने ही वर्ग मे है किन्तु निर्वासित। इसीलिए 'फ़ैण्टेसी' का कर्त्ता संस्कृत प्रभामय अध्ययन गृह मे सशरीर नहीं जाता, 'अदृश्य रूप' मे प्रवेश करता है, बहस में भाग लेना है.[21]

यह सम्पूर्ण 'फैण्टेसी', मध्यम वर्गीय बुद्धजीवी और उसके चेतन अचेतन मे छिपी लालसाओ को, प्रभावशाली ढ़ंग से प्रस्तुत करती है। मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी जाने अनजाने शोषण के चक्र को सहायता देता है और इस प्रकार अपने तर्कों और शब्दों से ('फ़ैण्टेसी' मे आए हुए नाखूनो दातो और वघनखों से) जिसे आहत करता है, वह अन्ततः सर्वहारा वर्ग ही है। इस सर्वहारा वर्ग को ही 'मुक्तिबोध' अपने सबसे निकट पाते है।

'फ़ैण्टेसी' निर्माण की इस प्रक्रिया में हमने देखा कि 'मुक्तिबोध' प्रतीकों, बिंबो, स्वप्न, विचारधारा, कथ्य, वर्णन, लक्षणा, व्यंजना का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार 'फ़ैण्टेसी' के अन्तर्गत 'मुक्तिबोध' कविता के परम्परागत उपकरणों का सतर्क प्रयोग करते हुए अपनी 'फ़ैण्टेसी' को निश्चित दिशा मे सक्रिय करते हैं और सुनियोजित निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। 'अशोक चक्रधर' का यह निष्कर्ष सर्वथा उचित है कि— 'मुक्तिबोध' की यह विशेषता है कि वे 'फैण्टेसी' को यथार्थ जगत के समानान्तर चलाते हैं। उसी के कारण यह होता है कि 'फ़ैण्टेसी' मे जहाँ एक ओर काल्पनिक बिंबात्मकता होती है, वहीं जीवन यथार्थ के शब्द भी होते हैं। इसीलिए उन्होने 'फ़ैण्टेसी' को जीवन-चित्रशाला कहा है।[22]

मेरे सहचर मित्र

कविता का प्रारम्भ शिकायत भरे स्वर से होता है—

''मेरे सहचर मित्र
जिन्दगी के फूटे घुटनों से बहती
रक्त धारा का जिक्र न कर''।[23]

काव्य नायक को 'सहचर मित्र' ने अपने कन्धों (अपने विप्लवपूर्ण जीवन-अनुभव देकर) पर खड़ा किया है, लेकिन वह उसके फूटे घुटनों (विघटित व्यक्तित्व) के कारण चिन्तित है। अतः काव्य नायक आश्वासन देता है कि वह जनता के अनुभवों से अपना आत्मविस्तार

करेगा तथा अपने व्यक्तित्व का निर्माण करेगा, काव्य नायक इससे बेचैन है कि शोषण (प्रश्न) का रूप दानव जैसा है, जबकि उसका प्रतिरोध (उत्तर) दबे घुटे कैदी के समान. यहाँ उत्तर का मानवीकरण हो गया है। जनता की यह प्रतिरोध और विद्रोह शक्ति (उत्तर) काव्य नायक पर क्रुद्ध हो, उसे एक ओर देखने को कहती है इसके बाद 'फ़ैण्टेसी' सक्रिय होती है —

'उस नीले-नीले आसमान की सरहद पर
परिचित एक कोमल चिड़िया,
जो नित्य तुम्हारे घर आँगन
रोशनदानों में उड़ती थी
घर की आत्मा
वह दूर क्षितिज पर ठहरी-सी
काली बिदिंया
उस नीले-नीले आसमान की सरहद पर
वन-पक्षिराज बन
पंख पसारे उड़ती हुई मुझे कहती,
वह पक्षिराज मुझसे कहता —
'ओ मित्र, तुम्हारे घर-आँगन को
शैलाचंल-गिरिराज - शिखर
तो होने दो
वह आसमान तो झुकने दो
उसके मुख पर
इस समय बात के पूरे नहीं
अधूरे तुम,
कमजोर .... प्रखर होना बाकी
अब बूटों–दबा दीन ढ़ेला

कैलाश - शिखर होना बाकी

कैलाश-शिखर पर बैठेंगे'।[24]

चिडिया को सहचर मित्र के 'घर की आत्मा'' कहा गया है। अतः वह जनता की शक्ति के प्रतीक हैं। जनता मे विक्षोभ और विद्रोह की भावना क्रमशः बढ़ती जा रही है, जिस कारण वह सगठित होती जा रही हैं। युंग के मनोविज्ञान में 'आत्मा' को सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पर्याय माना गया है।[25] अतः जनता की शक्ति की प्रतीक चिड़िया का 'वन पक्षिराज' में बदल जाना उसकी शक्ति की वृद्धि का द्योतक है। 'अशोक चक्रधर' ने 'चिड़िया' और 'वन पक्षिराज' को क्रमशः 'असंगठित सर्वहारा' और 'संगठित सर्वहारा' का प्रतीक माना है।[26] यह प्रतीकार्थ थोपा हुआ लगता है। कविता में इस तरह का कोई संकेत नहीं है। अपनी मान्यता को तार्किक बनाने के लिए 'अशोक चक्रधर' 'आसमान' को पूंजीवादी व्यावस्था और 'कैलाश शिखर' को सर्वहारा के अधिनायकत्त्व का प्रतीक मानते हैं। कथ्य मे यहाँ आकर एक विशेष बात यह जुड़ी कि पक्षिराज ने कर्त्ता को 'ओ मित्र' कह कर संबोधित किया कि आसमान (प्रतीक) यानि पूंजीवादी व्यवस्था को झुकने दो एवं ' बूटों दबे दीन ढ़ेले' (प्रतीक) को कैलाश शिखर (प्रतीक) हो जाने दो अर्थात् राज्य सत्ता पर सर्वहारा का अधिनायकत्त्व स्थापित हो जाने दो, वहीं बैठेंगे।[267] यदि कविता को केन्द्र में रखकर देखा जाय तो, ये प्रतीकार्थ न केवल ऊपर से थोपे लगते हैं, बल्कि उनमे आपस मे ही संगति नहीं है। 'वन-पक्षीराज' कह रहा है कि वह कैलाश शिखर पर बैठेगा। यदि उसे संगठित सर्वहारा माना जाय, तो काव्य नायक जिसको वह संबोधित कर रहा है कि 'तुम्हारे घर-आँगन को गिरिराज-शिखर तो होने दो' का क्या अर्थ लगाया जाय? वास्तव मे कविता को न समझ पाने या समझने की कोशिश न करने के कारण यह सरलीकरण किया गया है। काव्य नायक को संबोधित करके वन-पक्षिराज कह रहा है कि अपने 'घर आंगन को गिरिराज शिखर तो होने दो' अर्थात् अभी उसके व्यक्तित्व मे ढुलमुलपन है, दृढ़ता नहीं है। जब वह आत्मबद्ध घेरे से निकलकर (आसमान तो झुकने दो उसके मुख पर) पीड़ित मानवता का पक्षधर बन जायेगा, तभी जनता की शक्ति और उसकी समस्याओं को समझ सकेगा। काव्य नायक अभी द्वन्द्व मुक्त नहीं हो पाया है।अतः जनता की शक्ति पर विश्वास नहीं कर पाता। शकालु की दृष्टि से उत्तर का मुख देखता है।

'उत्तर का मुँह ....

पहले बादल

फिर बादल में मानव-मुख-रेखा

ऊर्जस्वल,भव्याकृति, स्वेदायित

रक्तांकित मुख मण्डल

धीरे-धीरे आ मेरे इतने निकट कि वह

आँखों पर झुकता आता है,

इतना समीप झुकता कि

त्वचा की रेखायें रिक्तिम घावो में कटी-पिटी,

मेरी आँखों मे उभर रहीं।

वह घाव भरे चेहरे का कोई सैनिक है''।[28]

काव्य नायक जनता को निरीह समझ रहा था। उसकी सघर्ष शक्ति पर विश्वास न होने के कारण वह अकेला संघर्षरत था। पीड़ा के उस सरिता-तट पर शत हताहतों के बिखरे दल मे मूर्छित पड़ा था। सहचर सैनिक (जनता का प्रतीक) उसे अपना साथी समझकर साथ ले आता है। वह जनता के सम्पर्क में आने से उसकी शक्ति से परिचित होता है तथा द्वन्द्व स्थिति से निकलकर आत्मविस्तार करता है। उसकी सुसुप्त क्रान्ति-चेतना जाग्रत होती है। इस मानसिक बदलाव को 'फैण्टेसी' द्वारा प्रकट किया है। आत्मा का गुहाद्वार खुलने के द्वारा उसके आत्म-विस्तार का संकेत दिया गया है और उसकी सुसुप्त क्रान्तिचेतना को पत्थर कुरशी पर बैठे क्रान्तिदर्शी के द्वारा मूर्तित किया गया है। वह क्रान्तिदर्शी जनता की शक्ति से तादात्म स्थापित कर जन-समस्याओं पर गम्भीर चर्चा करता है। काव्य नायक का व्यकित्त्वान्तरण हो गया है लेकिन 'फ़ैण्टेसी' मे वह गुहाभीत से कान लगाकर 'बहस' को सुनता है। अपने ऐतिहासिक दायित्व का बोध हो जाने के कारण वह जनता को संगठित करने के लिए सक्रिय हो जाता है। आत्म-चेतन काव्य-नायक को जनता में व्याप्त जड़ता के कारणों को जानकर, उसे दूर करना है और जनता को संगठित करना है। इस दायित्व को 'फ्यूज-बल्ब' के स्थान पर 'प्राण-बल्ब' लगाने के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

'मैं स्याह चन्द्र का फ्यूज-बल्ब
जल्दी निकाल
पावन प्रकाश का [illegible]
वह लगा सकूँ
जो बल्ब तुम्ही ने श्रमपूर्वक तैयार किया
विक्षुब्ध जिन्दगी को अपनी
वैज्ञानिक प्रयोगशाला में।'[29]

काव्य नायक जनता के अनुभवों से अपने व्यक्तित्व का गठन करता है। उसकी क्रान्ति-चेतना जाग्रत हो जाती है। अगली 'फ़ैण्टेसी' अन्तिम बन्द के बीच में रूप ग्रहण करती है। काव्य नायक के व्यक्तित्वान्तरण मे जन अनुभवो का विशेष योगदान है। उसके 'व्यक्तित्व-कदम्ब-तले' सहचर मित्र (जनता) ने वाक्यावलियाँ अंकित कर दी है। अनुभव समृद्ध काव्यनायक के क्रिया कलापो मे वही ज्ञान प्रकट होता है और 'फ़ैण्टेसी' सक्रिय होती है।

'मानव-व्यक्तित्व-कदम्ब-तले
(गम्भीर रात्रि में) आ करके,
चुपचाप सिमिट,
अकुलाहट की चाँदनी
सरल निर्व्याज-मुखी
तरू-तने-खुदी वाक्यावलियाँ
पढ़ती हैं बहुत ध्यान से, तब
पढ़ते-पढ़ते अक्षर-दल से,
उमड़ी चन्दन की ज्वालाएँ
पावनता की विक्षुब्ध
रश्मियाँ भभक उठी,
ये खोदे गये गर्म-सारांश भभकते हैं
बस इसी तरह,

अर्थो की गहरी ज्वालाएं दिन-रात
निकलतीं इसी तरह,
माधुरी और करूणा से भीगी रहकर भी
जी के भीतर की शिलालेख चट्टान,
गर्म रहती ही है'[30]

अकुलाहट की चाँदनी पेड़ के तने पर खुदी वाक्यावलियाँ ध्यान से पढ़ती हैं अर्थात् प्राप्त अनुभवो के द्वारा काव्य नायक ने निष्कर्ष के रूप में जो सृजन किया है, उसे आत्म-चेतस व्यक्ति ध्यान से पढ़ते हैं। उनके अन्दर क्रान्तिकारी विचार कुलबुलाने लगते हैं। इसका संकेत 'अक्षर-दल' से चन्दन की ज्वालाएँ तथा रश्मियो के भभकने से दिया गया है। शोषण और अत्याचार को सहने वाले व्यक्तियों मे,उनके विचारों मे समानता होती है। अतः कविता उनके मैत्री भाव को प्रदर्शित करती हुई समाप्त होती हैं।

'ओ मेरे सहचर मित्र,
क्षितिज के मस्तक पर नाचती हुई
दो तडिल्लताओं में मैत्री रहती ही हैं'[31]

ओ काव्यात्मन फणिधर

समान काव्योंपकरणों के कारण 'मुक्तिबोध' की अधिकांश कविताओ में 'फ़ैण्टेसी' के निर्माण की प्रक्रिया एक जैसी दिखाई पड़ती है। यह समानता कुछ कविताओं में वास्तव में होती है, किन्तु कुछ कविताओं में 'फ़ैण्टेसी' दूसरी कविताओं जैसी दिखाई देती हुई भी पर्याप्त भिन्न होती है। मध्यम वर्गीय भारतीय बुद्धिजीवी की सुविधा परस्ती के साथ ही उसकी तेजस्विता और रचनात्मकता भी अधिकांश कविताओ में चित्रित होती है। अधिकांश कविताओं मे बुद्धिजीवी के आचरण रहित ज्ञान की बिडम्बना भिन्न-भिन्न प्रतीकों में होती हुई भी एक समान दिखाई देती है। इसी तरह सर्वहारा के अनुभव की तेजस्विता भी अधिकांश कविताओं में विशेष रूप से रेखांकित होती हुई दिखाई देती है। कुछ कविताओं में वाचक का कवि के साथ तादात्म्य भी दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत कविता में 'मुक्तिबोध' सीधे अपनी बात करने के लिए उद्‌बोधनमय 'फ़ैण्टेसी' की रचना करते हैं। इस 'फ़ैण्टेसी' में कवि किसी वाचक नायक या वर्णन कर्त्ता को

नही ले लाता है, वह सीधे अपनी कविताओं को संबोधित करता है।

उन्नीस खण्डो की इस कविता मे पहला खण्ड सीधे कवि के इस काव्यात्मक कथन से आरम्भ होता है कि तुम्हारे पास जो रत्न है, इनको तभी तक सभाल कर रखना है, जब तक कि तुम्हारे पास सामान्य जन आ नहीं जाते। कवि कहता है—

'ओ सवेदनमय ज्ञान-नाग
देदीप्यमान उस मधुर रश्मि बर्षा का
असहनीय आनन्द दबा
तुम छिपा चलो जो कुछ तुम हो।'[32]

अपनी कविताओं से अपने सवेदनमय ज्ञान-नाग से अपने को छिपाने की बात कहने के पीछे कारण यह है कि कवि को लगता है कि अभी समय इसके लिए उपयुक्त नहीं हुआ है। यह मुश्किल सच कहने का अभी अवसर नहीं आया है। शोषण का चक्र अभी इतना सुगठित है कि अभी क्रान्ति की उद्घोषणा का समय नहीं आया है। इसीलिए संवेदनमय ज्ञान-नाग से कवि कहता है।

'यह काल तुम्हारा नहीं'।[33]

अगले खण्ड मे कवि कहता है कि अपने को तो प्रकट करने का समय नही आया है, किन्तु अनुभव रत्नो को सुरक्षित रखने के साथ-साथ नये-नये रत्न इकट्ठा करना भी आवश्यक है। जो लोग तुमसे इन रत्नों का हिसाब लेने आयेगें, उन्हें पूरा का पूरा हिसाब देना पड़ेगा।

'किन्तु एकत्र करो
प्रज्वलित प्रस्तरों को ......
वे आते होंगे लोग
जिन्हे तुम दोगे ....
देना ही होगा, पूरा हिसाब
अपना, सबका, मन का, जन का''[34]

तीसरे खण्ड में कवि कहता है कि जिन रत्नों के लिए निरन्तर तुम गतिशील हो, वे

छिपाये गये मन के धसाये गये रत्न हैं। 'मुक्तिबोध' की अनेक कविताओं में असुविधाओं के डर से अनुभव रत्नो को छिपा देने और फेंक देने के दृश्य आते हैं। 'अँधेरे में' का नायक भी खोह के भीतर चमकते हुए रत्नो को देखकर पहचानता है, उसके वहाँ होने का कारण भी जानता है।

चौथा खण्ड 'फ़ैण्टेसी' के भीतर एक अलग 'फ़ैण्टेसी' बनाता है। कवि जिन अनुभव रत्नो को निष्कासित कर चुका है, उसके निष्कासन के पिछवाड़े ढेरों में भयंकर खड़खड़ सुनकर कवि गुनगुना उठता है —

'जी नही, नहीं, कुछ नही, यूँ ही मन मे खटका
जिस उच्च शिखर
को पश्चिम के भूगोलशास्त्रियो ने देखा,
जिस पर प्रसन्न मुद्रा मे आसन जमा लिया,
कुछ महामहिम सभ्यो ने दर्शन कमा लिया,
व हो न कही
भू-ज्वाल-विबर
जी नहीं, नहीं, कुछ नहीं, यूँ ही मन भटका।'[35]

'मुक्तिबोध' के संबंध में जो लोग यह घोषणा करते हैं कि उनकी सम्पूर्ण काव्य चेतना केवल मार्क्सवादी विचार से निर्मित हुई है, उन्हें देखना चाहिए कि उपर्युक्त 'फ़ैण्टेसी' में पश्चिम के दार्शनिको पर कैसा मीठा व्यंग्य किया गया है।

पाँचवे खण्ड मे गाँव के पुराने घरों में साँप दिखाई देने और उसके पीछे लाठियाँ लेकर लोगो के पड़ने के अति परिचित दृश्य को 'फ़ैण्टेसी' में उतार दिया गया है।[36] प्रतीकार्थ स्पष्ट है कि जनमन के पास अनुभव रत्नो की खोज में भटकती हुई कविताओं को लोग डर के कारण न सिर्फ स्वीकार नहीं करते, बल्कि उनको मार डालना भी चाहते हैं। इन खतरों को समझकर भी छठें खण्ड में वह अपनी नागात्मक कविताओं को लहराने के लिए कहता है कि—

'उन श्याम झुरमुटों-तले कोई
मिल जाय कहीं
वे फेंके गये रत्न, ऐसे

जो बहुत असुविधाकारक थे,

इसलिए कि उनके किरण-सूत्र में होता था

पट-परिवर्तन, यवनिका-पतन

मन मे जग में'।[37]

सातवे खण्ड मे उन्हें जंगल-जंगल भटकने को कहता है, और वह बड़ा रास्ता दिखलाता है, जो नदी के पार, पीपल, बन तुलसी से होता हुआ वट वृक्ष की ओर जाता है। आठवें खण्ड मे विशालकाय बरगद के नीचे सोये हुए कई लोगों के बीच एक पागल स्त्री भी है। जिसके स्तन से चिपका हुआ एक मृत बालक है। मृत बालक और पागल स्त्री के चित्र की एक झलक दे कर नौवें खण्ड की 'फ़ैण्टेसी' में एक दार्शनिक की आत्मा का प्रवेश होता है, जो विवेक बुद्धि से सम्पन्न तो था, किन्तु आचरण रहित अकर्मक होने के कारण ही अकाल मौत मर गया। जन को उत्पीड़ित करने वाली व्यवस्था अपना काम कर रही थी, दार्शनिक, आध्यात्मिक गहन प्रश्नो के सुख भोगता हुआ मर गया। 'ब्रह्मराक्षस' कविता का 'ब्रह्मराक्षस' और 'अँधेरे मे' का पागल इसी दार्शनिक के भिन्न-भिन्न ससंस्करण हैं।

दसवे खण्ड में आठवे खण्ड का दृश्य आगे बढ़ता है, और पागल स्त्री तथा उसके मृत बालक का प्रतीकार्य स्पष्ट होता है। उस पागल स्त्री और उसके मृत पुत्र का चित्र इस रूप मे उभरता है —

'शोषित व व्यभिचारिता आत्मा को पुत्र हुआ

स्तन मुँह में डाल, मरा बालक! उसकी झाई,

अब तक लेटी है पास उसी की परछाई।।

आधुनिक सभ्यता-संकट की प्रतीक-रेखा'।[38]

आधुनिक सभ्यता के संकट की यह प्रतीक रेखा कई बार कवि के सपनो मे आ चुकी है। इसको समझता हुआ दसवें खण्ड के अन्त में कहता है कि 'जीने के पहले मरें, समस्याओं के हल'।

समस्याओ के समाधान की इस अकाल मृत्यु का कारण यह था कि एक तो वह व्याभिचारी से उत्पन्न था, दूसरे असमय आ गया था। इसी बात को ध्यान में रखकर पहले खण्ड

में कवि ने कहा था कि —

'तुम छिपा चलो जो कुछ तुम हो
यह काल तुम्हारा नहीं''।[39]

ग्यारहवे खण्ड मे ''ब्रह्मराक्षस' कविता की बावडी का दृश्य उभरता है, अन्तर इतना है कि वहॉ जल से भरी बावडी का दृश्य उभरता हैं, यहाँ सूखे तले का कुँआ है, जिसमें कचरे के ढ़ेर पडे हैं, अपने 'काव्यात्मन फणिधर' के साथ कवि कुंए के अन्दर देखता है एक शिशु रो रहा है। बारहवे खण्ड मे व्यक्ति दुःख एवं आश्चर्य व्यक्त करता है कि, किस अभागे ने इस प्रकार आत्मोत्पन्न सद्योजात सत्य का त्याग कर दिया है। इस बालक में किस क्रान्ति का खतरा हो सकता था। अत्यन्त कोमल बिंबो के सहारे अपनी कविताओं को आदेश देता है —

'चुपचाप सरकते चलो, पास उसके पहुँचो।
निज नाग-नेत्र की कोमल द्युतियो से
गीले गुलाब पर मृदु प्रकाश डालो,
आक्रोशवती मुख-गरिमा का सौन्दर्य देख
आवेग भरा उल्लास-नृत्य
तुम नाच-नाच डालो'।[40]

तेरहवे खण्ड में शिशु रोने लगता है, जिसके रूदन से लोगों के दरवाजे खुलते है, लोगों के मन मिलते-जुलते है। चौदहवे खण्ड में 'काव्यात्मन फणिधर' को संबोधित करता हुआ मानव रूप धरने का कवि आग्रह करता है। यह आग्रह कवि इसलिए करता है कि ऐसा होने पर वह मानव उस शिशु के आक्रोश को जान लेगा। उस शिशु को अपने वक्ष पर लेकर चलने से वे रास्ते मिल सकते हैं, जिन पर वह निरा सज्जन (कर्महीन) अपनी आत्मा से प्रकट हुई प्रज्वलमयी आत्मा को छोड़कर चला गया। कवि अपनी नागात्मक कविताओं को आदेश देता है कि उस कर्महीन बुद्धिजीवी के सपनों की ज्यामितीय रेखाओं को उसके जगत गणित को पहचानों और उसके जहरीले संवेदनाओं को भोगो, ताकि अधिक उत्तेजित और आक्रामक हो सको। 'ब्रह्मराक्षस' कविता में 'सजल उर शिष्य' होने की अधूरी अभिलाषा, कि वह उसके अधूरे कार्य को पूरा करे वाचक के मन में रह जाती है, उसका उपर्युक्त अवसर 'फ़ैण्टेसी' में खोज

लिया गया है।

पन्द्रहवें खण्ड की '[illegible]' मे अँधेरे गाँव का दृश्य उभरता है जिसमें श्रमिकों की बस्ती एक स्याह गहरे धब्बे की तरह आती है. श्रमिकों के पीने के लिए पानी से भरा [illegible] [illegible] है, जिसमें से अन्जलि से श्रमिक पानी पीते हैं। अत्यन्त [illegible] मे इस दृश्य का चित्रण करता हुआ कवि, श्रम की सुगन्ध का अनुभव कराता है। वहाँ श्रमिक युवती के पास उस शिशु को रख देने की सलाह देता है। 'फ़ैण्टेसी' का यह दृश्य इस रूप में पूरा होता है कि वह शिशु (जो नवजात सत्य है) श्रम गरिमा का दूध पीकर विकसित होने लगा है। सोलहवें खण्ड मे कवि कहता है कि अन्जलि से जल पीने वाले श्रमिकों के मुख को पोंछो मत, इनको देखने वाला तारों के सिवा कोई नहीं है। अप्रस्तुत रूप से तारों का उल्लेख करके, उनके बहाने तटस्थ बुद्धिजीवी पर करारा व्यंग्य किया गया है। सत्रहवे खण्ड में अपनी कवि-नवजात सत्य को, श्रमिक युवती के हाथों सौपकर अपनी गुहा मे लौट चलने को कहता है। अट्ठारहवें खण्ड मे 'काव्यात्मक फणिधर' अपनी गुहा में लौटकर देखता है कि वहाँ अन्धकार है। वे रत्न जिनसे गुहा जगमगा रही थी, वे गायब हैं।

उन्नीसवें खण्ड में कवि 'काव्यात्मक फणिधर' को समझाता है कि उन रत्नों के चले जाने का शोक मत करो, क्योंकि वे व्यर्थ नहीं गये हैं। वे रत्न उन्हीं लोगों के पास गये हैं, जो तुम्हारी अनुपस्थिति में उन्हे खोजने यहाँ आये थे —

> 'पर, शोक मत करो नागात्मन्........
> आ गये तुम्हारी अनुपस्थिति में लोग
> प्रतीक्षा जिनकी थी,
> ले गये ज्वलंत्-द्युति प्रस्तर-धन!!
> अब उन रत्नों का अर्थ दीप्त होगा,
> उनका प्रभाव घर-घर में पहुँचेगा फिर से'।।[41]

कवि उन रत्नों का वास्तविक उपयोग यही बताता है कि उनसे शोषण का दुश्चक्र अनावृत्त हो जायेगा। शोषण के दुश्चक्र के उद्घाटन में अनुभव रत्नों की भूमिका बताने के साथ ही 'फ़ैण्टेसी' पूर्ण हो जाती है। उपसंहार करते हुए 'मुक्तिबोध' संक्रमण काल में इमान बनाये

रखने और धैर्य धारण करने की सलाह देते हुए, उन्हीं रत्नों की खोज में फिर निकल जाने को कहते हैं। जो रत्न उपेक्षिता भूमि मे फेकें और छिपाए गये हैं, उन्ही की तलाश में निकल कर कविताएँ जन मन तक पहुँच सकती हैं और धरती के बाहर भीतर का सर्वेक्षण करके वांछित परिवर्तन की दिशा मे सक्रिय हो सकती हैं—

'ओ भू-गर्भ शास्त्री,
भीतर का बाहर का
व्यापक सर्वेक्षण कर डालो'।[42]

नाग प्राचीन मिथकों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, कुछ नागो के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि उनके पास अमूल्य मणियाँ होती हैं जिनके प्रकाश से उनकी गुहा जगमगाती रहती है। मणि छिन जाने पर सर्प के मृत प्राय हो जाने की चर्चा साहित्य में बहुत बार आयी है। उपर्युक्त 'फ़ैण्टेसी' मे 'मुक्तिबोध' ने इसका बहुत कुशल उपयोग किया है।

एक अन्तर्कथा

कविता का मूल कथ्य बुद्धिजीवी के आत्म संघर्ष को स्पष्ट करना है। वह अभिरूचियों और मध्यवर्गीय सस्कारों को त्याग न सकने के कारण, अपने सामाजिक दायित्व को निभा नहीं पाता। मूल्यो की खोज के लिए बेचैन रहता है, परंतु सुविधा भोगी होने के कारण बौद्धिक संघर्ष ही कर पाता है, और निःसंग जीवन बिताता है। लेकिन उसमें लक्ष्यों के प्रति यदि दुर्दान्त आस्था हुई तो वह अपना आत्मविस्तार कर दायित्व उठा लेता है। इस कविता में माँ और पुत्र रूपक के द्वारा बुद्धिजीवी के द्वन्द्व को अभिव्यक्ति दी गयी है। बीच-बीच में 'फ़ैण्टेसी' सक्रिय हो जाती है।

मां (परम्पराबोध और इतिहासबोध) अग्नि के काष्ठ-सूखे डण्ठल सूखी डाली (टहनी) जंगल से बीन रही है। ये अग्नि के अधिष्ठान विगत चेतनशील व्यक्तियों के क्रांतिकारी अनुभव और विचार हैं, जिन्हें काव्य नायक के पास टोकरी में रखा जा रहा है। अर्थात् काव्य नायक इन अनुभव और विचारों के आलोक में अपने व्यक्तित्व का निर्माण करेगा और अपने लक्ष्य को निश्चित करेगा। बुद्धिजीवी काव्य नायक दायित्व को उठाना (टोकरी) नहीं चाहता। परंतु युगीन दायित्व से भागा नहीं जा सकता। अतः मां की आज्ञा से टोकरी उठाये चलना है। चौथे बंद में 'फ़ैण्टेसी' आकार ग्रहण करती है। टोकरी में टण्ठल-टहनी की काली रेखाएं आपस

में गुथने लगती है और उसमें दबे-दबे स्वर निकलने लगते हैं 'फ़ैण्टेसी' के भीतर 'फ़ैण्टेसी' आगे बढ़ती है:

'अजीब सी टोकरी
कि उसमें प्राणवान माया ..
गहरी कीमिया
सहज उभरी फैली संवरी
डण्ठल-टहनी की कठिन सांवली रेखाएँ
आपस में लग यों गुंथ जातीं
मानो अक्षर नवसाक्षर खेतिहर के -से
वे बेढ़ब वाक्य फुसफुसाते
टोकरी विवर में से स्वर आते दबे-दबे
मानो कलख गा उठता हो धीमे-धीमे
अथवा मनोज्ञ शत-रंग-बिरंगी विहंग गाते हो।''[43]

क्रांतिकारी अनुभव और विचार जब अपने सही रूप में प्राप्त होते हैं, तो उनके प्रभाव से व्यक्ति उत्साहित और दृढ़ प्रतिज्ञ बनता है। उसके जीवन में जीवन्तता और गतिशीलता आती है। मा द्वारा 'अग्नि के अधिष्ठान' बीनने की प्रक्रिया जारी है। काव्य नायक उसके पीछे-पीछे चल रहा है वह टोकरी से निकल रहे कलख-गान के बारे में पूछता है मां कहती है कि सूखी टहनी की अग्नि-क्षमता (विद्रोही शक्ति) ही गा रही है। काव्य नायक इसे जानकर रोमांचित होता है और स्वर्णिम भविष्य का स्वप्न देखता है। सपने से जागकर उसका सुविधा प्रेमी मन, अपने इस कार्य (सूखी टहनी बीनने और रखने) का लाभ जानना चाहता है। मां कहती है कि वह उन अनुभव मर्मो को एकत्र कर रही है, जिन्हें सम्पन्नतावश छोड़ा जा रहा है, उनकी मूल्यवत्ता का ज्ञान वह समाज को करायेगी:

'घर के बाहर आंगन में मैं सुलगाउंगी
दुनिया भर को उनका प्रकाश दिखलाऊंगी'।[44]

इस स्थल पर 'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' निर्माण-प्रक्रिया के भीतर भाषा की अत्यन्त

आवेगमयी स्थिति द्रष्टव्य है। कवि अपनी भाषा के उपकरणों के [illegible] खड़ा हो गया है। काव्य-भाषा के उपकरण एक ओर कवि के द्वारा प्रयुक्त हैं और दूसरी ओर कवि को संवारने-सुधारते चलते है। जगत समीक्षा दोनों ओर से चलती है और तब आगामी के सपने रूपक और प्रतीक मे उतर पाते हैं।

इस स्थल पर 'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' मे यूटोपिया की सृष्टि करते हैं। उनके प्रतीक रूपक जिस आगामी चित्र को प्रस्तुत करते हैं, उसमें सब तरह के सारे दरवाजे खुल जाते हैं।

'दरवाजे दुनिया के सारे खुल जाते हैं,
प्यार के साँवले किस्सों की उदास गलियां'।[45]

'फ़ैण्टेसी' के भीतर यह स्वप्न दृश्य है, जिसे 'मुक्तिबोध' स्वयं 'फैण्टेसी' कहते हैं। 'मुक्तिबोध' के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से देखे तो यह वर्गहीन समाज का स्वप्न चित्र होगा जिसमे सब अपने हैं, कोई पराया नहीं, क्योंकि समाज में कोई वर्ग भेद नहीं। इसी 'फ़ैण्टेसी' से वे कल वास्तव होने का दावा करते हैं —

'मै विचरण करता-सा हूँ एक 'फ़ैण्टेसी' में
यह निश्चित है कि 'फ़ैण्टेसी' कल वास्तव होगी'।[46]

इस क्लाइमेक्स के बाद भीतरी 'फ़ैण्टेसी' पूर्ण होकर बंद हो जाती है। 'फ़ैण्टेसी' का बाहरी वृत्त फिर खुलता है और बालक सपने से निकलकर बाहर खड़ा होता है।

'मेरा तो सिर फिर जाता है
औ' मस्तक में
ब्रह्माण्ड दीप्ति सी धिर उठती
रवि-किरण-बिन्दु आँखों में स्थिर हो जाता है'।[47]

मां के कथन से काव्य नायक वस्तु स्थिति से परिचित होता है, उसे अपनी ऐतिहासिक स्थिति और दायित्व का बोध होता है कि वे दोनों 'सर्वोज्जल परम्परा' पाने के लिए भटक रहे है।[48]

अगले बंद में टोकरी-विवर में संद्योजात बालक की सृष्टि होती है। 'फ़ैण्टेसी' सक्रिय, बालक रो रहा है और भारी होता जा रहा है[49]। यहाँ बालक ऐतिहासिक अनु[illegible] ज्ञान से

प्राप्त सत्य के प्रतीक रूप में आया है। यह नया सत्य काव्य नायक को आकर्षित करता है, परन्तु वह दायित्व भार से घबराता हैं। उसकी चेतना पर स्वयं का दबाव क्रमशः बढ़ता जाता है, जिसका संकेत कन्धो पर खड़े 'देव' से दिया गया है :

'मेरे कन्धों पर खड़ा हुआ है देव एक दुर्धर
थामता नभस् दो हाथो मे
भारान्वित मेरी पीठ बहुत झुकती जाती
वह कुचल रही है मुझे देव-आकृति।'[50]

काव्यनायक अपनी इस भावना से परेशान है, मां का आदेश होता है और काव्य नायक दुर्बलता को त्यागकर स्वयं देव के समान दृढ़ हो जाता है, फिर ... अभिरूचियाँ और संस्कार जोर मारते है और दायित्व उठाने का उत्साह खत्म हो जाता है।

'ये गरम चिलचिलाती सड़के
सौ बरस जिएँ
मैं परिभ्रमण करता जाऊंगा जीवन-भर
मैं जिप्सी हूँ'।[51]

इस घटना पर मां व्यंग्य से मुस्कुराती है। उसकी ढुलमुल नीति पर प्रहार करती हुई, उसे क्रान्तिधर्मा साथियो से 'अग्नि-भिक्षा' लेने का आदेश देती है। काव्य नायक चिलचिलाती सड़को पर निकल पड़ता है। गंधहीन सेमल के लाल फूलों को देखकर अपने जीवन पर मुग्ध होता है। नाटकीय संरचना के कारण कविता में शिथिलता नहीं है, कविता के बीच में 'फ़ैण्टेसी' आकार ग्रहण करती है।

एक स्वप्न कथा

कविता का संवेदनात्मक उद्देश्य असंगतिपूर्ण परिवेश में काव्य नायक के अंतर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त करना है। पूरी कविता 'फ़ैण्टेसी' में है। पहले खण्ड के प्राम्भर में काव्य नायक के द्वन्द्व को बताया गया है। उसकी सांझ रात सुबहें व दिन सियाह समुंदर के अथाह पानी में नहाते रहते हैं। उसका मन 'विक्षोपित हिल्लोलित लहरों में नहाता रहता है। इस सियाह समुंदर को 'डॉ॰ राम विलास शर्मा' ने 'उपचेतन मन' का प्रतीक माना है [52] 'डॉ0 नामवर सिंह' इसे 'गतिशील

प्रतीक' मानते है।[53] यदि कविता को केन्द्र मे रखा जाय तो कहा जा सकता है कि [illegible] समुंदर शोषणजीवी व्यवस्था और सत्ता का प्रतीक हैं। काव्य नायक इस व्यवस्था में जीवन यापन कर रहा है। व्यवस्था के अन्तर्विरोध के कारण उसमें भी द्वन्द्व है, फिर भी वह अपने से ऊपर उठकर समाज के बारे मे सोचता है। फिसलते से किनारे को पकड़कर निकलने की कोशिश के द्वारा इसका संकेत मिलता है।[54] उसे सियाह समुंदर में अन्य 'किरनीली मूर्तियां' नहाती प्रतीत होती है। वह उन्हे अपनी स्फूर्तियां कहता है। इससे कहा जा सकता हैं कि वे आत्मचेतस् [illegible] व्यक्ति है जो निरतंर कर्मरत हैं। निजबद्धता का परित्याग कर वे सामाजिक विकास के कार्य मे लगे हुए हैं।[55]

दूसरे खण्ड में 'स्फूर्ति मुख', काव्य नायक की द्वन्द्वयुक्त प्रकृति को देख कर तमतमा उठते हैं। वह लहरो को अंजलि मे लेकर उनके उद्‌गम स्रोत तथा इतिहास को जानना चाहता है। इस क्रिया पर वे कठोर आकृतियां 'बहावदार गुस्से में' भौहे चढ़ाती हैं। नायक इस सागर के बारे मे जानना चाहता है।

> 'सागर की थाहों में महाद्वीप डूबे हों
> रहती है उनमें ये मनुष्य-आकृतियां
> मुसकरा, लहरों में उभरती रहती हैं
> थरथरा उठता हूं।
> सियार बीरानी में, लहराता आर-पार
> सागर यह कौन है?''[56]

सागर में महाद्वीप के डूबे होने और उसकी लहरो में मनुष्य आकृतियों का उभरना, सागर के उक्त प्रतीकार्थ की पुष्टि करता है। यहाँ उसे उपचेतन का प्रतीक मानें तो इन पंक्तियों की अर्थ-दीप्ति नहीं होगी। शोषणजीवी पूंजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति आत्मबद्ध होता जाता है।

तीसरे खण्ड में एक अनहद्‌नाद चारो ओर गूँजता है, उसमें पक्षिणियाँ 'जमाने जमाने की गहरी शिकायतें' तथा 'खूरेंज किस्मों से निकले नतीजे' सुनाती हैं। पक्षिणियों को ऐतिहासिक अनुभवात्मक ज्ञान का प्रतीक माना जा सकता है। ये पाखी-दल काव्य नायक को अपना साथी समझकर उसके कन्धे और सिर पर बैठते हैं। पक्षिणियाँ उसे ऐतिहासिक दायित्व उठाने के लिए प्रेरित करती हैं:

'ज्ञानमणि' कहती है:

सहस्त्रों वर्षों से यह सागर

उफनता आया है

उसका तुम भाष्य करो

उसका व्याख्यान करो

चाहो तो उसमें तुम डूब मरो

अतल-निरीक्षण को,

मरकर तुम पूर्ण करो'।[57]

चौथे खण्ड में काव्य नायक 'स्फूर्ति मुख' के आदेश के बारे में सोचता है। उसे ख्याल आता है कि किसी ज्ञानी पूर्वज के सामने भी ऐसी समस्या आयी थी। उन्होंने गोता लगाकर एक शिला-खण्ड निकाला था। उसको देव मानकर पूजा हुई थी। शायद इस समुंदर में भी ऐसा ही कोई पत्थर मिल जाए, जो पूरे ब्रह्माण्ड की केन्द्र क्रियाओं का तेजस्वी अंश हो।[58] 'डॉ राम विलास शर्मा' इसमें रहचस्यवाद खोजते हैं[59] 'डॉ0 नामवर सिंह' ज्ञान-मणि की खोज के कार्य का स्वरूप ऐतिहासिक मानते हैं।[60] पहली बात तो यह हैं, काव्य नायक में 'स्याह समुंदर' की वास्तविकता जानने की उत्कंठा है, दूसरे अभी वह द्वन्द्व स्थिनि में है। उसका जिज्ञासा सुमन पूर्वजों के कार्यों और अनुभवों को जानकर उनसे दिशा ग्रहणकर 'ज्ञान मणि' की खोज करना चाहता है। पूर्वज के कार्यों को याद करना ऐतिहासिक ज्ञान से सम्बन्धित होना ही है। ज्ञान-मणि की खोज में जटिल साधना और कर्मठता की जरुरत होती है, तभी इस शोषणजीवी व्यवस्था के अन्तर्विरोध से उद्‌भूत प्रगतिशील पक्ष और उसकी शक्ति से परिचित हुआ जा सकता है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए काव्य नायक को आत्मबद्ध घेरे से निकलना पड़ेगा। तभी ज्ञान-मणि के मिलने की संभावना की जा सकती है:

इतने में आ कोई कानों मे कहता है —

ऐसा यह ज्ञान-मणि

मरने से मिलता है:

जीवन के जंगल में

अनुभव के नये-नये गिरियों के ढालों पर

वेदना-झरने के,

पहली बार देखे से, जल-तल में,

आत्मा मिलती है

(कहीं-कहीं, कभी-कभी)

अरे राह-गलियों मे

पड़ा नहीं मिलता है जन-मणि।[61]

पांचवे खण्ड में यह 'कोई' स्पष्ट हो जाता है।

ये वे स्फूर्तियां है जो एक नायक को निजबद्ध दिशा मे निकालने के लिए प्रयत्नशील है। काव्य नायक उनके क्रोधित होने से अनुमान लगाता है कि कोई परिवर्तन आने वाला है। 'स्फूर्ति मुखो' के विचार उसे आत्मग्रस्त अवस्था से निकालने में सहायक होते हैं। पांचवें खण्ड मे काव्य नायक आत्मलोचन करता है। उसे अपने दायित्व का बोध होता है। अब तक की गयी उपेक्षा के कारण अपराध-बोध से पीड़ित होता है:

'.........मैं जो बहा किया

आंतरिक आग्रह-दुराग्रहों मे

निर्णायक मुहूर्त जो कि

घपले में टेल गया

कि मैं ही क्यों इस तरह बदल गया''।[62]

इस आत्मालोचन के बाद काव्य नायक निजबद्धता के घेरे से निकलकर ऐतिहासिक दायित्व को स्वीकार कर लेता है। इसे उसके समुंदर में फेंके जाने से स्पष्ट किया गया है। सागर में तैरते हुए उसे 'काला सहस्त्र दल' दिखायी देता है। यह 'सहस्त्र दल' सत्ता पोषित वर्ग का प्रतीक है, क्योकि जब काव्य नायक जल-प्रवाह खोह तक पहुँचने के लिए भयानक लहरों से समझौता करने को सोचता है, तो सागर की जल त्वचा थरथरा उठती है और लहरें दांत पीसती सी दिख पड़ती है,[63] इस सागर से जुलूस चल पड़ते हैं। यहाँ जुलूस सत्ता पोषित वर्ग का है, जिसके बारे में सातवें बंद में देव समीक्षण सर्वेक्षण करता है।

'जुलूस में अनेक मुख
(नेता और विक्रेता अफसर और कलाकार)
अनगिन चरित्र
पर, चरित्रव्य कही नही
अनगिनन श्रेष्ठों की अनेक रूप आकृतियाँ-
रिक्त प्रकृतियां।
मात्र महत्ता की निराकार केवलता'।[64]

काव्य नायक इस दृश्य से विक्षुब्ध होता है। यहाँ 'फ़ैण्टेसी' के द्वारा 'देव' की सृष्टि हुई है, जो उसकी आकांक्षाओं का प्रतीक है। काव्य नायक की अक्षमनाओं की क्षतिपूर्ति 'देव' करता है। सागर की थाहो में 'देव' ने पैर टिका दिए हैं सागर का पानी उसके घुटनो तक है। उसका मुख आसमान छू रहा है, तारे कन्धों पर चमक रहे हैं और चाँद कन्दील की तरह एक ओर लटक रहा है। इसके बाद एक चट्टानी स्याह चेहरा सागर के बने रहने का कारण बताता है, यह चेहरा 'देव' का लगता है, लेकिन कोई स्पष्ट संकेत कविता में नहीं मिलता :

'किताब ही गर्वमयी
सभ्यता-संस्कृतियां
डूब गयीं।
कांपा है, थहरा है।
काला जल गहरा है
शोषण की अति मात्रा
स्वार्थों की सुख यात्रा
जब-जब संपन्न हुई
आत्मा से अर्थ गया, मर गयी सभ्यता।
भीतर की मोरियां अकस्मात खुल गयीं
- - - - - - - - - - - - - - -
काला समुंदर ही लहराया, लहराया '[65]

इस भयानक वास्तविकता से परिचित होकर [illegible] तनावयुक्त हो जाता है, उसे सागर के बीच 'रोशनी-मीनार' दिखायी देती है।[66] ऐसी ही '[illegible]' 'चकमक की चिनगारियां' कविता मे थी। यह देश की विदेश नीति की ओर संकेत करती है यहाँ तो कवि ने स्थिति स्पष्ट कर दी है। काव्यनायक सोचता है—

'हो न हो
इस काले सागर का सुदूर-स्थित पश्चिम किनारे से
जरूर कुछ नाता है
इसलिए, हमारे पास सुख नहीं आता है'[67]

कविता मे आगे 'जगमगाते अनगिनत तारो का उपनिवेश' सागर में तैरता दिखता है, वह सर्चलाइट से कुछ खोज रहा है वहाँ उसे काव्य नायक डूबता-उतराता (अन्तर बाह्य संघर्षरत) दिखायी देता है, एक हाथ उसे उठा लेता है। यह जहाज है, जिसे [illegible] भरे संगठित विरोध का साहसी समाज कहा गया है।[68]

ब्रह्मराक्षस

'मुक्तिबोध' की रचनाओं में सर्वाधिक गहन विश्लेषण मध्यम वर्ग का किया गया है। मध्यम वर्ग में भी बुद्धिजीवी वर्ग जो सम्पूर्ण ज्ञान पर अपना अधिकार समझता है, सबसे अधिक 'मुक्तिबोध' का ध्यान खींचता है। मार्क्सवादी विचारकों ने विभिन्न वर्गों के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए जो निष्कर्ष दिए हैं, उनका पूरा-पूरा उपयोग 'मुक्तिबोध' की रचनाओं मे हुआ है। इसके साथ ही भारतीय जीवन संदर्भ और परिस्थितियों से उत्पन्न वर्गीय विशेषताओं पर भी 'मुक्तिबोध' की गहरी पकड़ है। भारतवर्ष की परिस्थितयों में वर्ग भेद और उससे उत्पन्न वर्गीय विशेषताए कुछ अलग तरह की हैं। भारत वर्ष की परिस्थितयों में सामन्तवाद के बाद पूंजीवाद का विकास पश्चिमी देशों जैसा नहीं है। यहाँ एक साथ ही दोनों स्थितियां कहीं परस्परा सहयोग करती हुई और कहीं एक दूसरे के विरोध में दिखायी देती हैं। इसलिए वर्गचरित्र भी भिन्न हो जाते हैं। भारत का मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी एक ओर परम्परा के ज्ञान का उत्तराधिकार वहन करता है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य विचारकों के सिद्धानों की गंभीर व्याख्याएँ भी करता है। 'ब्रह्मराक्षस'

कविता मे 'ब्रह्मराक्षस' ऐसा ही ज्ञान गुरू बुद्धि-जीवी है, जो एक ओर गालियां तक शुद्ध संस्कृत मे देता है।

'ब्रह्मराक्षस' कविता 'मुक्तिबोध' द्वारा 'फ़ैण्टेसी' शिल्प मे रची गयी [illegible] रचनाओ मे से एक है। इस कविता में कवि का आत्मसंघर्ष बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है, नवीन और प्राचीन दृष्टिकोण के प्रति कवि का स्वस्थ चिन्तन विशेष रूप से मुखर हो सका है। 'ब्रह्मराक्षस' कविता का आरम्भ 'फ़ैण्टेसी' के परिवेश में हुआ है। [illegible] ऐसा ज्ञान गुरु बुद्धिजीवी है कि उसे लगता है कि सूर्य चन्द्रमा आकाश ने भी उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली है।

> 'और तब दुगने भयानक ओज से
> पहचानवाला मन
> सुमेरी - बैबिलोनी जन-कथाओं से
> मधुर वैदिक ऋचाओं तक
> व तब से आज तक के सूत्र
> छन्दस, मंत्र, थियोरम
> सब प्रमेयों तक
> कि मार्क्स एंजेल्स, रसेल, टॉएन्बी
> कि हीडेग्गर व स्पेंग्लर, सार्त्र, गांधी भी
> सभी के सिद्ध-अन्तों का
> नया व्याख्यान करता वह
> नहाता 'ब्रह्मराक्षस', श्याम
> प्राक्तन बावड़ी की
> उन घनी गहराइयों में शून्य'।[69]

इस विशेष कोटि के भारतीय मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी को लेकर, 'मुक्तिबोध' ने जो 'फ़ैण्टेसी' रची है, वह वातावरण-निर्माण, बिंबों और प्रतीकों के सहारे आगे बढ़ती हुई पूरी होकर, अपनी अर्थ-छवियों से पाठक को संपन्न कर देती है। सघन वातावरण की सृष्टि तटस्थ

द्रष्टा की ओर से वर्णन के रूप मे आरम्भ होती है। इस कविता में 'मुक्तिबोध' की अन्य लम्बी कविताओं की तरह बीच-बीच मे 'फ़ैण्टेसी' का क्रम टूटता बनता नहीं है। पूरी 'फ़ैण्टेसी' दो खण्डो मे सपन्न होती है। पहला खण्ड जिस [illegible] निर्माण से प्रारम्भ होता है, उसका द्रष्टा कविता का वाचक है, जो पांच छोटे-छोटे खण्डो मे 'फ़ैण्टेसी' के आरम्भ के [illegible] का वर्णन करता है। पहला खण्ड इस प्रकार आरम्भ होता है-

'शहर के उस ओर खण्डहर की तरफ
परित्यक्त सून बावड़ी
के भीतर
ठंडे अँधेरे मे
बसीं गहराईयां जल की..........
सीढ़िया डूबी अनेको
उस पुराने घिरे पानी में...........
समझ मे आ न सकता हो
कि जैसे बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो'।[70]

शहर के बाहर खण्डहर में स्थित 'परिव्यक्त सूनी बाबड़ी' इस बुद्धिजीवी '[illegible]' के अपने व्यक्तित्ववादी समाज निरपेक्ष अहंवृत्ति का प्रतीक है, 'जिसे कुबेर नाथ राय' ने 'इतिहास मन' माना है।[71] जल की अथाह गहराइयों में सीढ़ियां डूबी हुई हैं। जिसके लिए कवि अप्रस्तुत-विधान करता है। जैसे कोई बहुत गहरी बात हो और उसका आधार समझ में न आये।

इस बाबड़ी को घेरकर कुछ वृक्षों की शाखाएं परस्पर उलझी हुई फैली हैं-

'बावड़ी को घेर
डालें खूब उलझी हैं,
खड़े हैं मौन औटुंबर
व शाखों पर
लटकते घुग्घुओं के घोंसले

परित्यक्त, भूरे, गोल'।[72]

वातावरण की सघनता इन परस्पर उलझी हुई शाखाओं से और बढ़ जाती है, 'अशोक चक्रधर' इसकी सटीक व्याख्या करते हैं- "बावड़ी का इलाका (उसका प्रभावी क्षेत्र) भी उसके उलझाओ का शिकार है।- डालें खूब उलझी हुई हैं। कुछ लोग [illegible] स्वयं बौद्धिक के तर्कों मतो को सुनकर कन्फ्यूज हो गये हैं- 'औदुम्बर' की तरह मौन खड़े हैं, कुछ घुग्घु (समाज विरोधी लोग अक्सरवादी लोग) भी उसके पास आ बसे हैं, वे शायद उसका अपने हित में उपयोग करना चाहते हैं। श्वेत पुष्प तारों वाली टगर में महकते लाल फूलों की ओर के रूप मे कुछ संभ्रांत निरीह भी उसके प्रभावी जगत में आ गये हैं।"[73]

इसी स्थल पर कविता का वाचक अपनी उपस्थिति का आभास देता है, यह कहकर कि -

'विगत शत पुण्य का आभास
जंगली हरी कच्ची गंध में बसकर
हवा में तैर
बनता है गहन संदेह
अनजानी किसी बीती हुई उस श्रेष्ठता का जो
कि दिल में एक खटके-सी लगी रहती है।'[74]

वर्तमान चेतन स्तर से प्रत्यक्ष रूप से अचेतन, अँधेरे में अनेक अस्पष्ट परंतु गूढ़ उलझे हुए मौन पड़े है। वहाँ शाखाओ पर लटके विचार वर्तमान से असंबद्ध हैं। उसमे बसी जंगल की हरी कच्ची गंध अतीत की पवित्र श्रेष्ठता (जीवन-मूल्य) का आभास देती है।[75] एक ओर इस बावड़ी की मुंडेरों पर मनोहारी हरी टगर श्वेत पुष्पों से आच्छादित हो कुहनी टेके (बाल सुलभ चपलता) झांकती है, तो दूसरी ओर लाल फूलो का सौर (लालसा और सम्मोहन) बाबड़ी के खुले मुंह (खतरे की ओर) बार-बार संकेत करता है।[76] वर्तमानकर्ता को जिस गहन संदेह ने घेरा है, वह उसके अपने ही वर्ग के व्यक्ति केन्द्रित बुद्धिजीवी के विगत गौरव की किसी अन्य रूप मे उपस्थिति का संदेह है। लाल फूलों वाली कन्हेर के साथ कर्त्ता का आत्मीय संबंध (मेरी वह कन्हेर) प्रकट होकर वातावरण को और सघन कर जाता है।

इसके बाद 'फ़ैण्टेसी' में 'ब्रह्मराक्षस' का प्रवेश होता है, जो अत्यन्त बेचैनी से किसी

पाप-छाया को धोने के लिए बावड़ी में नहा रहा है-

'बावड़ी की उन घनी गहराइयों में शून्य
'ब्रह्मराक्षस' एक पैठा है,
व भीतर से उमड़ती गूंज की भी गूंज
बड़बड़ाहट - शब्द पागल से
गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने के लिए, दिन-रात
स्वच्छ करने-
'ब्रह्मराक्षस'
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे, बराबर
बांह-छाती-मुंह-छपाछप
खूब करते साफ
फिर भी मैल
फिर भी मैल'[77]

यह 'फ़ैण्टेसी' का वह दृष्य है, जहाँ वाचक का संदेह स्पष्ट प्रतीति में बदलता है, 'ब्रह्मराक्षस' जो कुछ बड़बड़ाता है, उसकी उमड़ती गूंज की भी गूंज को सुनने के प्रयत्न में वाचक निकटतर पहुँचकर उसके मस्तक की लकीरों को देख पाता है और उसकी [illegible] को साफ-साफ सुनकर समझ पाता है कि वह सब क्या है। यहाँ कवि ने प्राचीन [illegible] जीवन-मूल्यों के शोधक के रूप में 'ब्रह्मराक्षस' को आदिम 'फ़ैण्टेसीय' पात्र के रूप में सृजित किया है। अचेतन से मिलने वाले संकेत प्रायः प्रतीकात्मक और अस्पष्ट होते हैं, इसलिए 'ब्रह्मराक्षस' के शब्द अस्पष्ट रूप से गुंजायमान हो रहे हैं। वह प्राचीन [illegible] जीवन मूल्यों में से जड़ता और निषेधात्मक तत्त्वों के मैल को [illegible] और [illegible] [illegible] करने के लिए

कर्मरत है, फिर भी विकृत परम्पराओं की मैल अभी बनी हुई है, वह अपने प्रयत्न की अपर्याप्तता से क्रुद्ध है। उसका आक्रोश अनोखे, मंत्र स्तोत्र और शुद्ध [illegible] (उस व्यवस्था के प्रतिरोध) के रूप में व्यक्त हो रहा है। उसके मस्तक पर आलोचनात्मक चिंतन की रेखा है। प्राचीन दुराग्रह रूपी स्याह-संवेदना के परिष्कार की प्रक्रिया अखण्ड स्नान के रूप में लगातार चल रही है।[78] यहाँ 'फ़ैण्टेसी' का पहला [illegible] दृश्य पूर्ण होता है। वर्णनकर्ता 'ब्रह्मराक्षस' की वास्तविकता को पहचानता है, क्योंकि दोनों ही मध्यम वर्ग के बुद्धिजीवी हैं, अंतर यह है कि वर्णनकर्त्ता चेतस है और उस महान बुद्धिजीवी की [illegible] को समझ पाता है, जो महान ज्ञानी तो है, परंतु चेतस नहीं है, इसीलिए 'फ़ैण्टेसी' के पहले खण्ड का अंतिम दृश्य 'ब्रह्मराक्षस' के पिछले अनुभवों का स्मरण कराकर उसकी श्रेष्ठता को मूर्त करता है।

अगले दृश्य में बावड़ी की भीतरी दीवार से सूर्य और चाँद की किरणें टकराती हैं और वह उनका अग्निवाहन करात है। यह इस तथ्य क़ो संकेतित करता है कि कभी-कभी अचेतन के तथ्यों तक चेतन मन की पहुंच होती है, अर्थात् लोगों ने उसके महत्त्व को स्वीकार कर लिया है।[79] तब दुगने ओज से आपूरित उसका पहचान वाला मन (चेतना) प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के दर्शन की नयी व्याख्या करता है, परंतु उसका शोधन ''श्याम प्राक्तन बाबडी की घनी गहराई में' निष्फल हो जाता है। क्योंकि गहराई में उठती गूंज के उदभ्रान्त शब्दो के आवर्तन से उत्पन्न प्रतिध्वनियां अपनी ही ध्वनियों से टकराकर विकृत हो जाती हैं।[80] अस्पष्ट प्रतीको के रूप में व्याख्यायित निष्कर्ष दुरूह हो जाते हैं। चेतन स्तर पर वे अस्पष्ट संकेत समझ से परे होते हैं। यह अचेतन की त्रासदी है।

वाचक कहता है कि यह पागल प्रतीकों में कहीं जाती हुई ट्रेजडी की कथा है, जो उस बाबड़ी में अड़कर रह गयी है। व्यक्तिगत अहं से घिरा हुआ ज्ञान-गुरु बुद्धिजीवी अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष अकेले ही कर रहा है और इसलिए उसकी सारी संघर्ष कथा उसके अहं वृत्त में अर्थात बाबड़ी में अड़ गयी है। इस संघर्ष कथा का द्रष्टा वाचक जहाँ अपने महत्त्व को जानता है, वही उसकी सीमा को भी देख पा रहा है क्योंकि वह स्वयं उतना बड़ा ज्ञानी न सही पर वर्ग की चेतना से संपन्न तो है।

'ब्रह्मराक्षस' की 'फ़ैण्टेसी' और सघन होकर कविता के दूसरे खण्ड में उभरती है,

जिसमें वाचक अत्यन्त आतमियता के साथ उस ज्ञान गुरु [illegible] के अपने ही अवचेतन की गहराइयों में उतरकर अतिरेकवादी पूर्णता की खोज में किए गये संघर्ष को मूर्त करता है उस बुद्धिजीवी के महान व्यक्तित्व की संघर्ष गाथा, अच्छे और बुरे के बीच की संघर्ष गाथा नहीं है बल्कि इससे भी अच्छे और उससे भी अधिक अच्छे के बीच की संघर्ष गाथा है, जिसमें उसे थोडी सफलता मिलती है। तो बहुत बड़ी असफलता।

'फ़ैण्टेसी' के कारण ही यह संभव हो पा रहा है कि वाचक '[illegible]' के मन के भीतर की गहराइयो मे चलने वाले इस संघर्ष को देख पाता है। वाचक जानता है कि उस ज्ञान गुरु बुद्धिजीवी द्वारा आकांक्षित अतिरेकवादी पूर्णता ([illegible] परफेक्टनेस) वह असंभावना है, जिसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसी पूर्णता केवल [illegible] का एक भ्रम है। इसी कारण उसकी असफलता पर पूर्ण सहानूभूति रखता है। अंधेरी सीढ़ियों पर बार-बार चढ़ना, उतरना और लुढ़कना जारी है यह उसके सचेतन संघर्ष की प्रक्रिया का द्योतक है। सफलता और असफलताओं के बीच झूलता हुआ वह हतोत्साहित नही होता, उसका संघर्ष अनेक [illegible] के बावजूद जारी है। इसीलिए वह अपनी [illegible] की धूल फांककर भी संघर्षरत है।

उसका यह आत्म संघर्ष तुलनात्मक दृष्टि से पहले से बेहतर आदर्श की प्राप्ति के लिए है।.........उसकी असफलता भी कवि की नजरों मे भव्य हैं।

'फ़ैण्टेसी' में फिर वर्णन का प्रवेश होता है और वाचक उस ज्ञान गुरू [illegible] के संघर्ष को चरमोत्कर्ष पर जाता हुआ देखता है। मानव जीवन के प्रसार में फैले इस जटिल जीवन-गणित को हल करने के अथक प्रयास से जूझता वह, गन्तव्य को प्राप्त किये बिना ही, अपने आप से ही लड़ता हुआ वह शोधक मार दिया जाता है। 'ब्रह्मराक्षस' की यह मृत्यु व्यंजना के स्तर पर इस बात की सूचक है कि मुक्ति के लिए उस ज्ञान गुरु का संघर्ष समाप्त हो गया है, वह अपने से ही हो रहे संघर्ष में पराजित हो गया। वह आत्म-चेतस और विश्व-चेतस तो था, किंतु वर्ग-चेतस न होने के कारण अकेले ही मुक्ति के लिए प्रयत्न करता रहा। जन संघर्ष का मार्ग उसकी समझ में नहीं आया और वह पराजित हुआ। जैसे संसार में होता है कि मरने के बाद किसी आदमी के गुणों की व्याख्या की जाती है, ठीक उसी प्रकार वाचक 'फ़ैण्टेसी' के बाहर निकलकर टिप्पणी करता है कि-

'व्यक्तित्व वह कोमल स्फटिक प्रसाद-सा'।[81] कोमल स्फटिक प्रसाद की उपमा अपने ही रूपक के सहारे वाचक फिर 'फ़ैण्टेसी' मे प्रवेश करता है-

'प्रसाद मे जीना
व जीने की अकेली सीढ़िया
चढ़ना बहुत मुश्किल रहा
वे भाव-संगत तर्क संगत
कार्य सामंजस्य योजित
समीकरणों के गणित की सीढ़ियाँ
हम छोड़ दे उसके लिए'।[82]

स्पष्ट है कि वह भाव-संगत और तर्क-संगत कार्य सामंजस्य के समीकरण को हल करने मे प्रयत्नशील था। इसलिए वह विविध पंडितो और चिन्तको के पास ज्ञान प्राप्त करने के लिए भटका।[83] इसके बाद 'फ़ैण्टेसी' में इतिहास का प्रवेश होता है और कवि एक ही पंक्ति मे सामन्तवाद से पूंजीवाद तक की यात्रा को समेट लेता है।

इसी बीच पूंजीवादी युग का अभ्युदय हुआ। धन की महत्ता स्थापित हुई, जिससे ज्ञानी का अन्तः करण भी धन से अभिभूत हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके अन्तः करण में सत्य के स्थान पर सत्य की झाई ही झिलमिलाती रही।

उस ज्ञान गुरू की इस ट्रेजडी को देखने के बाद भी कविता का वाचक उसके ईमानदार निश्छल व्यक्तित्व की प्रशंसा करता है और स्वीकार करता है कि वह जितनी ईमानदारी से आत्म-चेतस था, उतनी ही ईमानदारी और निश्छलता के साथ विश्व-चेतस भी था। वर्ग-चेतस न होने का जो कुपरिणाम हुआ उसके कारण को तो वह ठीक-ठीक नही जानता था, लेकिन उसके विवाद कुल मन में महत्ता थी, इसमें कोई संदेह नहीं।

'आत्म चेतस किन्तु इस
व्यक्तित्व में भी प्राणमय अनबन...........
विश्व-चेतस बे-बनाव।।
महत्ता के चरण में था

विषादकुल मन।

मेरा उसी से उन दिन होता मिलन यदि

तो व्यथा उसकी स्वयं जीकर

बताता मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य

उसकी महत्ता'।[84]

पूँजीवादी हाथो से पराजित उस बुद्धिजीवी की ट्रेजडी को वाचक 'फ़ैण्टेसी' से बाहर निकल कर देखता है, तो पाता है कि यह ट्रेजजी केवल बाहरी दबाव के कारण घटित नहीं हुई है, बल्कि इस मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आंतरिक संघर्ष भी उतना ही जिम्मेदार है

'पिस गया वह भीतरी

औ-बाहरी दो कठिन पाटों बीच

ऐसी ट्रैजडी है नीच'।[85]

एक वर्ग-चेतस मध्य-वर्गीय, बुद्धिजीवी, दूसरे [illegible] [illegible] और विश्व चेतस किन्तु निःसंग और निर्वासित बुद्धिजीवी की मृत्यु पर पश्चाताप करता है और अपनी निश्छल कामना व्यक्त करता है कि-

''मैं 'ब्रह्मराक्षस' का सजल-उर शिष्य

होना चाहता

जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य

उसकी वेदना का स्रोत

संगत, पूर्ण निष्कर्षों तलक

पहुंच सकूं''।[86]

कवि उसके संघर्षशील और लक्ष्य के प्रति दुर्दान्त आस्था रखने वाले भव्य व्यक्तित्व से अभिभूत है, इसीलिए उसका 'सजल-उर शिष्य' होना चाहता है। उसके अधूरे छोंड़े गये कार्य को पूरा करना चाहता है, वह एक ईमानदार दायित्व पूर्ण बुद्धिजीवी था, इसलिए उसका असफल हो जाना स्वाभाविक था।

'मुक्तिबोध' ने इसी 'फ़ैण्टेसी' को और अधिक सुगठित रूप में अपनी एक कहानी

''ब्रह्मराक्षस' का शिष्य'' में गढ़ा है, उस कहानी में निर्मित 'फ़ैण्टेसी' को देखने पर ही 'मुक्तिबोध' की इस 'फ़ैण्टेसी' का पूरा स्वरूप उद्घाटित हो सका है किन्तु [illegible] के कारण तुलना ही प्रासंगिक है। कहानी की 'फ़ैण्टेसी' में गुरू के अनुभव को प्राप्त करके शिष्य इस ज्ञान यज्ञ की श्रृंखला में बंध जाता है, जबकि कविता की 'फ़ैण्टेसी' में महापंडित के पांडित्य को प्राप्त न कर पाने की तड़प शिष्य में बची रह जाती है। इस 'फ़ैण्टेसी' को केवल मार्क्सवादी जीवन दृष्टि तक सीमित करने पर इसके साथ पूरा न्याय नही हो पाता। 'मुक्तिबोध' की कविताएँ इस तरह अनेकायामी व्यंजनाओं से वंचित कर दी जाती है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार मुक्तिबोध के कविताओं की व्याख्या करना अनुचित या अप्रासंगिक है, ऐसा नही है। मुक्तिबोध की जीवन दृष्टि सचेतन रूप से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार ही विकसीत हुई है। इसलिए इसके आधार पर उनकी रचनाओ की व्याख्या का एक औचित्य स्पष्ट है, हमारा आग्रह सिर्फ इस बात पर है कि 'मुक्तिबोध' 'फैण्टेसी' में व्यक्तित्व का प्रेक्षपण अनिवार्य मानते हैं और उसके उपकरणों में चेतन मन के साथ अवचेतन मन की भी भूमिका को स्वीकार करते हैं इसलिए 'मुक्तिबोध' 'ब्रह्मराक्षस' जैसा प्रतीक 'फ़ैण्टेसी' के लिए चुनते हैं। इस प्रकार के प्रतीकों की पूरी अर्थछाया तभी विकसित की जा सकती है जब हम इस बात का ध्यान रखें कि परम्परागत भारतीय मिथक और प्रतीक 'मुक्तिबोध' के चेतन अवचेतन मन में किस तरह सक्रिय हैं, मुक्तिबोध यदि इनसे पूरी तरह मुक्त होते, तो उनका काम अपनी विश्व दृष्टि के अनुकूल केवल मार्क्सवादी शब्दावली से चल जाता।

''ब्रह्मराक्षस'' कवि की यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रेरित कविता है, जिसमें सुंदर 'फ़ैण्टेसी' विधान उपलब्ध है। इस कविता में कवि कल्पना के माध्यम से एक अयथार्थ आदिम प्रतीक जनित बाबड़ी का निर्माण करता है जो कि परिव्यक्ता है, सूनी है, उसके चारों ओर शाखाएं है, लाल फूल हैं, टगर की बेला है, घुग्घुओं के घोंसले, हैं घटाटोप अन्धकार है। यह चित्रण भयावह कथा के सम्प्रेषण की प्रतीकात्मक भूमिका है। सूनी-बाबड़ी के भीतर एक 'ब्रह्मराक्षस' बैठा है जो कल्पना जनित है। 'ब्रह्मराक्षस' एक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है, जो आत्ममुक्ति के लिए छटपटा रहा है। जीवन भर ज्ञानोर्जन करता है, किंतु वह ज्ञान कूप से निकल नहीं पाता। अपने ज्ञान को व्यवहार में परिणत नहीं कर पाता। ज्ञान की पूर्णता के अहम से संतृप्त

'ब्रह्मराक्षस' वहाँ बेबीलोन और वैदिक कथाओं, छन्दमंत्र एथेन्स एवं प्रमेय तथा मार्क्स ऐंजिल्स, रसेल, टाएंबी, हिडेग्गर सात्र, गांधी सभी के [illegible] को व्याख्या करने में समर्थ है। वह बावड़ी मे अपना गणित करते-करते मर जाता है।

इस 'फैण्टेसी' मे एक ऐसे पात्र का निर्माण किया गया है जो मानव जीवन की सामान्य स्थितियो मे नहीं पाया जाता है और जहाँ पशु और मानव जीवन का अन्तर मिट गया है, भौतिक शास्त्र की सीमाएँ समाप्त हो गयी है। यह चित्रण बाह्य रूप मे अमूर्त एवं असंगत भले ही प्रतीत हो किंतु एक कटु सत्य को लिए हुए है और वह सत्य है।

'पिस गया वह भीतरी औ' बाहरी दो कठिन
पाटों के बीच, ऐसी ट्रेजडी हैं नीच'।[87]

इस 'फ़ैण्टेसी' में असाधारण भाषा, प्रतीक, बिंब एवं अतिरंजित कल्पना ही अद्भुत, सत्य को प्रस्तुत करने में समर्थ है। ऊपर कहा जा चुका है कि 'फ़ैण्टेसी' अधिकांशतः ट्रेजडी होती है, क्योकि उसमे जिस वैचारिक समस्या को प्रस्तुत किया जाता है, वह मनुष्य के अधिकार से परे होती है। किंतु 'मुक्तिबोध' की प्रस्तुत 'फ़ैण्टेसी' 'ब्रह्मराक्षस', ट्रेजडी होते हुए भी दुर्भाग्य का चमत्कार नही, प्रत्युत अभाव ग्रस्त जीवन संघर्ष का दुःखांत है।

प्रस्तुत 'फैण्टेसी' का कर्त्ता जो स्वयं कवि है, ब्रह्मराक्षस की तरह ज्ञान दम्भी नहीं है। वह अपनी संवेदना पर कालिख पोतना नहीं चाहता प्रत्युत वह उसके श्रम एवं ज्ञान निष्कर्षों को मानवीय संवेदना के सहारे व्यवहार की परिणति तक ले जाना चाहता है।

अँधेरे में

'अँधेरे में', 'मुक्तिबोध' की प्रतिनिधि कविता है। 'फ़ैण्टेसी' और वक्तव्य के अन्तर्ग्रथन से यह एक ऐसी कविता बन गयी है, जो आपसी संवेदना में जटिल और बहुआयामी है। कविता एक व्यक्ति के अंतर्द्वन्द्व से प्रारम्भ होती है, परन्तु प्रबल 'फ़ैण्टेसियों' के द्वारा बहुआयामी बनती जाती है। एक ओर काव्यनायक का अन्तर्गुहा से निकलकर आत्मविस्तार होता जाता है, दूसरी ओर परिवेश की असंगतता तथा सत्ता का आततायी स्वरूप भी प्रकट होता चलता है।

कविता का प्रारम्भ फैण्टसी से होता है। जिन्दगी के अँधेरे कमरे में 'कोई' लगातार चक्कर लगा रहा है, पैरो की आवाज आ रही है, किन्तु दिखाई नहीं देता। पाठक की जिज्ञासा

को बढ़ाकर आगे उस 'कोई' की अस्पष्ट सी आकृति प्रकट होती है।[८८]

दूसरे बन्द मे पहाड़ों के उस पार तालाब में कोई श्वेत आकृति कुहरीला बड़ा चेहरा मुस्काता है, लेकिन [illegible] पहचान नहीं पाता। एक मोड़ आता है और वृक्षों मे छिपी हुई खोह का गुहाद्वार खुलता है और रक्त लोक-स्नान-पुरुष दिखने लगता है। काव्य नायक उसे अब तक न पायी गयी अपनी अभिव्यक्ति कहता है।[८९] यह 'रक्त लोक स्नान-पुरुष' वाचक का काव्यनायक के व्यक्तित्व का ही एक अंश है। उसकी क्रान्ति चेतना अर्थात् विद्रोही विचारों और अनुभवों का मानवीकृत रूप, वाचक ने उसे मेरे परिपूर्ण का अविर्भाव और आत्मा की प्रतिमा कहा है। काव्यनायक के व्यक्तित्व का यह अंग पूँजीवादी व्यवस्था के [illegible] परिवेश में उससे अलग हो गया है। क्रन्तिकारी विचारों को त्यागने और उसकी उपेक्षा करने का कारण परिस्थिति है। काव्यनायक के इस प्रश्न से इसका संकेत मिलता है-

'किन्तु वह फटे हुए वस्त्र क्यो पहने है?
उसका स्वर्ण-वर्ण मुख मैला क्यों?
वक्ष पर इतना बड़ा घाव कैसे हो गया?
उसने कारावास-दुःख झेला क्यों?
उसकी इतनी भयानक स्थिति क्यों है?
रोटी उसे कौन पहुँचाता है?
कौन पानी देता है?
फिर भी उसके मुख पर स्मित क्यों है?
प्रचण्ड शक्तिमान क्यों दिखाई देता है?''[९०]

वर्तमान परिवेश में क्रान्तिकारी विचारों को बनाए रखना, उन्हें [illegible] तथा उनके अनुसार कार्य करना सरल नहीं है। क्रन्तिधर्मी व्यक्तियों की स्थिति उसी [illegible] व्यक्ति जैसी होती है, जिसके कपड़े फटे हुए हैं, मुख मैला है, वक्ष पर घाव है तथा जिसने जेल यात्राएँ की है, फिर भी उसके चेहरे पर स्मित है। इसकी ओर संकेत के बाद कविता को [illegible] देने के लिए जंगल से आती हुई हवा द्वारा उस मशाल को बुझा दिया जाता है, जिसके प्रकाश में वह पुरुष दिखाई दे रहा था।

दूसरे खण्ड मे पहले से आगे की स्थिति है। काव्यनायक को अँधेरे मे ध्वनियाँ सुनाई देने लगती है। उसे दरवाजे पर सांकल बजने का अहसास होता है। काव्यनायक जानता है कि तिलस्मी खोह से मिला व्यक्ति ही यह सांकल बजा रहा है। उसने अपने क्रान्तिकारी विचारों और भावनाओं को गुहा-वास दे दिया है। वे ही उसे परेशान करते हैं, वह उन्हें अपनाने की कामना भी रखता है।

'उसे देश प्यार उमड़ता है अनायास!
लगता है-दरवाजा खोल कर बाँहो मे कस लूं,
हृदय में रख लूँ
घुल जाऊँ, मिल जाऊँ लिपट कर उसमें'।[91]

'मुक्तिबोध' ने अपने साहित्यिक लेखों में इस बात की चर्चा की है कि सृजन या अभिव्यक्ति की अन्तः प्रेरणा (योजना) सर्जक के मन में कभी भी उत्पन्न हो सकती है। उसका ओजस्वी व्यक्तित्व नायक को पूर्णतया अभिभूत कर देता है, वह उसे बिल्कुल अपने मे समाहित कर लेना चाहता है। परन्तु अपनी कमजोरियों और आसक्तियो के कारण वह ऐसा करने मे अपने को शक्तिहीन पाता है और उससे कतराता डरता है। मुक्तिबोध उसके कारण पर भी प्रकाश डाला है।

'वह बिठा देता है तुंग शिखर के
खतरनाक, खुरदुरे कगार-तट पर,
शोचनीय स्थिति ये ही छोड़ देता मुझको।
कहता है पार करो पर्वत-सन्धि के गह्वर,
रस्सी के पुल पर चलकर
दूर उस शिखर-कगार पर स्वयं ही पहुँचो।
अरे भाई, मुझे नहीं चाहिए शिखरों की यात्रा,
मुझे डर लगता है ऊँचाइयों से,
बजने दो साँकल'।[92]

इस कामना के बाद भी वह ऐसा नहीं कर पाता और अँधेरे खड्डे में क्षत-विक्षत पड़ा

रहता है। आत्मालोचन तो करता है, लेकिन क्रान्तिकारी विचारों को [illegible] नहीं कर पाता। वर्गीय-भीरुता को वह अभी त्याग नहीं पाता है, दूसरी ओर ''क्रान्ति चेतना'' को भी छोडने को तैयार नही है। अतः वह कमजोर घुटनो को बार-बार मसलकर दरवाजा खोलता है और बाहर झाँकता है। काव्यनायक की यह कोशिश [illegible] भीरुता और जड़ता को छोड़ने का पहला प्रयास है। उसे बाहर कोई दिखाई नही देता। उस रहस्यमय व्यक्ति के चले जाने से दो कार्यों की सभावना बन गयी है। एक तो कविता का विस्तार होगा दूसरा काव्यनायक अन्य किसी उपाय से उसकी खोज करेगा। रात का पक्षी उसके चले जाने की सूचना देता है और साथ मे काव्यनायक को उसकी खोज करने को प्रेरित करता है।

'वह निकल गया है गाँव में शहर में!
उसको तू खोज अब
उसका तू शोध कर
वह तेरी पूर्णतम परम अभिव्यक्ति,
उसका तू शिष्य है (यद्यपि पलातक-----)
वह तेरी गुरु है, ------
गुरु है-------------')[93]

इस खण्ड मे काव्य नायक के अर्न्तद्वन्द्व को 'फ़ैण्टेसी' के द्वारा मूर्त रूप दिया गया है। इस अँधेरे खड्डे में पड़े रहना, इसकी अन्तर्मुखता और आत्म ग्रस्तता का संकेत देता है। आत्म-चेतस होते हुए भी दायित्व को न उठाना परिवेश की विषमता के साथ उसकी भीरुता को भी प्रकट करता है।

तीसरे खण्ड में काव्यनायक समझ नहीं पा रहा है कि वह जाग्रत अवस्था में है या स्वप्न चल रहा है। यहाँ स्वप्न 'फ़ैण्टेसी' का प्रयोग है। यह अपने आस-पास की [illegible] को स्पष्ट अनुभूव नहीं कर पा रहा है।

काव्यनायक अपने कमरे में लेटा हुआ है। उसे किसी असम्भावित घटना का सन्देह होने लगता है। तारे उसे 'चिन्ता के गणित अंक' लगते हैं। उनके बीच उसे तालस्ताय भी दिखते है। उनका दिखना सम्भावित घटना की गम्भीरता को बढ़ाता है। घटना प्रोशेसन के रूप में सामने

आती है। काव्यनायक उस जुलूस में चलने वालों को देखकर बेचैनी अनुभव करता है

'भई वाह!
उनमें कई प्रकाण्ड आलोचक,
विचारक, जगमगाते कविगण
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमा जी उस्ताद
बनता है बलबन
हाय, हाय'।।[94]

वह इन अलग-अलग कार्य-क्षेत्र के व्यक्तियों को एक साथ देखकर समझ जाता है कि यह जुलूस उन षडयन्त्रकारियों का है जो सफेद पोश हैं, लेकिन उनकी पाशवी वृत्तियां पीछे से अपना शिकार करती हैं। निम्नलिखित पक्तियाँ इस जुलूस के उद्देश्य को समझाने में सहायता पहुँचाती हैं।

'भीतर का राक्षसी स्वार्थ अब
साफ उभर आया है,
छिपे हुए उद्देश्य यहाँ निखर आये हैं,
यह शोभा-यात्रा है किसी मृत्यु-दल की'।[95]

जुलूस में सम्मिलित व्यक्ति यद्यपि अलग-अलग क्षेत्रों के हैं और मानवता के रक्षक (डोमा जी को छोड़कर) माने जाते हैं, लेकिन निजी स्वार्थ पूर्नि के कार्य में वे डोमा जी के समकक्ष हैं। काव्यनायक उन्हें मूलरूप में देख लेता है। कविता को नया मोड़ देने के लिए काव्यनायक को जुलूस के व्यक्तियों द्वारा देख लिया जाता है। यहाँ कविता में नाटकीयता का प्रयोग है। निम्नलिखित पंक्तियाँ जहाँ जुलूस में शामिल व्यक्तियों की प्रवृत्ति को स्पष्ट करती हैं, वही इस घटना के बाद कविता को नया आयाम मिलता है-

'मारो गोली, दागो स्साले को एकदम
दुनिया की नजरों से हटकर

छुपे तरीके से हम जा रहे थे

आधी रात अँधेरे में उसने

देख लिया हमको

व जान गया वह सब

मार डालो, उसको खत्म करो एकदम!!

रास्ते पर भाग-दौड़ धका-पेल!!

गैलरी से भागा मैं पसीने से सराबोर'!![illegible]

यहाँ स्वप्न ''फ़ैण्टेसी' समाप्त होती है। काव्यनायक उस स्वप्न का चेतन अवस्था में विश्लेषण करता है।

कविता 'फ़ैण्टेसी' से निकलकर वक्तव्य (एकलाप) पर आ जाती है। काव्यनायक इस भयावह स्वप्न के बारे में सोचता है। यहाँ तक आते-आते कविता का वातावरण तनावयुक्त हो जाता है।

चौथे खण्ड मे उद्विग्न काव्यनायक कमरे में लेटा है। उसका उदास मटमैला मनरूपी वाल्मीकि विचलित है। उक्त दृश्य के कारण उसमें बेचैनी के साथ-साथ विक्षोभ, विद्रोह की भावना प्रबल हो गई है। शहतीरों का हृदय को दबोचना और आँगन के नल में जल के खखारने के द्वारा उसके विक्षोभ और विद्रोही भावना के बलवती होने का संकेत मिलता है। दूसरे बन्द में 'फ़ैण्टेसी' सक्रिय हो जाती है। जिसकी पृष्ठभूमि पहले बन्द में बन गयी थी। काव्यनायक को सेना द्वारा सड़के घेरने का अहसास होता है। वह घबराकर भागता है। 'भागता मैं दम छोड़ घूम गया कई मोड़' वाक्य की आवृत्ति से काव्यनायक की मनःस्थिति के साथ नये-नये दृश्यों की सृष्टि करके कविता का विस्तार किया गया है। काव्यनायक बरगद के पास पहुँचकर पागल का आत्मबोधमय गान सुनाता है।

'दुःखो के दागों को तमगों-सा पहना,

अपने ही खयालों में दिन-रात रहना,

असंग बुद्धि व अकेले में सहना,

जिन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर,

लोकहित-पिता को घर से निकाल दिया,

[illegible] सी माँ को हकाल दिया

स्वार्थों के टेरियर कुत्तों को पाल लिया,

भावना के क[illegible] दिये,

हृदय के मन्तव्य-मार डाले!

बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,

तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,

जम गये, जाम हुए, फंस गये,

अपने ही कीचड़ में घँस गये!!

विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में

आदर्श खा गये''।[97]

पागल की यह आत्मभर्त्सना काव्यनायक जैसे [illegible] व्यक्तियों पर भी तीखा व्यंग्य करती है। इसी कारण वह आत्मलोचन करने पर मजबूर हो जाता है तथा [illegible] से पीड़ित हो मार्शल-ला के लिए स्वयं को दोषी मानता है।

यहाँ कवि ने पागल के गाने के माध्यम से स्वार्थी आत्मकेन्द्रित लोगों को घोर घृणा के साथ व्यंग्यात्मक स्वर में धिक्कारा है। 'फ़ैन्टैसी' यहाँ समाप्त होती है, काव्य नायक स्वगत कथन के द्वारा अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है। पागल के स्वर ने उसकी सुप्त आत्मचेतना को चैतन्य कर दिया है। उसे ऐसा लगता है, मानो उसकी निष्क्रियता के कारण ही आज संकट का वातारण उपजा है। काव्यनायक में आन्तरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर तीव्र द्वन्द्व चल रहा है।

'गलियों में अन्धकार भयावह----

मानो मेरे कारण ही लग गया

मार्शल-लाँ वह,

मानो मेरी निष्क्रिया संज्ञा ने संकट बुलाया,

मानो मेरे कारण ही दुर्घट।

हुई यह घटना।।'[98]

वाचक की यह आत्म-भर्त्सना बताती है कि उसमें मूल्यों की गूँज की [illegible] अभी मरी नहीं है. वह आत्मबद्ध स्थिति से निकलने लगता है. जिसका संकेत उसके चेहरे और मन का क्रमशः सांवले जल और टूटे हुए घरों मे धुलने से दिया गया है [illegible] पुनः प्रारम्भ होती है, वह बरगद के पास खड़ा है, उसका अन्तर [illegible] से जुड़ता है.

पाँचवे खण्ड मे आत्मचेतस काव्यनायक को लगता है कि किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा है। वह बरगद-पात है। आत्मचेतस काव्यनायक उसे जनता की ओर से प्रोत्साहन मानता है। 'फ़ैण्टेसी' फिर सक्रिय होती है। बन्दूक का धड़ाका सुनकर वह भागता हुआ एक मुँदे हुए घर की पत्थर-सीढ़ी पर बैठ जाता है, वहीं [illegible] स्थिति मे स्वप्न देखता है। भूमि की सतहो के नीचे अंधियारी प्राकृत गुहा मे कान्तिमान पत्थर चमक रहे हैं उनके ऊपर से जल-प्रपात बह रहा है। उसे वे रत्न अपने ही अनुभव वेदना विवेक निष्कर्ष लगते हैं, जिन्हे उसने गुहा-वास दे दिया था। अब वह जूझने के लिए तत्पर हो जाता है।[99] यहाँ 'भागता मैं दम छोड़। घूम गया कई मोड़' की पुनरावृत्ति काव्य की गतिमयता को बनाये रखने तथा दृश्य परिवर्तन मे सहायक सिद्ध हुई है।

छठवें खण्ड में दृश्य बदलता है 'फ़ैण्टेसी' सक्रिय है। [illegible] इस समय चौतरफा विचार-गति ऋंखला में उलझा हुआ है, विविध विचारों के एक साथ सक्रिय होने के कारण काव्य नायक की उद्विग्नता बढ़ जाती है। परिवेश की विषमता उसे बेचैन कर रही है। तभी जादू से बँधा तिलक की पाषाण मूर्ति के पास पहुँच जाता है। उसे मूर्ति हिलती और उसमें से नीले इलेक्ट्रान झरते नजर आते हैं। इससे उनके क्रोधित होने का संकेत मिलता है। तत्कालीन भयावह परिवेश में उस मानव-हित-साधक का विक्षुब्ध और क्रोधित होना [illegible] ही है। चिन्ता से उसका मस्तिष्क-कोष फूट पड़ता है।[100]

काव्यनायक भावुक हो रूआसा-सा मूर्ति के पैरों में [illegible] है। उसे अपने ऐतिहासिक दायित्व का बोध होता है। उसके मन में काट-छाँट प्रारम्भ हो जाती है। [illegible] के आत्मविस्तार को निम्नलिखित पक्तियों में व्यक्त किया गया है-

'इतने में छाती के भीतर ठक-ठक

सिर में है धड-धड़!! कट रही हड्डी।।

फिक्र जबर्दस्त!!

विवेक चलाता तीखा-सा रन्दा

चल रहा बसूला

छीले जा रहा मेरा यह निजत्व ही कोई

भयानक जिद कोई जाग उठी मेरे भी अन्दर,

कोई बड़ा भारी हठ उठ खड़ा हुआ है।[10]

बन्दूक-धड़ाका सुनकर [illegible] फिर भागता है। एक ओर अँधेरे में बैठ जाता है। वही उसे बोरा ओढ़े गाँधी जी दिखाई देते हैं। 'गाँधी जी' उसे शिशु (नव चेतना) दे जाते हैं जो नये सत्य का प्रतीक है। 'गाँधी जी' के पास सुसुप्त अवस्था मे था, यहाँ सशक्त 'फ़ैण्टेसी' की सृष्टि हुई है। आगे चलकर कविता में उस शिशु के स्थान पर सूरज मुखी के फूल आ जाते हैं। शिशु को ग्रहण करना काव्य नायक के दायित्व उठाने का संकेत देता है। आत्मविस्तार हो जाने के कारण उसने सहर्ष दायित्व स्वीकार किया है, अतः उसमें उत्साह है। सूरजमुखी फूल चेतना के सूचक है। नये सत्य को फैलाने का दायित्व अब काव्यनायक का है। आगे सूरजमुखी के फूल की जगह बन्दूक आ जाती है। बन्दूक सशक्त क्रान्ति का प्रतीक है। इस बन्दूक के आने से काव्यनायक का दायित्व सजग होना माना जा रहा है। वह एक घर के जीने से चढ़कर कमरे मे आ जाता है। वहाँ एक कलाकार को गोली मारी गयी है। एकान्त प्रिय कलाकार की हत्या सत्ता के आततायी रूप को प्रकट करती है। चूँकि वाचक-नायक का [illegible] हो गया है, उसे इस हत्या पर क्षोभ होता है, जबकि पहले वह स्वयं निःसंग रहता था। यहाँ फण्टासी के माध्यम से गाँधी की हत्या की सार्थक योजना हुई है। इस कलाकार की हत्या से एक युग, एक जीवनादर्श समाप्त हो गया है। उसके मन में तनाव बढ़ जाता है और वह नये-नये सहचर खोजने के लिए तत्पर हो जाता है। 'फ़ैण्टेसी' जारी है। नीचे उतरते ही उसे सत्ता के रक्षकों द्वारा पकड़ लिया जाताहै। और उसके मस्तिक की स्क्रीनिंग की जाती है। मस्तिष्क की स्क्रीनिंग हो जाने पर भी उसके क्रान्तिकारी विचार बदलते नहीं, क्योंकि उसकी आत्मा कुशल है। वह [illegible] कार्य तेज कर देता है। पत्र के द्वारा उसके विचार लोगों तक पहुँचते हैं।

'समस्वर, समताल
सहानुभूति की सनसनी कोमल!!
हम कहाँ नहीं हैं
सभी जगह हम।
निजता हमारी'।[102]

काव्यनायक आत्मबद्धता को त्यागकर [illegible] क्रान्तिधर्मा बन गया है, इसलिए सभी खतरे उठाने को तैयार हैः

'अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कही देखने मिलेगी हमकों
नीली झीलस की लहरीली थाहें।
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक
धसना ही होगा
झील के हिमशीत सुनील जल में'।[103]

यह अभिव्यक्ति व्यक्ति, समाज और काव्य से संबंध रखती है। व्यक्ति के संदर्भ मे यह क्रान्ति चेतना के लिए खतरे उठाना है। तो समाज में [illegible] से संबंधित और काव्य के क्षेत्र में काव्याभिव्यक्ति से संबंधित है।

सांतवे खण्ड मे जनक्रान्ति के लिए पृष्ठिभूमि तैयार हुई है सभी ओर सक्रिय कार्य पल रहा है। संगठनात्मक कार्यवाही तेज है। भागने की प्रक्रिया में काव्यनायक को 'कोई' पर्चा दे जाता है। इस पर्चे में उसी के विचार, संवेदना और अनुभव हैं। संगठनात्मक कार्य की तीव्रता इस पंक्तियों में व्यक्त हुई हैः-

'पर्चा पढ़ते हुए उड़ता हूँ हवा में,

चक्रवात-गतियों मे घूमता हूँ नभ-भर
जमीन पर एक साथ
सर्वत्र सचेत उपस्थित।
प्रत्येक स्थान पर लगा हूँ मैं काम में,
प्रत्येक चौराहे, दुराहे व राहों के मोड़ पर
सड़क पर खड़ा हूँ,
मानता हूँ, मानता हूँ, मनवाता अड़ा हूँ'।।[104]

यहाँ कवि की 'फ़ैण्टेसी' व्यापक रूप धारण करती है उसे क्रान्ति में सम्पूर्ण विश्व डूबा लगता है। स्वस्थ समाज के स्वप्न को साकार करने के लिए जन रूपी दृढ़ी भूत शिलाएँ दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। यह चेतना पूरे ब्राह्मण्ड में फैलेगी और पूँजीवाद का अन्त होगा।

'वर्तमान समाज चल नहीं सकती
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता
स्वतन्त्रव्यक्ति का वादी
छल नही सकता मुक्ति के मन को,
जन को?[105]

आठवें खण्ड मे जनक्रान्ति का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'एकाएक हृदय धड़ककर रुक गया, क्या हुआ!!
नगर में भयानक धुँआ उठ रहा है,
कही आग लग गई कहीं गोली चल गई
सड़को पर मरा हुआ, फैला है सुनसान,
हवाओ में अदृश्य ज्वाला की गरमी
गरमी का आवेग।
साथ-साथ घूमते हैं, साथ-साथ रहते हैं,
साथ-साथ सोते हैं, खाते हैं पीते हैं,
जन-जन उद्देश्य'।।[106]

जन-जागृति और जन-क्रान्ति को देखकर अभिजात्य वर्ग के बुद्धिजीवी आश्चर्य चकित है। रक्त पायी वर्ग से 'नाभिनाल बद्ध' होने के कारण वह इसे मन्य नहीं मानने थे। जन-क्रान्ति होने के कारण उनके चेहरे पर कालिमा पुत गयी है।

"बौद्धिक वर्ग है क्रीत दास
किराये के विचारो का उद्भास
बड़े-बड़े चेहरों पर स्याहियाँ पुत गई,
नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर मे छिप गई
कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी'।।[107]

जनक्रान्ति मे संलग्न जनता की मनः स्थितियों को यहाँ मुक्तिबोध ने विभिन्न ध्वनियो और दृश्य बिंबो के द्वारा मूर्तित किया है:-

"राह के पत्थर-ढ़ोको के अन्दर
पहाड़ों के झरने
तड़पने लग गये
मिट्टी के लोदें के भीतर
भक्ति की अग्नि का उद्रेक
भड़कने लग गया।
XX XX XX
दादा का सोंटा भी करता है दाँव-पेंच,
गगन में नाच रही कक्का की लाठी।
यहाँ तक कि बच्चे की पेमें भी उड़ती,
XX XX XX
एक-एक वस्तु या एक-एक प्राणाग्नि-बम है
ये परमास्त्र हैं, प्रक्षेपास्त्र हैं, यम हैं
शून्याकास में से होते हुए वे

अरे,-अरि पर ही टूट पड़े अनिवार'।[108]

'पत्थर-ढ़ोकों' के अन्दर झरने के तड़पने का कल्पना बिब, क्रान्ति मे सलग्न मनुष्य की मन. स्थिति को स्पष्ट करने में सक्षम है। इसी प्रकार 'मिट्टी के लोंदे' मे 'भक्ति की अग्नि' का भड़काना 'धूल कड़ो' में 'अनहृद नाद का कम्पन', 'छनो मे गाटर का कूदना' आदि बिब तथा 'दादा का सोटा', 'कक्का की लाठी', 'बच्चे की पेमें', क्रान्ति में जनता की सक्रियता के परिचायक हैं। इस परिवेश में कहीं आत्मा के चक्के पर संकल्प शक्ति का टायर चढ़ाया जा रहा है-

'आत्मा के चक्के पर चढ़ाया जा रहा है
सकंल्प-शक्ति के लोहे का मजबूत ज्वलन्त टायर'।।[109]

जनक्रांति के स्वप्न को दूसरे बन्द मे तोड़ दिया गया है। काव्यनायक इस भविष्य चित्र को प्रेमिका कहता है। जिससे एक रात किसी अनपेक्षित क्षण में ही सहसा प्रेम कर लिया था। क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी? वाक्य भविष्य की संभावनाओं की ओर संकेत करता है। कमरे से निकलकर काव्यनायक गैलरी में आता है। उसे 'वह रहस्यमय' व्यक्ति लोगों की भीड़ के साथ चला जाता दीखता है, जो उसे पहले गुहा में मिला था। उसका जनता के साथ जाना यह निर्देशित करता है कि व्यक्ति की क्रान्ति चेतना जन-संघर्ष से जुड़कर ही सार्यक हो सकती है। आत्मचेतस व्यक्ति निष्क्रिय रहता है तो उसकी विद्रोही शक्ति भी खत्म हो जाती है। आत्मचेतस क्रांतिधर्मा का यह दायित्व है कि वह अपने अन्दर की आग को धधकाते हुए अन्य साथियों में उसे प्रज्वलित करे, सतत क्रान्तिधर्मा साथियों की खोज करता रहे। इसी कारण काव्यनायक हर जगह खोज करता है।

'इसीलिए मैं हर गली में
और हर सड़क पर
झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा,
प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक चरित्र,
व हर एक आत्मा का इतिहास,
हर एक देश व राजनीतिक स्थिति और परिवेश

प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत परिणति!!
खोजता हूँ पठार, पहाड़-समुन्दर
जहाँ मिल सके मुझे
मेरी वह खोई हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म-सम्भावा'।[110]

पूरी कविता 'फ़ैण्टेसी' से गति प्राप्त करती है। सभी खण्डों में 'फैण्टेसी' और वक्तव्य का अन्तर्गठन है। कही कविता 'फ़ैण्टेसी' से वक्तव्य पर आती है, तो कही वक्तव्य से 'फ़ैण्टेसी' मे आगे बढ़ती है। सभी खण्डों में अतःसूत्रता है। नाटकीय संरचना के कारण कविता में सीधे विचार और भाषण जैसे अंश भी सजगता से गुम्फित हो गये हैं। कविता में सर्जनात्मक तनाव क्रमशः विकसित होता गया है। व्यक्ति की निजबद्धता या अंतर्द्वन्द्व से प्रारम्भ कविता 'फ़ैण्टेसी' की सहायता से बहुआयामी बनती गयी है। काव्यनायक के आत्मविस्तार और व्यक्तित्वान्तरण (डिक्लास) को मूर्तित करने के साथ तत्कालीन परिवेश की विषमता सत्ता का आततायी रूप भी प्रकट होता है। 'भागता मैं दम छोड़ घूम गया कई मोड़' तथा 'कही आग लग गयी, कही गोली चल गयी' आदि वाक्यो की आवृत्ति कविता को शिथिल नही करती, बल्कि उसके माध्यम से विभिन्न बिंब आते जाते है और कविता की केन्द्रीय संवेदना अधिकाधिक प्रभाव क्षम बनती जाती है।[111]

अँधेरे में शीर्षक कविता में 'मुक्तिबोध' की कविता के तीन पड़ाव स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं-स्वानुभूत आदर्श, विवेक प्रक्रिया और क्रियागत परिणत अँधेरे में शीर्षक कविता 'मुक्तिबोध' के सृजनशील अन्तःकरण का चित्र प्रस्तुत करती है। कवि का अन्वेषी अन्तःकरण, साहसपूर्वक जड़ीभूत सैन्दर्याभिरुचि और शिलीभूत अभिव्यक्ति शैली से दीर्घ संघर्ष करता हुआ अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति का, आत्मा की प्रतिभा का साक्षात्कार करने में सफल हो जाता है, दोनों के बीच का फासला यथा सम्भव कम कर लेता है। अन्तःकरण और अभिव्यक्ति की यह विकास यात्रा कदम-कदम पर प्रगतिवादी उद्देश्यों से प्रेरित है। उसमें अस्तित्ववाद या रहस्यवाद की छाया देखना, या

अहसास पाना ठीक नहीं है। कवि ने यहाँ आत्मनिर्वासित होकर अस्मिना की खोज नहीं की, आत्मसघर्षरत रहकर अस्मिता का विकास किया है। उस विकास यात्रा का सबल लक्ष्यों के प्रति दुर्दान्त स्नेह की आस्तिकता है। इसी आस्तिकता के बल पर कवि अपनी और अपने युग की परिणति का प्रगतिवादी स्वप्न देख सका है।[112]

अंघेरे में शीर्षक कविता को 'डा0 हुकुम चन्द्र राजपाल' ने अपनी कृति 'नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका' में 'संश्लिष्ट नाट्य' की संज्ञा दी है। उनकी दृष्टि में यद्यपि 'अँधेरे मे' कविता की बाहरी संरचना विधान नाटकीय अथवा नाट्यपूर्ण नही है, फिर भी आन्तरिक स्थिति नाट्योन्मुख है।'' 'कविता के नये प्रतिमान' में 'डा0 नामवर सिंह ने यह घोषणा पहले ही कर दी थी कि ''आज के व्यापक संदर्भ में जीने वाले व्यक्ति के माध्यम से ही मुक्तिबोध ने 'अँधेरे मे' कविता मे अस्मिता की खोज को नाटकीय रूप दिया है।''[113] डा0 विश्ननाथ त्रिपाठी ने इसे संघर्ष पुरुष की स्वप्न कथा माना है। 'डा0 जगदीश कुमार' ने इससे ''अभिव्यक्ति की प्रामाणिक खोज करनी चाही है। 'डा0 शीतला प्रसाद' ने काव्य-भाषा के अन्तर्गत कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विश्लेषण करते हुए कहा है— '' 'मुक्तिबोध' के विशाल बीहड़ काव्य ने अपने अनुरूप बहुभंगिमावती भाषा का निर्माण भी किया है, उसमें छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद युग की छायाएँ भी हैं, तो दूसरी ओर उस काव्य-भाषा के नमूने भी है, जिसका प्रयोग आज अद्यतन कविता कर रही है।

इस तरह अँधेरे में शीर्षक कविता शिल्प की दृष्टि से जहाँ एक ओर 'फ़ैण्टेसी' है, और 'फ़ैण्टेसी' के समस्त मापदण्डो को लिए हुए है, वहीं दूसरी और 'डा0 हुकुम चन्द्र राजपाल' की दृष्टि से वह एक 'सश्लिष्ट नाट्यकृत' भी है। 'विश्वनाथ त्रिपाठी' इसे 'स्वप्न कथा' मानते है। 'डा0 नामवर सिंह' ने इसे 'परम अभिव्यक्ति के खोज के धरातल पर अस्मिता की खोज माना'। तुलसी के दोहे चौपाइयों का अर्थ निकालते समय जिस तरह पण्डित आलोचक सर्प-केंचुलवत अर्थों की परत-दर-परत खोजते चलते है, फिर भी उसमें नये अर्थो की संभावनाएं बनी रहती हैं, उसी तरह प्रतीत होती है, मुक्तिबोध की कविता। भविष्य में हिन्दी के समर्थ आलोचक प्रस्तुत कविता को किसी नये दृष्टिकोण से निरख परख सकेगे और उसमें नये तथ्यों और सत्यों का उद्घाटन कर सकेगें, यह अकल्पनीय नहीं सम्भावित है और ऐसा होना भी

चाहिए, क्योकि सौन्दर्य तो क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त करता है।

'अँधेरे में' कविता 'फ़ैण्टेसी' के स्तर पर नाट्यशैली में अभिव्यक्त एक स्वप्न कथा है। चूकि कविता की हर घटना और वर्णन मे तर्क-संगतता निभाने की अनिवार्यता 'फैण्टेसी' मे नही होती, इसलिए कवि अपने संवेदनात्मक उद्देश्यो को सफल बनाने के लिए इस सुविधा का कई स्तरो पर प्रयोग कर सकता है। 'अँधेरे में' कविता मे 'तिलस्मी खोह' 'खिरती हुई रेत' और 'खिसकती हुई पपंड़ियो' के माध्यम से मनु का चित्र प्रस्तुत करना 'सलिल के श्याम शीशे' में श्वेत आकृति का दृश्य, 'तिलस्मी द्वारा से 'रक्तलोक स्नात पुरुष' का रहस्य साक्षात् करना, काव्य नायक का 'मैं' अपने 'वह' व्यक्तित्व को नहीं पा सका इसके लिए उस 'वह' व्यक्ति को साक्षात् करने वाली 'मशाल' को जंगलों की हवा से बुझवा देना, रात के अधियारे में पक्षी की चीख, रेलगाड़ी की आवाज और सियारों की हो-हो के बीच टालस्टाय का दिखना, एक लम्बा प्रोसेशन बैड दल एवं सैनिक शासन, विख्यात डाकू डोमा जी उस्ताद, उद्योगपति, पत्रकार, साहित्यकार, मार्शल-ला इन सब के बीच, उपेक्षितों का घर, एक बरगद, तिलक और गाँधी, शिशु और थोड़ी देर मे उसके स्थान पर 'सूरज मुखी फूलों के गुच्छे', 'बन्दूक', 'रायफल का कन्धों पर जाना' 'एकान्त प्रिय कलाकार का वध', मि० गुप्ता द्वारा 'क्रास एक्जामिनेशन', 'जनक्रान्ति' आदि ऐसे ही कल्पनीय हैं, जो अपनी-अपनी प्रतीकात्मकता मे सम्पूर्ण कविता की प्रतीकात्मकता को प्रभावित करते हैं। काव्य-नायक के द्वारा स्वप्न के अन्दर स्वप्न के माध्यम से व्यक्त घटनाओ के बीच सदर्भहीनता भी अखरती नही, बल्कि घटना अचनाक कही खत्म होकर दूसरी घटना को बिम्बित करने लगती है। स्वप्न कथा के कारण हर घटना की भूमिका करने नहीं बाधनी पड़नी, इससे अनावश्यक विस्तार वर्णन से कविता बच जाती है। 'डॉ० नामवर सिंह में शब्दों ये — "स्वप्न शैली में कथा कहने के कारण 'अँधेरे में' कविता में काफी मितव्ययता और संघनता आ गयी है तथा वर्णन के अनावश्यक विस्तार से अपने आप निजता मिल गयी है।"[114]

निष्कर्षतः 'अँधेरे' में कविता की 'फ़ैण्टेसी', यथार्थवादी दष्टिकोण को लिए इस कल्पना-गर्भित संवेदनात्मक उद्देश्यों के द्वारा परिचालित होती है, तथा 'मुक्तिबोध' के मन के निगूढ़ तत्त्वो इच्छित जीवन स्थितियों एवं समस्याओं को असम्भव, अमूर्त एवं चमत्कारिक स्तर पर सार्थक रूप में अभिव्यंजित करती है और कविता की समग्र प्रतीकात्मकता को भी कही टूटने

नही देती। 'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की असुविधा का उल्लेख करते हुए कहा है कि "उसमे प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत होने के कारण कभी-कभी जीवन तथ्य (जो की अनुमान से पहचाने जाते हैं) अत्यन्त गौढ़ एवं विकार पूर्ण हो जाते हैं।"[115] लगता है मुक्तिबोध 'फ़ैण्टेसी' की रचना प्रक्रिया मे आने वाले इस असुविधा से सचेत थे, इसीलिए उनकी रचना मे बहुत कम बार ऐसा होता है कि वे अपने सवेदनात्मक उद्देश्यों से भटककर जीवन तथ्यो की अभिव्यक्ति को गौण बनाकर 'फ़ैण्टेसी' लोक में ही विचरने लगे। "फैण्टेसी' शिल्प में बंधी होने पर भी 'मुक्तिबोध' की कुछ कविताएँ इस दोष से ग्रस्त है। 'मुझे पुकारती हुई पुकार' कविता की आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता में वे कहीं-कही भटक गये हैं। 'मुझे नहीं मालुम' कविता 'यन्त्र विज्ञान के बिबो मे ही भटकती रह गयी है। 'मेरे सहचर मित्र' कविता मे भी भावुकतावश कही-कही शाब्दिक रुमानियत आ गयी है। 'जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठें' कविता भी दर्शन के शब्द जाल मे खोने लगी है। 'फ़ैण्टेसी' या कविता के इस दोष के प्रति चूंकि वे स्वयं सचेत हैं, इसलिए ऐ कविताएँ उनकी अन्य सार्थक 'फैण्टेसी' कविताओं की तुलना में इतना महत्त्व नहीं रखती।

चम्बल की घाटी में

मध्यमवर्गीय व्यक्ति की व्यक्तिवादी चेतना की तेजस्विता को पहचानने वाले 'मुक्तिबोध' उसकी सुविधा भोगी प्रवृत्ति के कारण उस तेजस्विता के प्रभावहीन होने को बार-बार रेखाँकित करते हैं। अलग-अलग प्रतीकों, बिंबों के माध्यम से मध्यम वर्गीय व्यक्ति की मुक्ति की दिशा में सक्रिय होते हैं। 'चम्बल की घाटी में' कविता में यह व्यक्ति सारी संभावनाओं से भरा होने पर भी एक टीला बनकर रह गया है। जब तक यह टीला टूटकर एक-एक कण होकर बिखर नहीं जाता तब तक जड़ता से इसकी मुक्ति नहीं है।

कविता का प्रारम्भ 'फ़ैण्टेसी' से होता है वातावरण अधिक नाटकीय और आकस्मिक है। वाचक कविता पढ़ रहा है। कविता पढ़ते ही प्रतिक्रिया स्वरूप उसकी बेचैनी बढ़ जाती है। उसको लगता है कि वह अनेक बुद्ध आकृतियो में बेचैनी से भटक रहा है। इतने में अकस्मात दूर जंगल में गूंजता हुआ ठहाका सुनाई पड़ता है।

'फैण्टेसी' मे बियावान जंगल का दृश्य आता है, जिसमे वाचक तेज हवाओं का सामना करता हुआ घूम रहा है। वह अपने मन मे उतर कर अपने अपराध की तलाश करने लगता है। अगले ही क्षण उसे अपने अपराध का आभास हो जाता हैं। उसे लगता है कि —

'मै एक थमा हुआ मात्र आवेग
रूका हुआ एक जबरदस्त कार्यक्रम
मैं एक स्थगित हुआ अगला अध्याय
अनिवार्य
आगे ढ़केली गयी प्रतीक्षित
महत्त्वपूर्ण तिथि
मैं एक शून्य में छटपटाता हुआ उद्देश्य''।[116]

उसके व्यक्तित्व की इस जड़ता का साक्षात्कार भयावह होता जाता है और उसे लगता है कि उसके व्यक्तित्व और निजत्व की रेखाएं ही पहाड़ियो के रूप में शिलीभूत हो गयी है।

यहाॅ 'फ़ैण्टेसी' में प्राचीन कथाओ को जादूई रूप प्रवेश करता है। उसे लगता है कि ये सब किसी जमाने में मनुष्य थे, इन्हें किसी जादूगर ने प्रलोभन में फँसाकर पत्थर बना दिया है।[117] उसी जादूगर की खोज में निकल पड़ता है। वीरान पहाड़ी, घाटियो, खोहों मे उतरता हुआ सोचता है कि उसे वे रत्न कोश मिल जायेगें, जिन्हें जादूगर ने उड़ा दिया था। 'फ़ैण्टेसी' मे ही उन रत्न कोशों की व्याख्या भी कर देता है। कि रत्न कोश चेतना दीप्ति हैं। व्यवस्था का जादूगर व्यक्तियों की चेतना-दीप्तियों को छीनकर ही उन्हें जड़ बना पाता है।

'और यह सोचता हूँ
गुहाओ में जाने के बियावान
रास्ते पर, क़ही पर
शायद है मुझे मिल जायेंगे
गड्ढों में (पत्थरों से ढ़ंके हुए) रत्न कोष
उस जादूगर ने जो उड़ाये थे

खतरनाक समझकर चुपचाप छुपा दिये।
कि किसी चेतना-दीप्ति से सचमुच खतरा है उसको
नही सामने उसके चल पाता अंधियारा जादू।
हॉ कुछ चेतना दीप्तियाँ
ऐसी भी होती है जिससे
खतरा है उसको'।[118]

'फैण्टेसी' का प्रतीकार्थ स्पष्ट है कि जो चेतना-दीप्ति जादूगर को डराती है, वही मध्यमवर्गीय सुविधाजीवी को भी विवश करती है कि वह उसे अपने अचेतन के गहरे अँधेरे मे छिपा दे। इन रत्नों का प्रसंग 'मुक्तिबोध' की कविताओं में बार-बार आता है। प्रसिद्ध कविता 'अँधेरे में' का नायक अपने उन्ही अनुभव-रत्नों के सामने बार-बार आता है, जिन्हे उसने लोभ और डर के कारण गुहावास दे रखा है।

वाचक, कवि के साथ एकाकार होता हुआ एक झाड़ी के पास बैठता है, जिसमें से एक सांप निकलकर भागता हुआ दिखाई पड़ता है। 'फ़ैण्टेसी' मे ही उत्प्रेक्षा करता हुआ वाचक कहता है —

'मानो मेरी कविता की कोई पांत
मुझसे ही भयभीत
भाग ज़ाना चाहती'......[119]

उसी सांप का पीछा करता हुआ वाचक उस घाटी मे पहुॅचता है, जिसमें एक भरी पूरी नदी आकर डूब मरी थी। वाचक टिप्पणी करता है कि चम्बल के (यहाँ आ) पैर ही उखड़ गये। पहाड़ियो को देखकर वाचक को लगता है कि यहाँ क्या सब लोग मारे जा चुके हैं।

'चम्बल की घाटी' खूंखार डाकुओं के लिए उन दिनों विशेष चर्चित थी, इस कविता मे वाचक अन्य कविताओं की तरह अपने कवि रूप को अलग नहीं रखता है। वह सारे देश को चम्बल की घाटी के रूप में देखता हुआ इस भयानक 'फ़ैण्टेसी' में प्रवेश करता है कि —

'एक गाँव धधक रहा है
गरीबों का एक गाँव
बिना ठांव'[120]

कविता में कन्धे पर भार बढ़ाता हुआ बालक आता है जो कि 'मुक्तिबोध' की अनेक कविताओ मे दिखाई पड़ता है। कही उसे माँ सौंपती है, कहीं महात्मा गांधी, (अँधेरे में), यहाँ कन्धे पर बालक के साथ पीठ पर अंगोछे से कसी हुई बच्ची भी है। अपनी कविता के संबंध मे 'मुक्तिबोध' की यह टिप्पणी विशेष महत्त्व की है।—

'यो मेरी कविता के बिना-घर
बिना छत गिरस्तन'[121]

कविता के अगले चरण में 'फैण्टेसी' केन्द्रीकृत वृत्त में प्रवेश करती है। वाचक पहाडी के ऊपर एक आकृति देखता है पत्थर की, जो शिला पुरुष की तरह लगती है। कविता मे व्यक्तिबद्ध जड़ता को तोड़ने की आकांक्षा है, यही आकांक्षा 'फैण्टेसी' को कथात्मक रूप देती है। वाचक उस टीले को वाचाल टीला कहता है और 'फैण्टेसी' मे नया दृश्य विधान आरम्भ होता है। उस टीले के पाषाणी नेत्रो मे खून बहाते हुए घाव है। वाचक को लगता है कि आँखो के घावो मे सच्चाई की किरकिरी कसक रही है। उसकी खून भरी आँखों में सत्य के अणुरेख दुःखते तो हैं, पर दिखायी नही पड़ते। उन्ही पीड़ाओ की बुनियाद पर एक फिलासफी खड़ी की गयी है, जिसे वाचक अपनी ही आँखों में चढ़ने का गोल-गोल जीना कहता है अथवा क्षणत्व को अंलकृत करने की विधियाँ कहता है।[122] पीड़ाओं की बुनियाद पर जीवन दर्शन बनाने की स्थिति को लेकर 'मुक्तिबोध' ने एक स्वतन्त्र कविता लिखी है 'एक फोड़ा दुःखा'।

जो कि नयी कविता के घोर व्यक्तिवादी अहं केन्द्रित महत्त्वाकांक्षा पर एक सार्थक टिप्पणी है। आगे 'फ़ैण्टेसी' में इन्हीं रत्न-कणों के पाषाणीकार से निकलने की कथा विकसित होती है तथा वाचक को अपनी ही आत्मा की आवाज सुनाई देती है —

'हमने तो पहले भी कहा था
पर तुम, अनसुनी करते हो आदतन!''[123]

इस पर इतिहास का आब्जेक्टिव विश्लेषण करने के बदले मध्यमवर्गीय सुविधावादी, जो निजी इतिहास दृष्टि अपनाता है, उस पर प्रहार करते हुए कवि कहता है कि आत्मा की आवाज अनसुनी करके ये लोग (जड़ता के पुंज) अपनी ही स्थितियों का औचित्य स्थापित करते हैं।

'फ़ैण्टेसी' तीव्रता से सक्रिय होती है। वाचक उस टीले के साथ तादात्म्य अनुभव करता है, उसे लगता है, भीतर फंसे मणिगण आघात करते है, पलभर चैन नही लेने देते। एक ओर भूले करने की मशीन मिथ्या का सहारा लेती हैं और अन्दर रत्नो की किरणें मिथ्या के आवरण को चीरकर सत्य के आवरण को उभार कर रख देती है। यह 'फैण्टेसी' के शिल्प के कारण ही सम्भव हो पाता है कि वाचक (मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवी) अपने ही पाषाणी टीले के रूप को भीषण रूप मे भभकता हुआ देखता है तथा अपने पाषाणी व्यक्तित्व में छिपे अग्नितेज को व्यक्तिगत स्तर पर अनुभव करता है। इसलिए इसकी विडम्बना पूर्ण निरर्थकता पर टिप्पणी करने के लिए कवि को 'फ़ैण्टेसी' से बाहर निकलना पड़ता है। कोष्ठक में वाचक इस पर टिप्पणी करता है जो इस प्रकार है।

'परन्तु यह भी तो सच है कि ऐसी
समस्त अग्नियाँ, अकेले में जलती हुई
करती हैं, अपनी ही
ऐसी की तैसी
क्या यह सच नहीं'।।[124]

'फ़ैण्टेसी' में एक भीषण दृश्य काफी देर चलता है जिसमे ईंट, लाठियों की शक्ल मे तर्क, व्यंग्य, विचार, भयंकर खून-खराबा करते हैं। प्रतीको के साथ रूपक का प्रयोग करके 'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' को पूरा करते हैं। रूपक के पूरा होने पर फिर 'फ़ैण्टेसी' मे ही इस विरोधाभास पर तीखी टिप्पणी है कि मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी की चेतना में चाहे जितनी वैचारिक क्रान्ति हो जाय किन्तु उससे व्यवस्था का ढ़ाँचा बिल्कुल अप्रभावित रहता है, जड़ता जरा सा भी नही टूटती।

निम्नवर्गीय जन-मन की भाव धारा के स्पर्श से टीले का भावान्तरण इस रूप में हो गया है कि वह अपनी स्थिति का ठीक-ठीक विश्लेषण कर पा रहा है। यह मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवी अपनी वर्गीय सीमाओं की पत्थर कारा में बन्द होकर व्यक्तिवादी हो गया है किन्तु आत्मचेतस और व्यक्तिचेतस होने के कारण वह अपने वर्ग के अन्य बुद्धि जीवियो की अपेक्षा अपने को जागरुक महसूस करता है, वह अपने वर्ग वाले सुविधा-परस्तों से वर्गगत साम्य होने

के बावजूद कोई साम्य अनुभव नही करता। दूसरी ओर अपना प्रिय सहचर और मित्र उसको मानता है, जो उसके अपने वर्ग के नहीं है अर्थात् सर्वहारा है —

इस बात को 'मुक्तिबोध' ने अपनी अनेक कविताओं मे अनेको तरह से कहा है। एक पूरी कविता 'मेरे सहचर मित्र' मे काव्यानायक इसी सर्वहारा व्यक्ति को अपना 'अति प्रिय सहचर मित्र' कहता है। उन्हीं को यहाँ भी वह अपना 'प्रिय सहचर मित्र' कह रहा है। किन्तु मध्य वर्गीय सुविधा परस्त बुद्धिजीवी की विडम्बना ही है, वह मन से जिस सर्वहारा के पास होता है, उससे मिल जाने के लिए अपनी वर्गीय सुविधाओ का त्याग नही कर सकता। इसी विडम्बना को पत्थर का टीला इन शब्दो में स्वीकार करता है।

'परन्तु शत-गुण-धर्म जो उनके
ले नही पाता हूँ चाहने पर भी'।[125]

इस दुःखान्त नाटक को झेलता हुआ पहाड़ी टीला अनुभव करता है कि दस्यु के देह की चट्टान उसके ऊपर बैठ गयी है। वह असह्य दबाव महसूस करता है, किन्तु कोई उपाय उससे बचने का नहीं दिखायी पड़ता। 'फ़ैण्टेसी' मे नाटकीयता बढ़ती है। टीले की व्यथा को सुनकर हवा समझ जाती है कि यह बाहर का कष्ट नहीं है, उसके पाषाणी व्यक्तिन्व का ही कोई गुप्त रोग है। हवा को उस पत्थर के उपर बैठे हुए डाकू का रहस्य तो मालूम है, किन्तु उसे डर है कि पत्थर उसकी बात मानेगा नहीं। यहाॅ 'फ़ैण्टेसी' मे प्रतीक बहुत स्पष्ट रूप में नियोजित हुए हैं। मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी सर्वहारा की (जनअनुभव की) सलाह कहाँ मानता है, फिर भी वह हवा उससे कह देती है कि तुम्हारी छाती पर जो डाकू की चट्टानी मूरत बैठी है, वह कोई और नही बल्कि तुम्हारी ही फैलकर मोटाई हुई आकृति की सूरत है। तुम्हारे भीतर जो छिपी हुई घोर व्यक्तिवादिता है, वही डाकू बनकर तुम्हारे सीने पर बैठ गयी है।

मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी के अहं की पाषाणी कार (पत्थर की चट्टान) जब टूटेगी तब उसके भीतर छिपे हुए मूल्यवान अनुभव रत्न बिखर जायेगे, जिन्हें जन-सामान्य उठा लेगा। वे लोग उन अनुभव रत्नो का भरपूर उपयोग करेंगे और उन्हीं के सहारे डाकुओ के गिरोह को पहचान कर उनका पूरा विनाश करेगें हवा कहती है —

'ज़न साधारण को उनकी ही टोह है

पूर्ण विनाश और अनस्तित्व उनका
तुम्हारे निजत्व का चरम विकास है।[126]

यहाँ मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार शोषण की प्रक्रिया मे बुद्धिजीवी की भूमिका को बहुत सफाई से व्यक्त किया गया है। पूंजीवादी व्यवस्था मे शोषक जन-साधारण (सर्वहारा) का शोषण, सुविधा परस्त मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी की सहायता से ही करता है। शोषक अनेक तरह के प्रलोभन देकर बुद्धिजीवी के व्यक्तिवादी आग्रहों को बढ़ाता जाता है। जिसके कारण वह अपने ही व्यक्तित्व पर पत्थर की तरह जमकर बैठ जाता है। उसके अनुभव का लाभ उठाकर सर्वहारा की शक्ति क्रान्ति करने से वंचित रह जाती है। इसीलिए जन अनुभव की यह हवा, टीले को सलाह देती है कि वह अपने व्यक्तिवादी पाषाणीकारा को तोड़कर अपने अनुभव रत्नो को जन-साधारण में बिखेर दे। सर्वहारा की शक्ति बुद्धिजीवी के अनुभव और ज्ञान का उपयोग करके शोषण की प्रक्रिया को पहचान कर ध्वस्त कर देती है। इस तरह दोनों की मुक्ति एक साथ होगी सर्वहारा की भी और मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी की भी। शोषण के अस्तित्त्व का पूर्ण विनाश ही बुद्धिजीवी के निजतत्त्व का चरम विकास है।

'फ़ैण्टेसी' को सम्पन्न करते हुए 'मुक्तिबोध', जन-अनुभव सम्पन्न हवा से कहलवाते हैं।

'इसलिए ओ दृषद आत्मन
कर जाओ टूट जाओ
टूटने से विस्फोट शब्द जो होगा
गूँजेगा जग भर
किन्तु अकेली की, तुम्हारी ही वह सिर्फ
नहीं होगी कहानी।।'[127]

अन्तिम पंक्ति में यह संकेत कि मुक्ति की कहानी तुम्हारी अकेले की नहीं होगी का अर्थ तो स्पष्ट है ही कि मुक्ति व्यक्ति की नहीं, समष्टि की होती है। दूसरा अर्थ भी इतना ही स्पष्ट है कि जन शोषण की प्रक्रिया का दुष्चक्र खुल जायेगा और सर्वहारा बुद्धिजीवी की ज्ञान सम्पदा का सहारा लेकर शोषण के ढ़ांचे को तोड़ देगा तो एक साथ दोनों ही वर्ग मुक्त हो जायेगें।

निष्कर्ष

'मुक्तिबोध' की कविताओं में 'फ़ैण्टेसी' की निर्माण-प्रक्रिया का विश्लेषण कुछ प्रमुख कविताओ के माध्यम से करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि उनकी कविताओं में 'फैण्टेसी' का निश्चित आकार नही होता। अलग-अलग कविताओ मे 'फ़ैण्टेसी' अलग-अलग रूपाकार ग्रहण करती हुई चलती है। प्रायः बड़ी कविताओ में एक 'फैण्टेसी' के भीतर, कई छोटी-छोटी दृश्य स्थितियाँ, 'फैण्टेसी' के रूप मे आकर, मूल 'फ़ैण्टेसी' को समृद्ध करती है। छोटी कविताओ मे 'फैण्टेसी' एक या दो दृश्य तक ही पूर्ण हो जाती है।

'मुक्तिबोध' अपनी कविताओ मे 'फ़ैण्टेसी' के मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए- उपमा, रूपक, प्रतीक, बिंब, स्वप्न-दृश्य और विभ्रम का भरपूर उपयोग करते हैं। 'फ़ैण्टेसी' के केन्द्रीय बिन्दु तक पहुँचने के लिए वातावरण का निर्माण प्रायः आकस्मिकता के साथ आरम्भ होता है। बीच-बीच मे वाचक 'फ़ैण्टेसी' के प्रतीकों एवं निहितार्थो की व्याख्या भी करता जाता है। कही-कहीं इस तरह की व्याख्या से 'फ़ैण्टेसी' के आपेक्षित प्रभाव में बाधा भी उत्पन्न होती है। 'फैण्टेसी' मे कविता के प्रायः सभी उपकरणों का प्रयोग करके 'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' की अवधारणा और निर्माण-प्रक्रिया दोनो को विकसित करते हैं। 'मुक्तिबोध' की कविताओं में 'फैण्टेसी' की निर्माण-प्रक्रिया देखने पर एक महत्त्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध होता है कि कवि 'फैण्टेसी' के निर्माण में चाहे जितना सचेत हो जाने अनजाने उसके अवचेतन की भूमिका भी सक्रिय हो जाती है। 'मुक्तिबोध' की कविताओं मे ऐसा विशेष रूप से हुआ है। इसीलिए सैद्धान्तिक रूप मे मार्क्सवादी विश्व दृष्टि अपनाने वाले 'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' की जो दुनिया रचते हैं, उसमे भारतीय जीवन को प्रभावित करने वाले मिथको-प्रतीकों और लोक जीवन के विश्वासो की भूमिका नगण्य नहीं होती।

पाद टिप्पणी

1 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया – अशोक चक्रधर पृष्ठ 90

2 वही - पृष्ठ 90-91

3. वही - पृष्ठ 91

4. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 270

5. 'मुक्तिबोध' युगचेतना और अभिव्यक्ति - डा॰ आलोक गुप्ता पृष्ठ 131

6 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 278-279

7 वही - पृष्ठ 279

8 सामान्य मनोविज्ञान - डा॰ एस॰ एस॰ माथुर (अचेतन मनकी विशेषताएँ)

9 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 179

10 वही - पृष्ठ 180

11 वही - पृष्ठ 180

12 हिन्दुस्तान समाचार पत्र - 13 अक्टूबर 2002

13. 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया - अशोक चक्रधर पृष्ठ 133

14 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 181

15 वही - पृष्ठ 181

16. 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया - अशोक चक्रधर पृष्ठ 135

17. वही - पृष्ठ 135

18. क्रिस्टोफर काडवेल - स्टडी इन ड्राइंग कल्चर पृष्ठ 77

19. वही - पृष्ठ 82

20. वही - पृष्ठ 84

21 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया - अशोक चक्रधर पृष्ठ 134

22 वही - पृष्ठ 133

23. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 267

24 वही - पृष्ठ 268-269

25. आद्यबिंब और 'मुक्तिबोध' की कविता - कृष्ण मुरारी मिश्र पृष्ठ 99

26 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया - अशोक चक्रधर पृष्ठ 269

27 वही - पृष्ठ 271

28 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 269

29 वही - पृष्ठ 271

30 वही - पृष्ठ 276

31 वही - पृष्ठ 277

32 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 193-194

33 वही - पृष्ठ 194

34 वही - पृष्ठ 194

35 वही - पृष्ठ 194

36 वही - पृष्ठ 194

37. वही - पृष्ठ 195

38 वही - पृष्ठ 197

39 वही - पृष्ठ 198

40 वही - पृष्ठ 198

41 वही - पृष्ठ 201

42 वही - पृष्ठ 202

43 वही - पृष्ठ 153-54

44 वही - पृष्ठ 156

45 वही - पृष्ठ 155

46 वही - पृष्ठ 155

47 वही - पृष्ठ 155

48 वही - पृष्ठ 155

49 वही - पृष्ठ 157

50 वही - पृष्ठ 157

51 वही - पृष्ठ 158

52 नयी कविता और अस्तित्ववाद - राम विलाश शर्मा पृष्ठ 218

53 कविता के नये प्रतिमान - नामवर सिंह पृष्ठ 256

54. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 280

55. वही - पृष्ठ 280-81

56. वही - पृष्ठ 282

57 वही - पृष्ठ 283

58 वही - पृष्ठ 284

59 नयी कविता और अस्तित्त्ववाद - राम विलाश शर्मा पृष्ठ 129

60 कविता के नये प्रतिमान - नामवर सिह पृष्ठ 255

61 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 284

62. वही - पृष्ठ 287

63. वही - पृष्ठ 289

64 वही - पृष्ठ 291

65. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 291-292

66 वही - पृष्ठ 292

67 वही - पृष्ठ 293

68 वही - पृष्ठ 293

69 वही - पृष्ठ 346

70 वही - पृष्ठ 315

71 'मुक्तिबोध' सम्पादक विश्वनाथ तिवारी पृष्ठ 132

72. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 344

73 'मुक्तिबोध' की काव्य प्रक्रिया - अशोक चक्रधर पृष्ठ 148

74 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 344

75. 'मुक्तिबोध' सम्पादक विश्वनाथ तिवारी पृष्ठ 133

76. वही - पृष्ठ 133

77. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 315

78 वही - पृष्ठ 346

79. वही - पृष्ठ 347

80 वही - पृष्ठ 347

81 वही - पृष्ठ 344

82. वही - पृष्ठ 348

83 वही - पृष्ठ 348

84. वही - पृष्ठ 348

85 वही - पृष्ठ 349

86 वही - पृष्ठ 349

87 वही - पृष्ठ 349

88 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 350
89 वही - पृष्ठ 352
90 वही - पृष्ठ 352
91 वही - पृष्ठ 353-354
92 वही - पृष्ठ 354
93 वही - पृष्ठ 356
94 वही - पृष्ठ 360
95 वही - पृष्ठ 360
96 वही - पृष्ठ 360-361
97 वही - पृष्ठ 363-364
98 वही - पृष्ठ 365।
99. वही - पृष्ठ 367
100. वही - पृष्ठ 370
101 वही - पृष्ठ 370-371
102 वही - पृष्ठ 378
103 वही - पृष्ठ 380
104 वही - पृष्ठ 382-83
105 वही - पृष्ठ 383
106 वही - पृष्ठ 383-384
107 वही - पृष्ठ 384
108 वही - पृष्ठ 385
109 वही - पृष्ठ 386
110 वही - पृष्ठ 388-89
111. आलोक गुप्ता पृष्ठ 202
112. नयी कविता की चेतना - डा॰ जगदीश कुमार पृष्ठ 99
113. कविता के नये प्रतिमान - डा॰ नामवर सिंह पृष्ठ 236
114 वही - पृष्ठ 23
115 कामायनी एक पुनर्विचार पृष्ठ 6
116. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 440
117. वही - पृष्ठ 440
118 वही - पृष्ठ 442

119 वही - पृष्ठ 442

120 वही - पृष्ठ 445

121 वही - पृष्ठ 442

122 वही - पृष्ठ 448-449

123 वही - पृष्ठ 448

124 वही - पृष्ठ 449

125 वही - पृष्ठ 456

126 वही - पृष्ठ 459-460

127 वही - पृष्ठ 460

●●●

चतुर्थ अध्याय

'फ़ैण्टेसी' और अनुभूति पक्ष

अनुभूति शब्द को लेकर आलोचना के क्षेत्र मे पर्याप्त विवाद हुआ है, विशेष रूप से छायावादी काव्य चेतना तक। इस शब्द की डा॰ नामवर सिंह ने भी आलोचना की है। फिर भी किसी उपयुक्त शब्द के न मिलने के कारण परवश होकर उन्होने इस शब्द को ग्रहण किया है। 'मुक्तिबोध' ने अपने कई निबन्धों में इस पर प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिए कलात्मक अनुभव और सौन्दर्यानुभूति और 'जीवन-अनुभव' को लिया जा सकता है। उनकी अनुभूति सबंधी धारणा भी प्रकारान्तर से उनकी रचना के तीन क्षणो की अवधारणाओ से मिलती जुलती है। उन्होंने लिखा भी है- ''विधायक कल्पना द्वारा पुनर्रचित जीवन, किसी एक विशिष्ट अनुभव, यानी एक ख़ास तजुर्बे, की तसवीर नहीं, वरन् तत्समान सारे अनुभवों का वह वस्तुतः एक सामान्यीकरण है। इसलिए उन मानस-प्रत्यक्षो मे विशेष प्रतिनिधिकता आ जाती है। व्यवस्थित रूप से शब्द-बद्ध होने पर वे ही चित्र, अपनी इस प्रतिनिधिकता के फलस्वरूप पाठक या स्रोता के अन्तःकरण में तत्समान संवेदनाओं द्वारा, तत्समान चित्रो को जाग्रत कर देते हैं। अबुभूति-क्षण की विशिष्टता के रूप में वे विशिष्ट हैं, और अपनी प्रतिनिधिकता के कारण वे सामान्य भी। इस प्रकार विशिष्ट और सामान्य के द्वन्द्व की उच्चतर एकीभूत स्थिति के रूप में ही कल्पना द्वारा जीवन की पुनर्रचना होती है।[1]

अनुभूति के संदर्भ में कुछ विचारको ने अपनी स्थापनाएं दी हैं। हेनरी जेम्स के शब्दों मे— ''अनुभूति कभी सीमित या पूर्ण नहीं होती यह स्वतः अनन्त संवेदनशीलता की परिचायक है। यह चेतना में लटकाये गये महीन सिल्क-तन्तु से निर्मित उस मकड़ी के जाले के सदृश है, जो अपने प्रसार में सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं को ग्रहीत कर लेता है।'' अनुभूति ही मानस के

सम्पूर्ण परिवेश की निर्मात्री है। जब प्रतिभा सम्पन्न कलाकार का मानस विधायक कल्पना की दीप्तिमय क्रिया से आलोकित हो उठता है, तो अनुभूति सामान्य से सामान्य जीवनानुभूति को सशक्त, स्पन्दनपूर्ण, प्रभावोत्पादक और कलात्मक रूप प्रदान करने में सक्षम सिद्ध होती है। यह दृश्य से अदृश्य तक अवगाहन करके उपादन मे निहित रहस्य को सुलझा सकती है और संघटना के आधार पर अन्तर्निहित सामजस्य का अभिधान करा सकती है। इसमें जीवन के रहस्यमय कोणो को आलोकित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है। प्रमुख विचारक 'एरिक न्यूटन' का मत है कि – "केवल अनुभूति ही उस विचार- सन्दर्भित क्षेत्र को उर्वर बना सकती है, जिससे कला का उद्‌भव होता है। विधायक कल्पना वस्तुतः मशीनी क्रिया है। इससे कला की मानस प्रतिभा के निर्माण मे सहायता मिल सकती है, उसकी रचना में नही। कल्पना रूपी मशीन से जीवनानुभूति का चुनाव किया जा सकता है और पुनः उसका कला में निरूपण संभव है।"[2]

'मुक्तिबोध' की अनुभूति संबंधी अवधारणा प्रायः इन उपर्युक्त विचारकों से मेल खाती है। उसे अधोलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है —

1. 'मुक्तिबोध' ने भी मनोमय और बहिरंगगत जीवन के तीव्र और उत्कट अनुभव को विशेष महत्त्व दिया है।
2. उन्होने इस अनुभव को 'फ़ैण्टेसी' के रूप में बदलने और अपने अलग अस्तित्त्व से रचनाकार को परिचित कराने का संकेत किया है। यह तभी संभव है जब दो या दो से अधिक सन्दर्भित क्षेत्र आपस में टकराकर मिलते, प्रौढ़ होते और मानस में तिरते हैं। प्रौढ़ता के लिए रचनाकार को प्रतीक्षा करनी पड़ती है।
3. 'मुक्तिबोध' के अनुसार 'फ़ैण्टेसी' शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया में रचनात्मक मानसिकता के माध्यम से तराश दी जाती है। अतएव उसका मौलिक रूप बदल जाता है।
4. 'मुक्तिबोध' ने ललित अनुभूति को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। यह अनुभूति रचनाशक्ति को उर्वर बनाती है और उसके निश्चित रूपायन में सहायक होती है।

5. 'मुक्तिबोध' ने ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान को रचना की दृष्टि से विशेष महत्त्व दिया है।

6. 'मुक्तिबोध' ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि रचनात्मक अनुभूति ललित एवं अखण्ड होती है। उसमे प्रवाह और गति पायी जाती है। उनकी दृष्टि मे 'फ़ैण्टेसी' के रूप मे मानस मे तिरने वाली अनुभूति रचनात्मक मानसिकता का विधायक तत्त्व होती है।

7. उन्होंने विधायक कल्पना के महत्त्व को भी स्वीकार किया है। अभ्यास और व्युत्पत्ति को भी महत्त्व दिया है। उनकी दृष्टि में रचनात्मक अनुभूति सामान्य से सामान्य जीवन स्पन्दन को भी अन्तर्दृष्टि प्रवण ढ़ंग से ग्रहण कर सकने मे सक्षम होती है। वह दृश्य से अदृश्य तक को अपने पाश में आबद्ध करके, रचना की संघटना को सुदृढ़ बनाती है।

8. 'मुक्तिबोध' प्रकारान्तर से अनुभूति के स्वरूप परिवर्तन और उदात्तीकरण से भी परिचित थे।

9. रचना-प्रक्रिया की अनुभूति को कलात्मक रूप में परिणत करती है। इस तरह हर रचना अपने आप में पुनर्रचना होती है।

10. हर रचनात्मक अनुभूति अपने आप मे विशिष्ट होती है। मनोमय जीवन उसका आधार होता है, पर रचना की स्थिति में वह उससे भिन्न हो जाता है।

11. अभिव्यक्ति के उपादान, अनुभूति को सीमांकित करने तथा उसे अपनी आवश्यकतानुरूप ग्रहण करने के प्रमुख आधार होते हैं।

12. जीवनानुभूति को ग्रहण करते समय उसके अन्वीक्षण-परीक्षण और भावग्रहण करने के लिए रचनाकार को परिस्थिति के प्रति सतत् ईमानदार रहना आवश्यक है।

'मुक्तिबोध' के अनुसार "काव्यनुभूति मूलतः अवचेतन से संबंधित होती है। उनके दृष्टि मे कलात्मक अनुभूति मानव के अन्तःकरण में स्थित 'जीवन-स्रो' एवं 'मनुष्य की आन्तरिक मौलिक प्यास' है।[3] यह गुप्त जिजीविषा (अनुभूति) जब अपना अभिव्यक्तिकरण या

विस्तार करना चाहती है, तब यह तीव्र उत्कंठा के साथ चेतन मन में प्रकट होती है। चेतन मन मे प्रकट यह 'भावनानुभूत ज्ञान ही कला का विषय है''[4]। कला तभी तक जीती जागती है, जब तक कि लेखक का वर्ण्य वस्तु के प्रति भावात्मक संबंध हो। जिस प्रकार सोचना और विचार करना ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक साधन है, उसी प्रकार भावना भी जीवन का ज्ञान प्राप्त करने का एक कलात्मक साधन है।[5]

'मुक्तिबोध' कविता की रचना हेतु रचनाकार से यह अपेक्षा करते हैं, कि वह अपनी कविता में यथार्थ एवं स्वानुभूत तथ्यों को ही प्रयुक्त करे। उनके अनुसार वास्तविक जीवन और उससे प्राप्त अनुभूति ही सृजन का विषय है।[6] वे कविता को अनुभूति की मानसिक प्रतिक्रिया मानते हैं। उनके लिए काव्य-सृजन एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। कलाकार की मनोरचना के मूल में यही मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया रहती है। अनुभूति के सामान्यीकरण में रचनाकार के समाजशास्त्रीय पक्ष के साथ उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष भी निहित होते हैं। इसीलिए 'मुक्तिबोध' चाहते हैं कि दूषित एवं अवैधानिक भाव और अनुभव को काव्य मे अभिव्यक्ति देने से बचा जाए।

'मुक्तिबोध' की दृष्टि में ''मानव और समाज से पृथक कविता की कोई अलग सार्थकता नहीं होती, समाज सापेक्ष होकर चलने में ही इसकी महत्ता है। प्रत्येक सृजनकर्ता अपने परिवेश से पूरी तरह प्रभावित होता है। वह अपने लिये गये परिवेश और जीवन के अनुसार ही अनुभव तत्त्व प्राप्त करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यही अनुभव, जीवन तथा लेखक के हृदय मे अनुभूति बनकर प्रकटीकरण के लिए अकुलाते हैं।''[7]

'मुक्तिबोध' के अनुसार ''कलाकार के लिए कला का कोई क्षेत्र वर्जित नहीं है, पर सभी प्रकार की अनुभूतियाँ कविता में परिणत नहीं हो सकतीं, चाहे वह सामाजिक की हो या कलाकार की। समाज में रहते हुए, बचपन से ही व्यक्ति के हृदय में अनेक भावानुभूतियाँ संचित होती रहती हैं, परन्तु उनमें अनुभूति की गहराई का अभाव होता है। वह उचित विवेक दृष्टि के अभाव में उससे संबंधित महत्त्व एवं मूल्य भावना को समुचित रूप में विकसित नहीं कर पाती क्योंकि भाव तत्त्व के सटीक सम्प्रेषण की अभिव्यक्ति शैली का उसके पास अभाव है। उसमें उतनी कलात्मक प्रतिभा नहीं है कि वह अपनी अनुभूति का सामान्यीकरण कर सके, उसे

सौन्दर्यानुभूति में रूपान्तरित कर पाए।"[8]

कला के क्षेत्र में 'सम्पूर्ण' के पक्षधर 'मुक्तिबोध' के अनुसार सभी प्रकार की अनुभूतियॉ सहज एवं स्वाभाविक रूप मे स्वतःरसात्मक क्षण (सौन्दर्यानुभूति) में नही परिवर्तित हो पार्ती। किन्तु इस कोटि के भाव तत्त्वो में भी समर्थ सर्जक अपनी कलात्मक प्रतिभा द्वारा सौन्दर्य एवं कलात्मकता का गुण पैदा कर सकता है तथा उसे भी अपनी कला का विषय बनाकर रचना में ढ़ाल सकता है। शर्त केवल यह है कि स्वानुभूति यथार्थ हो। ऐसी अनुभूतियो को रचनाकार व्यक्तिबद्ध दशा का परित्याग कर, भोक्ता और सृष्टा मन के अन्तर को समाप्त करता हुआ, कल्पना-शक्ति के स्वनिरपेक्ष रूप मे रूपान्तरित करके उसे अभिव्यक्ति देता है।

कवि की आत्मानुभूति का महत्त्वपूर्ण नियामक तत्त्व उसकी वर्गीय चेतना है, कोई भी रचनाकार अपने को चाहे कितना भी निष्पक्ष, निरपेक्ष एवं क्यों न बना ले (या घोषित करे), वह पूर्ण-रूपेण निरपेक्ष नहीं हो सकता है। उसके सृजन में उसके व्यक्तित्व एवं वर्गीय चेतना की छाप अवश्य परिलक्षित होती है। 'मुक्तिबोध' इस तथ्य का समर्पण करते हैं। वे स्वयं मार्क्सवादी-जीवन-दर्शन से प्रभावित थे, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उनके समस्त दर्शन एवं अनुभूति का आधार केवल मार्क्सवाद है, उनके मन मे मार्क्सवाद के प्रति श्रद्धाभाव था, परन्तु उन्होने अपनी अनुभूति एवं चेतना का धरातल मार्क्सवाद के अतिरिक्त स्वयं द्वारा अनुभूत किये गये यथार्थ, प्रगतिशील विवेक एवं चिन्तन के सहयोग से तैयार किया था।

'आधुनिक भाव-बोध' संबंधी उनकी मान्यताओं को दृष्टिगत किए बिना उनकी अनुभूति विषयक धारणा की चर्चा अधूरी रह जायेगी। 'मुक्तिबोध' ने आधुनिक भाव-बोध को एक व्यापक भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। लघु मानव, क्षणवाद, घोर वैयक्तिकता, समाज से अलग पड़े रहने की प्रवृत्ति, अजनबीपन, अलगाववाद, एकाकीपन की अनुभूति, सीमित और विशेषाभिरूचि के प्रति आसक्ति, जन को भीड़ मानकर उससे पृथक होकर अपनी विशिष्टता की रक्षा करने की प्रवृत्ति का उन्होंने प्रबल विरोध किया है। उनकी दृष्टि से उत्कृष्ट एवं विश्वात्मक साहित्य की रचना अपनी भूमि और देश की मिट्टी के रंग से रंगकर ही की जा सकती है। रचनाकार को व्यक्ति-सापेक्ष, जीवन-सापेक्ष, वर्ग-सापेक्ष एवं युग-सापेक्ष होना पड़ेगा। उसके आत्मालोचन एवं आत्मविस्तार की प्रक्रिया समाज से जुड़ी होनी चाहिए। आधुनिक भाव-बोध पर

अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है- "मैं अपनी खुद की जिन्दगी और दोस्तों की जिन्दगी के तजुर्बे बता सकता हूँ कि अन्याय के खिलाफ आवाज बुलन्द करना आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत है। आधुनिक भावबोध के अन्तर्गत यह भी है कि मानवता के भविष्य निर्माण के सघर्ष मे हम और भी अधिक दत्तचित हों, तथा हम वर्तमान परिस्थिति को सुधारे, नैतिक ह्रास को थामे, उत्पीड़ित मनुष्य के साथ एकात्म होकर उसकी मुक्ति का उपाय योजन करे।"[9] इस प्रकार 'मुक्तिबोध' का आधुनिक भाव-बोध समाज को त्यागने का नही वरन यदि उसमे विकृत्तियाँ है तो उन्हे दूर करने का है।[10]

इस प्रकार हम देखते हैं, कि सार्थक काव्य-दृष्टि के लिए यथार्थ जीवन अनुभव महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह स्व-अनुभूति उसके जीवन दर्शन को निर्मित करने की आधार-शिला है। इसी के आधार पर वह अपनी भाव दृष्टि विकसित करता है। इसीलिए मुक्तिबोध की दृष्टि मे "जीवनानुभव एक ही साथ, वस्तु तथ्य भी है तथा एक संवेदनात्मक तथा भावनात्मक पुंज भी।"[11]

'मुक्तिबोध' की अनुभूति विषयक मान्यताओं का अवलोकन करने पर पता चलता है कि उन्होने इसे अर्वाचीन और प्राचीन दोनों प्रकार की मान्यताओ के आधार पर ग्रहण किया है। जीवनानुभूति से कलात्मक रूप ग्रहण करने की प्रक्रिया कई स्तरों से गुजरती है। आरम्भिक स्तर पर 'जीवनानुभूति' तत्त्व के रूप में रहती है। दूसरे स्तर पर यह व्यक्तिबद्ध दशा का त्याग कर विश्वात्मक बनने की संघर्षयुक्त प्रक्रिया बन जाती है। तीसरे एवं अन्तिम स्तर पर यह अभिनव साक्षात्कार प्राप्त कर आनन्दानुभूति मे परिणित होते हुए, काव्यात्मक रूप ग्रहण करने लगती है।

'मुक्तिबोध' के काव्य की केन्द्रीय अनुभूति का विषय मनुष्य एवं उसका सुख-दुःख भरा यथार्थ जीवन है। 'मुक्तिबोध' का मानव 'सर्वहारा', 'सर्वसाधारण' वर्ग का व्यक्ति है। उनकी अनुभूति में यद्यपि जनवादी स्वर ही अधिक मुखर है, परन्तु उन्होंने इसके क्षेत्र में अन्य किसी काव्यात्मक भावानुभूति का निषेध नहीं किया है। उनके अनुसार सभी भावानुभूति निर्वैयक्तिक यथार्थ एवं सार्वजनिक रूप मे व्यक्त होनी चाहिए, चाहे वह रोमानी हो या कटु-जीवन से तिक्त। वास्तविक यथार्थ की प्राप्ति के लिए 'मनुष्य में गहरे उतरना है, क्योकि समाज को भी व्यापकता से तभी पहचाना जा सकता है, जब मनुष्य में गहरे उतर कर उसके अन्तर्जीवन को विभिन्न

सन्दर्भों के बीच समझा जाए।

अनुभूति और 'फ़ैण्टेसी' का सृजनात्मक क्षण

'मुक्तिबोध' के अनुसार लेखक की वास्तविक अनुभूति, जब अपनी कलात्मक वेदना से युक्त होकर विधात्री कल्पना के माध्यम से अपनी संवेदना को पुनर्रचित करने के लिए उद्यत होती है, तब 'फैण्टेसी' का उदय होता है। यह पुनर्रचना कल्पनात्मक दृश्य के रूप मे कवि के मानस पटल पर उभरती है। इस तरह 'मुक्तिबोध' की दृष्टि से 'फैण्टेसी' काव्य-रचना के हेतु कवि द्वारा 'मन मे तैयार की जाने वाली एवं पूर्ण मानसिक सृष्टि है।' कवि काव्य सृष्टि से पूर्व अपनी अनुभूति को कलात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए विधात्री कल्पना के सहयोग से उसकी एक मानसिक परिकल्पनात्मक रूपरेखा तैयार करता है, यह मानसिक रूप रेखा, जो बिंब के रूप मे उपस्थित होती है, 'फ़ैण्टेसी' है। इस प्रकार यह काव्य की अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में उपस्थित होती है। इसी कारण 'फ़ैण्टेसी' 'अनुभव प्रसूत' होते हुए भी 'अनुभव-बिम्बित' होती है।[12]

'अनुभव-प्रसूत' 'फ़ैण्टेसी' अपना विस्तार करते समय संवेदनात्मक मर्म से संबंधित नए ज्ञान और अर्थ को खोजती है। यह ज्ञान मात्र बौद्धिक नहीं होता बल्कि वह अपनी विवेक क्षमता से उस ज्ञान द्वारा 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना' को और पुष्ट करता है।[13] जिससे अनुभति यथार्थ एवं वैज्ञानिक बनती है।

रचना के लिए प्रेरित करने वाली अनुभूति, प्रेरणा के साथ-साथ उसके समक्ष एक मानसिक द्वन्द्व लेकर भी उपस्थित होती है। यह द्वन्द्व भोक्ता एवं सर्जक के बीच का मानसिक द्वन्द्व है। बाद में एक स्थिति ऐसी भी आती है, जब इसमें एकीभूत संतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी सन्तुलन से आगे का 'सृजनात्मक पथ' प्रशस्त होता है।

कवि अपने द्वारा अनुभूत संवेदना का विस्तार करते समय, काव्य की प्रेरणा एवं प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए, उन्हीं के अनुकूल भावों एवं तथ्यों का चयन करता है। 'मुक्तिबोध' की दृष्टि में- 'फ़ैण्टेसी' कोरी कल्पना को नहीं वरन यथार्थ को होती है आत्मपरक शैली में प्रस्तुत करती है। अतः इसकी सृष्टि में कवि की विवेक प्रक्रिया निहित होती है। इसी कारण 'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' में 'संवेदनात्मक' ज्ञान एवं 'ज्ञानात्मक' संवेदन की सुदृढ़ स्थिति पर

बल देते हैं। स्पष्ट है कि 'फैण्टेसी' मे अनुभूति अपने आत्मविस्तार के द्वारा 'विश्वात्मक रूप' ग्रहण करती है। यही कारण है कि, उसके 'मनोमय दृश्य-बिंब' सदैव मानव एवं समाज के विकासात्मक पक्ष से जुड़े होते हैं।

जर्मन कवि 'गाड फिलिपवेन' ने लिखा है कि, "कोई बाह्य यथार्थ नही होता, केवल मानव चेतना होती है, जो निरन्तर अपनी सृजनात्मकता से नये विश्व की रचना-पुनर्रचना किया करती है।"[14] 'मुक्तिबोध' के लिए यह पूर्ण सत्य है। वे आधुनिक कवि है, अतएव उन पर आधुनिकता की छाप है। 'आधुनिकवाद' मानव चेतना में चलने वाले अनंतहीन नाटक का दृश्य है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दबावों से गुजरने के कारण आज के व्यक्ति की अन्तः चेतना बोझिल और ग्रन्थिल हो गयी है, उसका सहज व्यक्तित्व खो गया है, समूची इन्सानियत के सामने नया प्रश्न खडा हो गया है। आधुनिक कवि चेतना की दलदली गहराइयों मे बैठकर बार-बार प्रयोग और अनुसधान के माध्यम से असलियत की तह तक पहुंचना चाहता है लेकिन अन्दर घुसते ही वह उछाल दिया जाता है या फेंक दिया जाता है। भीतर से निर्वासित इन्सान बाहर से कोई सहारा नहीं पाता है। उसकी बेचैनी बढ़ती जाती है।[15] 'मुक्तिबोध' की परिवर्ती कविताओ मे ये सारी विशेषताएँ पायी जाती हैं। वे जीवन के अन्तहीन नाटक के असंगतिबोध और बेगानगी के एकाकी द्रष्टा रहे हैं, किन्तु उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ (सन् 1935-50), बाद की रचनाओ से पर्याप्त वैषम्य रखती है। 'तारसप्तक' के वक्तव्य में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है।, कि, "मेरे बालमन की पहली भूख 'सौन्दर्य' और दूसरी 'विश्वमानव का सुख-दुःख', इन दोनों का संघर्ष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन था।"[16] सम्भवतः यही कारण है कि प्रारम्भिक रचनाएँ छायावाद से तथा बाद की रचना मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। प्रथम काल की रचनाओं में छायावादी अनुभूति ललित रूझान और कल्पना के विधायक स्वरूपों को भलीभाँति देखा जा सकता है। वे भी छायावादी कवियों की तरह 'प्रेम और सौन्दर्य' के कवि हैं। उनकी अनुभूति उसी रग में रँगी है। 'हृदय की प्यास', 'मरण का संसार', 'पीले पत्तों के जग में', 'विमल धारा', 'कोकिल', 'वेदना और कल्पना'[17] आदि कविताएं इसका प्रतिनिधित्व करती हैं।

द्रष्टव्य है :-

वेदना का कवि बनूँ मैं, कल्पना का मृदु चितेरा।

प्राण मेरे अश्रु बनकर प्रिय ऊषा को देखते हैं,
किन पदों की लालिमा ले आज शोभन दुःख सबेरा?
प्राण वे कब जानते थे अश्रु मे प्रतिबिंब उनका?
निःश्वास बन कर श्वास मे मैंने उन्ही को आज हेरा।
उस देहरी पर प्राण, क्यो किस साध की माला चढ़ाई?
आज जी को तू सुला ले, खुल न पाये भेद तेरा!
आज स्मृति के कण्टको पर रे, खिला नव-कल्पना-सुम
ओस मे रो फूल मे हँस आ वहाँ दे एक फेरा
वेदना मे झूम ले तू कल्पना का बन चित्तेरा।[18]

यह 25 फरवरी सन् 1936 की कविता है। सन् 1940 के बाद 'मुक्तिबोध' की अनुभूति मे धीरे-धीरे परिवर्तन आया और वह छायावाद के केंचुल को छोड़कर कुछ हद तक प्रयोगवाद की चेतना के निकट आ गए हैं। इस काल मे 'मुक्तिबोध' की रचनाओं पर प्रयोगवादी अनुभूति का प्रभाव दिखायी पड़ता है। भाव-सबलता कम हुई और बौद्धिकता बढ़ी है। द्रष्टव्य है—

मै क्या करूँ,
यह स्नेह भी इस प्राण के पाताल से
उगकर खड़ा है
भव्यगुरु अवश्वत्थ-सा;
गम्भीर मादक उच्चता में फैलकर यह वृक्ष
अपने वक्ष से उद्गत सघन-शाखा-प्रशाखा-भार में
गहरा हृदय-विस्तार कर
उठकर, ठठाकर शीर्ष सर्जन-शक्तिमय
वह विश्वसीमा घेरता।
उस प्राण के पाताल से

इस जिन्दगी के दाहमय मैदान की लम्बान मे

निज वक्ष के नीचे

सघन-विश्वास-छायाएँ यहाँ विस्तारता।[19]

'अश्वस्थ' 'मुक्तिबोध' का प्रिय प्रतीक है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' मे सकलित रचनाओ मे इसकी अनेक बार पुनरावृत्ति हुई है। परन्तु यहाँ उसका वर्णन परिवर्नी वर्णन से भिन्न है। यह वर्णन दार्शनिकता को छोड़कर अज्ञेय के किरीट तरू की याद दिलाता है। इस कविता मे उसकी वस्तु और शिल्प दोनो में परिवर्तन आया है। इसका रचनाकाल सन् 1944-48 तक निर्धारित है। यह परिवर्तन 'ओ विराट स्वप्नो' में भलीभाँति फलीभूत हुआ है। 'मुक्तिबोध' की अनुभूति स्वयं मे एक नया आयाम ग्रहण करती प्रतीत होती है। उनका शिल्प परिवर्नी रचनाओ के शिल्प के निकट पहुँच गया है। द्रष्टव्य है—

ओ मानव के विराट् स्वप्नो, देखो

एक तुम्हारे छोटे क्षण के तप्तश्वास से

कितना अन्तर, परिवर्तन द्रुत

यहाँ हो गया।[20]

'बबूल' कविता मे भी उनका मानवीय पक्ष प्रकट हुआ है। सूखे बबूल की तुलना श्रमश्लथ सूखे श्रमिक शरीर से की गयी है। यहाँ 'बबूल' चिरनिर्वासित है, जो जन-जन के निःसीम त्याग का प्रतीक बन गया है। इस काल में भी जो छोटी कविताएँ लिखी गयी है, उनमे प्रगीतात्मक विशेषताएँ विद्यमान हैं। 'गुलामी की जंजीरें टूट जायेंगी' नामक कविता में कवि ने आरम्भ मे ही आजाद हिन्दुस्तान के सपनो को व्यक्त किया है।

गुलामी की जंजीरे टूट सब जायेंगी,

उनको तोड़ देगा मेरा कसा हुआ बाहुदण्ड।

भरे हुए वक्ष पर

उभरे हुए घावो ये लाल-लाल लकीरें,

अनुभव के सहारे

मुझमें भर देंगी नये (खौलते-से) खून की

खिलखिलाती हुई सौ बेचैन जवानियाँ।
मंजिल के लक्ष्य के लिए अकुलाती-सी
मीठी-मीठी सुलगती आग वह
जागेगी आँखो मे सुबह का नूर बन।
गुलामी की जंजीरे जल्दी ही सब टूट जायेगी
उनको तोड़ फेंक देगा
शक्तिशाली मेरा नया बाहुदण्ड।[21]

गुलामी की इन जंजीरो के टूटने के कारण कवि के कमजोरियों की दीवारे भी टूट जायेंगी। कवि के अन्दर कटीले तारो से घिरी हुई लाचारी की दीवारें भी समाप्त हो जायेगी। रूखी जमीन पर सोया हुआ इन्सान जाग जायेगा।[22] 'मुक्तिबोध' की यह आकांक्षा स्वतन्त्र भारत में पूरी नहीं हो पायी, परिणामस्वरूप उनका मोह भंग हुआ और उन्हें मानसिक रूप से तरह-तरह की यातनाओं से गुजरना पड़ा। 'अपने कवि से' नामक कविता में कवि ने मानव-मूल्य और उसकी प्रतिष्ठा को मानव आत्मा की पूर्ण सत्ता दी।[23] उन्होंने 'अपने कवि से' जिन्दगी के द्रोह, 'विद्रोह', 'उद्वेग' और 'उत्ताल' की लम्बी कहानी लिखने का आह्वान किया है। —द्रष्टव्य है—

विह्वल तूर्य की उन्मत्त लहरें
चल रही हैं व्योम
भरकर रोष
लिख चल यह इधर लम्बी कथा
भर चल उधर
निज प्राण का यह नित्य नूतन कोष
मानव-विश्व के बेचैन रंगों भरे इस आकाश से
जिसमे
प्रखर जलते हुए रक्ताभ पथ-सा
बिछ गया है मुक्ति का मृदु लेख
मानव मुक्ति की इतिहास-गाथा - सा[24]

स्पष्ट है कवि मे मानव-मुक्ति की रूझान आरम्भ से ही विद्यमान रहा है, जिसकी चरम-परिणाति उनके परिवर्ती काव्य मे हुई है। इस स्तर पर अनुभूति को अभिव्यक्त करके उस सघर्ष का भी संकेत किया गया है, जिसकी चरम-परिणति 'अँधेरे मे' कविता मे अपनी आत्मसम्भव अभिव्यक्ति पाने के रूप में हुई है —

बहुत दिनो से एक पंक्ति भी नही लिखी,
क्या कहा जाय!
अपने मन के अक्षर गहते-गहते हम कुछ भी पा न सके।
छा गया मेह-कुहरे-सा कुछ,
सब ओर मेह-कुहरे सा कुछ,
आकृतियां सारी समा गयीं, सब बिला गयी।
ऑके कैसे, बल पा न सके,
क्या कहा जाय![25]

'हे प्रखर सत्य दो' कविता मे मानव-जीवन के असंगतिबोध पर प्रकाश डाला गया है। लम्बी कविता की दृष्टि से 'उखड़े कठोर नंगे पहाड़' नामक कविता मे बन्दी मानवना की मुक्ति के लिए आह्वान का स्वर दृष्टिगोचर होता है। 'सत्य के गरबीले अन्याय' नामक कविता मे व्यक्ति को अन्याय के विरुद्ध संघर्षोन्मुख किया गया है। 1950 के बाद की कविताओं मे प्रायः वही स्वर मुखर हुआ है जो 'मुक्तिबोध' की 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की रचनाओं में मिलता है। तरह-तरह की चुनौतियों का सर्जना के धरातल पर सामना करने के कारण उनके व्यक्तित्व मे कई तरह की ऐंठन उत्पन्न होती गयी। बार-बार उनका सामना करते हुए किसी न किसी जटिलता में उलझते प्रतीत होते हैं, दृष्टि से उनका साहित्य विशिष्ट सन्दर्भों का साहित्य है। ये संदर्भ हैं, वे तमाम प्रश्न जिन्हें 'मुक्तिबोध' ने अपने समूचे साहित्य, कविता और कहानी मे उठाया है। 'मुक्तिबोध' की कविता, केवल कविता न होकर ध्वंस भी है।[26]

वह सीधे-सीधे समाज को बदलने का कार्य नहीं करती, पर समाज की विषम स्थितियो मे पड़े हुए व्यक्ति को उसके संकट, बेगानगी और बिलगाव का बोध अवश्य कराती है, जिस आन्तरिक और बाह्य संकट का बोध उनकी कविता से होता है, वह सर्वथा आधुनिक

है। मनुष्य की नियत से जुड़ने के कारण उनकी रचनाओं मे त्रासद अनुभूति के कई आरोह-अवरोह देखने को मिलते है, जहाँ संहार से होते हुए वे आत्मसंहार तक के चित्रण मे लिप्त पाये गये हैं। उनके कविताओ की अनुभूति रैखिक नही, चक्रिल है। इसमें चेनन अचेतन की कई परतें है। अचेतन अनुभूति से उबरने पर भी इस त्रासद अनुभूति से उन्हे मुक्ति नही मिल पाती, अपितु उसका प्रभाव उनके मस्तिष्क मे तब तक चक्कर काटा करता था, जब तक कि वे उसे कोई सामाजिक सदर्भ प्रदान नही कर देते थे। 'मुक्तिबोध' की कविता 'फ़ैण्टेसी' 'भय और त्रास' की कविता है, बेगानगी और बिलगाव की कविता है, पलायन की नही।

'मुक्तिबोध' अनुभूति के यथार्थ से कतराने वाले नही, अपितु संघर्ष करके जीवन-सत्य की तह तक पहुँचने वाले कवि हैं, उनकी अनुभूति का पट अँधेरे से बुना गया है और वे उसके अनन्तव्यापी प्रसार में संघर्षरत दिखायी देते हैं, उसकी अनन्त पर्तों में छिपे सत्य को अनावृत्त करने के लिए निरन्तर कटिबद्ध पाये गये हैं। उनकी कविताओं में अनेक रहस्य-लोकों की सृष्टि हुई है। इसका संकेत 'एक साहित्य की डायरी' में भली-भांति मिल जाता है। 'मुक्तिबोध' लिखते हैं कि – "मुझे लगता है कि भूमि के गर्भ में कोई प्राचीन सरोवर है, उसके किनारे पर डरावने घाट, आतंककारी देव मूर्तियां और रहस्यमय गर्भ कक्षों वाले पुराने मन्दिर हैं। इतिहास ने इस सब को दबा दिया। मिट्टी की तह पर तह, परतो पर परतें, चट्टानों पर चट्टानें छा गयी। सारा दृश्य भूमि में गड़ गया, अदृश्य हो गया और उसके स्थान पर यूकेलिप्टिस के नये विलायती पेड़ लगाये गये, बँगले बना दिये गये। चमकदार कपड़े पहने हुए, खूब-सूरत लड़कियाँ घूमने लगी।"[27] उन्होंने दूसरे स्थान पर लिखा है कि— "मुझे लगता है कि मन एक रहस्यलोक है, उसमें अँधेरा है, अँधेरे में सीढ़ियाँ है। सीढ़ियाँ गीली हैं। सबसे निचली सीढ़ी पानी से डूबी हुई है। वहाँ अथाह काला जल है, उस अथाह जल से स्वयं को ही डर लगता है। इस अथाह काले जल मे कोई बैठा है, वह शायद मैं ही हूँ। अथाह एवं एकदम स्याह अँधेरे पानी की सतह पर चॉदनी का चमकदार पट्टा फैला हुआ है, जिसमे मेरी ही आखे चमक रही हैं, मानो दो मूंगिया पत्थर भीतर से उद्दीप्त हो उठे हैं।"[28] अँधकार, रहस्यमय अंधकार और उसकी कोख मे पलती अनन्त रहस्यमय 'फ़ैण्टासियों का दर्शन प्रायः उनकी हर कविताओं में होता है। डायरी में प्रस्तुत दिवास्वप्न की ही तरह की अभिव्यक्ति 'ब्रह्मराक्षस', 'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग-उटाँग',

'चॉद का मुँह टेढ़ा है', 'चम्बल की घाटी मे' और 'अँधेरे मे' हमने देखा है।

अँधकार 'मुक्तिबोध' क़ो क्यो प्रिय है? इसका कारण आसानी से जाना जा सकता है। यह अँधकार व्यष्टि का ही नही समष्टि का अँधकार है जिससे 'मुक्तिबोध' का जीवन ही नही समूचे भारतवर्ष का जीवन आच्छादित है, अॅधकार अपने मूलरूप मे टेरर त्रास अथवा भय का जनक होता है। यह भय मनोवैज्ञानिक भी है, लेकिन 'मुक्तिबोध' के जीवन मे सद्-असद् के संघर्ष के कारण उत्पन्न हुआ है। स्वतन्त्र भारत मे असद् इतना व्यापक हो गया है कि उसमे 'मुक्तिबोध' जैसे अकेले व्यक्ति का संघर्ष कर पाना सरल नही था। ऐसे व्यक्ति का टूटना, बिखरना स्वाभाविक था। उनका आवश्यकता से अधिक अन्तर्मुखी हो जाना सहज स्वीकार्य है।

'हरिशंकर परसाई' के शब्दों में "वे संत्रास मे जीते थे, आजकल संत्रास का बहुत दावा किया जा रहा है मगर 'मुक्तिबोध' का एक चौथाई तनाव भी कोई झेलना तो उनसे आधी उम्र मे ही मर जाता।"[29] 'मुक्तिबोध' ने प्रायः सभी कविताओं में त्रासद और भयग्रस्त अनुभूति का चित्रण किया है। इस संदर्भ में विलगाव, बेगानगी को विशेष रूप से प्रश्रय दिया हैं। यह प्रक्रिया अपने वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी स्तरों पर उनमें देखने को मिलती है।

आज की सभ्यता के क्रोड़ में पलने वाले असंगतिबोध और विरोधाभास का 'मुक्तिबोध' ने बड़ा सजीव चित्रण किया है। यह एक तरह से समाज की शल्य चिकित्सा के समान है। इस खोखले-पन के चित्रण से सामाजिक यथार्थ को एक नयी दिशा मिली है। कुछ लोगों ने इसे अस्तित्ववादी प्रभाव अथवा अतियथार्थवादी प्रभाव का प्रतिफल कहा है। पर यथार्थ मे यह उनकी व्यक्तिगत चेतना पर पड़ने वाले शोध का परिणाम है। अधिकांश कविताएँ ऐसे सास्कृतिक विकृति से भरी पड़ी है। 'मुझे याद आते हैं' कविता में 'मुक्तिबोध' ने इसका बड़ा सजीव चित्रण किया है।

> पावडर में सफेद अथवा गुलाबी
> छिपे बड़े-बड़े चेचक के दाग मुझे दिखते हैं
> सभ्यता के चेहरे पर।
> संस्कृति के सुवासित आधुनिकतम वस्त्रो के
> अन्दर की बासी वह

नग्न अति बर्बर देह
सूखा हुआ रोगीला पंजर मुझे दिखाता है।
एक्सरे की फोटो में रोग-जीर्ण
रहस्यमयी अस्थियो के चित्र-सा विचित्र और
भयानक।[30]

'डूबता चॉद कब डूबेगा' मे बीमार समाज मे, गर्भपात की तेज दवा देने, कराहते गर्भो से मृत बालक के पैदा होने, शोषण के वीर्य बीज से विद्रूप सभ्यताओ के लोभी संचालकों के उत्पन्न होने, मानव की आत्मा का हनन करने वाले राक्षस बालको के पैदा होने का उल्लेख किया गया है,[31] जिसका परिणाम भयंकर हुआ।

यथार्थ में हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में 'निराला' "मुक्तिबोध" और 'धूमिल' की वृहत्रयी ने ही जीवन के दुःखों से साक्षात्कार कर उनके महत्त्वपूर्ण तथ्यो को ग्रहण किया है। 'मुक्तिबोध' के अधोलिखित शब्द उसके ज्वलन्त प्रमाण हैं -

जो गहन अग्नि के अधिष्ठान
हैं प्राणवान
मै बीन रहा उनको
देख तों
उन्हें सभ्यताभिरूचि विवश छोड़ जाता हैं
उनसे मुँह मोड़ जाता है।[32]

उन्हीं सभ्यता के परित्यक्त लोगों से मुँह न मोड़ने के कारण 'मुक्तिबोध' विषम स्थिति में पहुँच गए हैं —

जम नहीं किसी से पाते हम
फिट नहीं किसी से होते हैं.....
मानो असंग की ओर यात्रा असंग की
वे लोग जो बहुत ऊपर-ऊपर चढ़ते हैं
हम नीचे-नीचे गिरते हैं
तब हम पाते हैं वीथी सुसंगमय उष्मामय।[33]

'मुक्तिबोध' का यह मिसफिट होने का भाव, उनके साहित्य मे मिसफिट होने और समाज मे मिसफिट होने का आत्म वक्तव्य है।

संत्रास, विलगाव, अवसाद रिक्तता, खोखलेपन आदि को अभिव्यक्ति प्रदान करने के कारण अधिकाश आलोचको ने यह आम धारणा बना ली है कि 'मुक्तिबोध' मे मानवीय तत्त्व विरल है, पर यह बात सही नही है। 'मुक्तिबोध' की मनुष्य मात्र पर आस्था है। 'मुक्तिबोध' मनुष्य मात्र की महाकाव्यात्मक पीड़ा से परिचित ही नहीं, अपितु उसके प्रति समर्पिन भी हैं। यही समर्पण उनकी एक मात्र प्रतिबद्धता है। उन्होने जीवन को उसके नंगे रूप में देखा है और उसका व्यक्तिगत अनुभव भी किया इसी कारण कविताओ मे उनके व्यक्तिगत जीवन की त्रासद अनुभूति भी व्यक्त हुई है —

> आज के अभाव व कल के उपवास के
> व परसो के मृत्यु के ......
> दैन्य के, महा अपमान के व क्षोभपूर्ण
> भयंकर चिन्ता एक उस पागल यथार्थ का
> दीखता पहाड़.......
> स्याह।[34]

'मुक्तिबोध' ने जीवन के अन्तः में प्रवेश करके मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि से अमूल्य अनुभवो को एकत्रित किया है। इस संघर्ष में उन्हें सुख की तुलना में दुःख का साक्षात्कार ही अधिक करना पड़ा है। उनके संघर्षशील विचारों का जो उत्तप्त प्रवाह पैदा हुआ है, उससे उनमे यथार्थ के प्रति विशेष ललक जमीं है। उनका यह यथार्थ मानव यथार्थ है, जिसकी धूप-छाया से उनकी समूची कविता रंगी है। यही यथार्थ उनमें मनुष्यमात्र के प्रति स्नेह को प्रखर करता है, विशेष रूप से शोषितो के प्रति। वे जहाँ पर शोषितों का चित्र प्रस्तुत करते है, वहॉ उसमें चार-चाँद लग जाता है। उन चित्रों में गतिमान यथार्थ के ग्रहण करने की अप्रतिम क्षमता है —

> उर में संभाले दर्द
> गर्भवती नारी का

कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से,

कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़

घर के काम, बाहर के काम सब करती है

अपनी सारी थकान के बावजूद

मजदूरी करती है

घर की गिरसी के लिए ही

पुत्रों के भष्विय के लिए सब।[35]

उनके चित्रण मे जन-जीवन का सामान्य पक्ष भी विशेष रूप से उद्घाटित हुआ है। ऐसे स्थलो पर उनकी विधायक कल्पना यथार्थ के विविध स्वरूपो को उद्घाटिन करने मे विशेष समर्थ होती है -

धुँधलके में खोए इस

रास्ते पर आते-जाते दिखते हैं

लठ-धारी बूढ़े-से पटेल बाबा

उँचे-से किसान-दादा

वे दाढ़ीधारी-देहाती मुसलमान चाचा और

बोझा उठाए हुए

माएँ, बहनें, बेटियाँ ....

सबको ही सलाम करने की इच्छा होती है,

सबको राम-राम करने को चाहता है जी

आसुँओं से तर होकर प्यार के

(सबका प्यारा पुत्रबन)

सभी का ही गीला-गीला, मीठा-मीठा आशीर्वाद

पाने के लिए होती अकुलाहट।[36]

'मुक्तिबोध' ने पीड़ित, शोषित लोगों का चित्रण बड़े ही सहानुभूति पूर्वक किया है, साथ ही इस दुरावस्था पर कवि को विशेष आक्रोश भी है, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी अनेक

कविताओ में हुई है। उनका यह आक्रोश अन्य कवियो से भिन्न है क्योंकि इसके साथ समूचा व्यक्तित्व आन्दोलित हो उठता है। 'ओ काव्यात्मन फणिधर' कविता में इसका उल्लेख विशेष रूप से हुआ है। यथास्थान 'मुक्तिबोध' ने प्रकारान्तर से इससे मुक्ति के लिए क्रान्ति का आह्वान भी किया है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' मे पोस्टर चिपकाने की बात करते हैं, जिसे पढ़कर लोगों मे चेतना उत्पन्न होगी और वे अपनी मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर होगे। इस मुक्ति का आह्वान 'एक भूतपूर्व विद्रोही की आत्मकथा' 'मुझे याद आते हैं' 'ओ काव्यात्मन फणिधर' आदि कविताओ मे करते हैं।

'अँधेरे मे' कविता में इसी क्रान्ति का चित्र कवि प्रस्तुत करता है।

राह के पत्थर ढ़ोको के अन्दर
पहाड़ों के झरने
तड़पने लग गये।
मिट्टी के लोंदे के भीतर
भक्ति की अग्नि का उद्रेक
भड़कने लग गया
धूल के कण में
अनहद नाद का कम्पन
खतरनाक!![37]

क्रान्ति का यह चित्र आगे बढ़ रहा है और उसकी पीड़ा अबाध गति से चल रही है। 'मुक्तिबोध' उसका चित्रण करने के लिए प्रतिबद्ध पाये गये हैं। उनकी लेखनी से इसके अनेक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।

'मुक्तिबोध' का जीवन और अनुभूतियाँ

'मुक्तिबोध' का बचपन बहुत सुखकर वातावरण में व्यतीत हुआ। ज्येष्ठ पौत्र होने के कारण, उनके पितामह उन पर विशेष स्नेह भाव रखते थे। उनके काव्य में बृद्ध व्यक्तियों के प्रति सम्मानभाव सम्भवतः इसी कारण देखने को मिलता है। पुलिस इन्सपेक्टर पिता के साथ रहने के कारण उन्हें जेल, कैदी, क्रान्तिकारी एवं सत्तापोशी अधिकारी वर्ग को करीब से देखने,

जानने का अवसर मिला। नए अज्ञात स्थान, रहस्यमय वातावरण, एकान्त खण्डहर, रात्रि एवं अधकार के प्रति विशेष आकर्षण उनके घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण था। प्रकृति की एकान्तता, रहस्यमयता उनके अन्दर जिज्ञासा और आकषर्ण पैदा करती थी। उन्होंने लिखा है कि "जब हम हाईस्कूल मे थे, केशव मुझे निर्जन अरण्य-प्रदेश मे ले जाता। हम भर्तृहरि की गुहा, मछिन्दरनाथ की समाधि आदि निर्जन किन्तु पवित्र स्थानो पर जाते थे।"[38] कोई भी अध्येता 'मुक्तिबोध' के 'फैण्टेसी' सृजन में उनकी इस प्रवृत्ति की भूमिका का आसानी से अनुमान लगा सकता है।

'मुक्तिबोध' के जीवन का पूर्वार्ध जितना सुखमय था, उत्तरार्ध उतना ही कष्टमय। अन्तर्जातीय प्रेम विवाह के कारण उन्हे पारिवारिक विरोधो का सामना करना पड़ा। बी०ए० के बाद उन्होने अध्यापक की नौकरी की, इसके बाद भी कई छोटी-बड़ी नौकरियाँ की, परन्तु नौकरशाही व्यवस्था ने उन्हे कही भी अपने को व्यवस्थित करने का अवसर न दिया। साहित्य के क्षेत्र मे नवीन दृष्टिकोण रखने तथा उच्चकोटि का साहित्य रचने की इच्छा ने, उन्हे प्रकाशको से समझौता न करने दिया। वे आत्मा की आवाज सुनते, समझते एवं लिखते रहे। बड़े उद्योगपतियो के बीच रहकर उन्होंने उनके अनुसार कार्य नहीं किया। जिसका पुरस्कार उन्हें अभावग्रस्त जीवन मिला।

मध्यवर्गीय जीवन, आस-पास के वातावरण और परिवेश से प्राप्त अनुभव और संवेदना उनके अन्तर में संचित होती रही और जीवनानुभूति बनकर उनके काव्य में व्यक्त हुई। इस सन्दर्भ में उन्ही के शब्द उद्धृत हैं - "मैं उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से हूँ, जिसे अपने गली-कूचे में रहने वालो का स्नेह प्राप्त हुआ। वे मेरी ही भांति छोटी-छोटी हस्तियाँ हैं। किन्तु उनके पेंचीदा संघर्ष, अथाह प्रेम करने का उनका हार्दिक सामर्थ्य और बौद्धिक जिज्ञासा के साथ ही साथ, उनकी साहसिक पहल, उनकी रोमैण्टिक कल्पना, उनकी राजनैतिक आशा, आकांक्षाएं, उनके समान नैतिक स्वप्न, मेरे चारों ओर चक्कर लगाने लगे। मेरी परिस्थिति अब विस्तृन हो गयी, वह फैलकर मैदान बन गयी, मैदान बनकर फैलती, अब पूरी पृथ्वी बन गयी। मेरी चहारदीवारी, अब पीछे-पीछे हटने लगी और छितिज में विलीन होती हुई दिखायी दी। चेहरा अब सुंदर हो उठा। मनोहर ज्योति से चमकती आँखे अब मुझसे बातचीत करने लगीं। उसमें से एक अरुण दीप्तिमान मुख ने मेरे व्यक्तित्व पर लगे हुए जमाने से रहे सहे कीचड़ को भी धो

डाला। मैं एक बारगी मुक्त और स्वतन्त्र हो उठा। यह एक नया जीवन्त वास्तव था, इस वास्तव मे सघर्षशील मनुष्य की अनगिनत परिस्थितयाँ, मनः स्थितियाँ और वस्तु स्थितियाँ थी। उन्हें कुछ व्यापक सामान्यीकरणो मे ढ़ालकर काव्यरूप देने की आवश्यकता थी। मैंने उस दिशा में शक्तिभर कोशिश की है, प्रदीर्घ कविताएँ उसी की उपज है।''[39] उपरोक्त वक्तव्य से उनकी अनुभूति और विश्वात्मक दृष्टिकोण विषयक धारणा स्पष्ट होती है।

'मुक्तिबोध' ने अपने लघु जीवन मे अध्यापन, सम्पादन, पत्रकारिता, रेडियो स्टेशन मे नौकरी की पत्रकारिता के क्रम मे श्रमिक और पूजीपतियों के बीच होने वाले संघर्ष को उन्होंने देखा। नागपुर एम्प्रेस मिल के मजदूरो पर पुलिस का दमन चक्र चल रहा था, उस समय पत्रकार के रूप मे वहाँ उपस्थित थे। स्वयं गोली चलते, मजदूरों को घायल होते, सिर फूटते, खून बहते देखा था। इन घटनाओ ने उनके अन्तर्मन मे गरीब सामान्य जन एवं श्रमिक वर्ग के प्रति संवेदना को और पुष्टि दी। शायद इन्हीं सब बातो ने 'मुक्तिबोध' के मन में मार्क्सवादी दर्शन के प्रति और श्रद्धा जगायी।

'मुक्तिबोध' ने अपने जीवन के कटु यथार्थ से कभी भी पराजय नहीं स्वीकार की। यह उनके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है कि भयानक विषम परिस्थितियों में भी अनवरत सच्ची साहित्य साधना में लगे रहे। जीवन जीने और साहित्य साधना करने के लिए उन्होंने निर्द्वन्द भाव से अपना एक पक्ष चुन लिया और आजीवन उस कठिन मार्ग पर बिना विचलित हुए संघर्ष करते रहे। उनकी- 'भारत इतिहास और साहित्य नामक पुस्तक' सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी। उन्हे जान से मार देने व शारीरिक क्षति पहुँचाने की धमकी भी मिली।

पुस्तक पर लगे प्रतिबन्ध और राजनीति के छुट-भैयों से मिली धमकियो ने उन्हें मर्माहत किया। 'अँधेरे में' कविता उनकी वेदनाओं की ही परिणति है। यह कविता सबसे प्रदीर्घ है और वर्तमान युग परिवेश के संत्राश का पूरी तरह सशक्त रूप मे चित्रण करती है।

आर्थिक-सामाजिक, राजनैतिक स्तर पर भयंकर दुर्दान्त संघर्ष को झेलने वाले 'मुक्तिबोध' ने, आम जनता को भी इसी जीवन संघर्ष की दुर्दान्त स्थिति से जूझते पाया था। अतः वे जन सामान्य के पक्षधर बने रहे। उनके भावुक मन ने अपनी काव्यात्मक वेदना यहीं से ग्रहण किया। यही उनकी जनवादी रूझान का आधार भी है।

'मुक्तिबोध' ने अपने साहित्य लेखन के संबंध मे कुछ आत्म-वक्तव्य दिया है, जो उनकी रचना-प्रक्रिया और अनुभूति पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। तारसप्तक के वक्तव्य मे उन्होंने लिखा है —

"मेरे बाल मन की पहली भूख सौन्दर्य और दूसरी विश्व मानव का सुख-दुःख इन दोनो का संघर्ष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी। इसका स्पष्ट और वैज्ञानिक समाधान मुझे किसी से न मिला। परिणाम था कि इन अनेक आन्तरिक द्वन्द्वों के कारण एक ही काव्य विषय नहीं रह सका।"[40]

उन्होने पुनः लिखा है "काव्य को व्यापक करने की, अपनी जीवन सीमा से उसकी सीमा को मिला देने की चाह पुर्निवार होने लगी और मेरे काव्य का प्रवाह बदला।"[41]दार्शनिक प्रवृत्ति-जीवन और जगत के द्वन्द्व, जीवन के आन्तरिक द्वन्द्व इन सबको सुलझाने की और एक अनुभव सिद्ध व्यवस्थित तत्त्व प्रणाली अथवा जीवन-दर्शन आत्मसात कर लेने की, दुर्दम प्यास मन मे हमेशा रहा करती। आगे चलकर मेरी काव्य की गति को निश्चित करने वाला, सशक्त कारण यही प्रवृत्ति थी।"[42]

यद्यपि 'मुक्तिबोध' ने अपने जीवनानुभव एवं स्वाध्याय से प्राप्त अनुभव ज्ञान के योग से तथा बौद्धिक एवं वैज्ञानिक रीति से अपने काव्यात्मक पथ को पद्धतिबद्ध तरीके से विकसित किया था, परन्तु वे इससे संतुष्ट नहीं थे, उन्हे विकास के उर्ध्वगामी पथ पर उन्नत-जीवन प्रकाश की तलाश थी। उन्होंने लिखा है— "यहाँ यह स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं कि मेरी हर विकास स्थिति मे मुझे घोर असन्तोष रहा है, मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है। यह मैं निकटता से अनुभव करता आ रहा हूँ कि जिस भी क्षेत्र में मैं हूँ, वह स्वयं अपूर्ण है और उसका ठीक-ठीक प्रकटीकरण भी नहीं हो रहा है। फलतः गुप्त अशान्ति मन के अन्दर घर किए रहती है।"[43]

'मुक्तिबोध' के जीवन-अनुभवों को देखने से ज्ञात होता है कि उसमें कहीं सीधा या सपाट कुछ भी नहीं है, जो है वह खुरदुरा, ऊबड़-खाबड़, कठोर-यथार्थ, द्वन्द्व, जीवन और अनुभव के विविध झंझावतों से परिपूर्ण है और यही उनके काव्य को प्राणवान बनाता है। तभी तो कहते हैं - "मेरी ये कविताएँ अपना पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति है। उनका

सत्य और मूल्य उसी जीवन स्थिति मे छिपा है।''[44]

काव्यानुभूति एवं 'फ़ैण्टेसी'

'मुक्तिबोध' ने अर्जित जीवनादर्श, मूल्यवान एवं विकासवान जीवन तथ्य तथा मर्माहत जनमानस की वेदना, स्ववेदना को सम्प्रेषित करने के लिए 'फैण्टेसी' का उपयोग किया है। उनकी ये अनुभूतियाँ जो 'फैण्टेसी' मे अभिव्यक्त हुई है, अपने स्वप्निल काल्पनिकता के आवरण मे वास्तविकता और यथार्थ को समेटे है,। उनके काव्य के अध्येताओ ने अनुभव किया होगा कि, जिन कविताओं को यथार्थ अनुभूति और 'फ़ैण्टेसी' का संस्पर्श मिला, वे विशेष प्रखर और जीवन्त बन गई।

'मुक्तिबोध' का काव्य विषय मनुष्य एवं उसके जीवन से संबंधित तत्त्व है। 'मुक्तिबोध' ने मनुष्य को मनुष्य के रूप में समझने का प्रयास किया। उन्होने अपने आत्मसंघर्ष में मनुष्य मे निहित उसकी मनुष्यता एवं उसके मानवीय कर्त्तव्यों के अन्वेषण का प्रयास किया है। 'मुक्तिबोध' ने आत्मा को आध्यात्मिक धरातल पर नहीं ग्रहण किया है। उनके आत्मा का अभिप्राय उस मानवीय विराट-चेतना से हैं, जिसमें मानव कल्याण, मानव उत्थान एवं मानव हित विद्यमान है। उनकी आत्मा अपने समग्र अर्थो में मानव सत्ता से जुड़ी है। उसमें देवत्व का प्रतिस्थापन नहीं है। मनुष्य को उसकी अच्छाइयों और बुराइयो के बीच देखने का प्रयास किया है। यही कारण है कि उनकी कविता मे प्राचीन परम्परा से अलग विद्रूपता, निराशा, तिरस्कास, ग्लानि आदि भावानुभूतियो की अभिव्यंजना मिली है। उनके अनुभूति का मुख्य केन्द्र मनुष्य और समाज का यथार्थ है। समाज और युग की असंगति, मूल्य-विघटन, मनुष्य के दो वर्ग, मनुष्य एवं समाज के बीच संघर्ष, मनुष्य-मनुष्य के बीच संघर्ष (वर्गीय संघर्ष), मनुष्य के अन्दर छिपे राक्षसी प्रवृत्ति एवं कमजोरियों से संघर्ष उसके मानसिक द्वन्द्व से संघर्ष (पक्षधरता के लिए) उनकी अनुभूति का केन्द्र है। विकासवान मूल्य चेतना एवं मानववादी आदर्श की प्राप्ति एवं प्रसार के लिए संघर्ष के चित्रो को उनकी रचनाओं मे मुखर अभिव्यक्ति मिली है।

1. समसामयिक यथार्थ

'मुक्तिबोध' अपने युग यथार्थ के प्रति पूर्ण सचेत रहे। उन्होंने देखा कि पूरा का पूरा

समाज और उसकी व्यवस्था विसंगतियो से युक्त है समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, समझौता परस्ती तथा एक वर्ग विशेष के तानाशाही रवैये के सम्मुख योग्य प्रतिभावान व्यक्ति एक तरह से असहाय एवं विवश है। स्वतंत्रता के पहले शासक वर्ग द्वारा भारतीय समाज की व्यवस्था को जिस प्रकार से तोड़ा-मरोड़ा गया, उसे क्षति पहुंचायी गयी वह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सुधर न सकी। शासको की भ्रष्ट मनोवृत्ति एवं असवरवादिता के कारण वह और भी जर्जर होती गयी। हम अपने परम्परागत विश्वबन्धुत्व के भाव को भूल गये। हमारे आपसी संबंध मर गये। मनुष्यता क्रमशः मरती रही और त्वरित उन्नति के लिए स्वार्थवृत्ति क्रमशः अपने चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर होती रही, समाज में मनुष्यता के स्थान पर पशुता बढ़ने लगी। वर्तमान युग के इस संत्रास को कवि ने 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से जगह-जगह पर व्यक्त किया है।

अधियारे मैदानो के इस सुनसानो मे
बिल्ली की, बॉधो की आँखो-सी चमक रही
ये राग-द्वेष-ईर्ष्या-भय-मत्सर की आँखे।
हरिया तूता की जहरीली नीली-नीली
ज्वाला कुत्सा की आँखों में
ईर्ष्यारूपी औरत को मूँछ निकल आयी
इस द्वेष-पुरुष के दो हाथों/के चार और पंजे निकले
मत्सर को ठस्सेदार तेज दो बौद्धिक सींग निकल आये
स्वार्थी भावो की लाल-लाल/बेचैन चीटियों को सहसा
अब नये पंख निकले-निकले/अँधियारे बिल मे झाँक रहे
सर्पों की ऑखे तेज हुई/अब अहंकार उद्विग्न हुआ
मानव के सब कपड़े उतार/वह रीक्ष एकदम नग्न हुआ
ढूंढ़ों पर बैठे घुग्घू-दल/के नेत्र-चक्र घूमने लगे।
इस बियावान के नभ में सब/नक्षत्र वक्र घूमने लगे।[45]

इस प्रसंग में 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से बताया गया है कि मनुष्य के अन्दर की अमानवीय वृत्ति, मूल्यहीनता, स्वार्थवृत्ति, कुव्यवस्था के वातावरण में कितनी गति के साथ अपना

विस्तार कर रही है, मुष्य मनुष्यता छोड़कर पशु होता जा रहा है। इस भ्रष्टाचार के वातावरण में सभी सत्य,विभ्रम बनते जा रहे हैं।

'मुक्तिबोध' को सम्पूर्ण समाज मे दो वर्ग दिखाई देते है एक वह जिनके पास प्रभुत्व एवं अर्थ है। वह अपनी सामर्थ्य का प्रयोग कर दूसरे वर्ग का शोषण करता है। दूसरे वर्ग के पास साधन नही, अतः वह दलित एवं शोषित होकर जा रहा है। 'मुक्तिबोध' मानते है कि "भारत के उच्चतर वर्ग नैतिक रूप से मृत हो गये हैं।"[46] शोषक पूंजीवादी संस्कृति से संबंधित है। यह मानव सस्कृति के उत्थान एवं विकास में बाधक है। इसलिए उनका विनाश अवश्यम्भावी है। ये विद्रूप सामाजिक व्यवस्था और विकृत संस्कृति को जन्म देते हैं। अपने लोभ-लाभ के कारण बुद्धिजीवियो का एक बड़ा वर्ग उनके निर्देशानुसार कार्य करते हुए उनके विचारधारा की सुरक्षा में लगा है। वह इनके अनुरूप विषय चेतना को सृजित करते हुए सत्य को दमित करने का प्रयास करता है। 'अन्तःकरण का आयतन' कविता मे कवि ने 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से इसी तथ्य को व्यक्त किया है —

'प्रतापी सूर्य है वे सब प्रखर जाज्वल्य
पर यह क्या
अँधेरे स्याह धब्बे सूर्य के भीतर बहुत विकराल
धब्बो के अँधेरे विवर-तल मे से
उभरकर उमड़कर दल बाँध
उड़ते आ रहे हैं गिद्ध
पृथ्वी पर झपटते हैं!
निकालेंगे नुकीली चोंच से आँखे,
कि खाएँगे हमारी दृष्टियाँ ही वे।[47]

यहाँ शोषक वर्ग के स्वार्थ एवं भ्रष्टाचार का समर्थन करने वाली विचारधारा को गिद्ध के द्वारा दर्शाया गया है, जो सत्य का समर्थन करने वालों, प्रगतिशील विचारधारा रखने वालों को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। 'अँधेरे-विवर-तल" शोषक वर्ग के लिए आया है।

बुद्धिजीवियों का एक बड़ा वर्ग जो जनता को सही नेतृत्व दे सकता था, वह भी इन

(जनता की स्वतन्त्रता के विरुद्ध षड़यन्त्र करने वाले) षड़यंत्रकारियो के साथ मिल गया है। 'एक स्वप्न कथा', 'अँधेरे मे', 'एक प्रदीर्घ कविता' मे आये 'फैण्टेसी' जुलूस मे ये एक साथ देखे जा सकते हैं ये अधिक विश्वसनीय नही है, क्योकि ये अपने लोभ-लाभ को लेकर चलते हैं, इनमे दृढ़ता और आत्मबल नही है 'जिससे क्रान्ति के दौरान इनकी नपुंसक आस्था गटरो मे जा छिपती है'।[48] बुद्धिजीवी गुलामो का 'इस नगरी मे' कविता मे सुंदर चित्रण हुआ है। कुछ स्वेच्छा से बिकते है, कुछ खरीदे जाते हैं, और कुछ पर शक्ति प्रयोग द्वारा काबू पाने का प्रयास किया जाता है।

2. राजनैतिक बोध

आजकल की सत्ता व्यवस्था पूर्णतया स्वार्थन्धता पर आधारित है। वह अपनी प्रभुसत्ता बनाए रखने के लिए सत्य की विकृत एवं पतित परिभाषाएँ प्रस्तुत करने मे संकोच नहीं करती। उसे मनुष्य और समाज की कोई चिन्ता नहीं। उसका पूरा दर्शन एवं सिद्धान्त उसके मैं पर आधारित है। 'एक प्रदीर्घ कविता', 'चम्बल की घाटी मे', 'अँधेरे मे', 'चाँद का मुँह टेढ़ा हैं', 'लकड़ी का रावण', 'एक स्वप्न कथा', 'चकमक की चिनगारियाँ' आदि कविताओं में इस सत्ता की कुव्यवस्था को 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

'बुद्धिजीवियों का एक बड़ा वर्ग आततायियों के साथ मिला है, वे उनके द्वारा रटायी सिद्धान्तावलियाँ बॉचते हैं, उन्ही के इशारे पर जन-सामान्य के शोषण और दमन मे भाग लेते है।[49] पूँजीपतियो, सत्तापोषियो तथाकथित बुद्धिजीवियों का आपस में गहरा संबंध है। समाज की अवनति के लिए ये सभी समान रूप से जिम्मेदार हैं। ऐसा 'मुक्तिबोध' का मानना है।ये सत्ता पोषित बुद्धिजीवी बहुत ही सुनियोजित पद्धति से अपना षडयंत्र फैलाते हैं। ऊपर से सफेदपोश बनकर जन को भ्रमित करते हैं। उच्च कोटि के राजनीतिज्ञों के आदर्शों एवं सिद्धान्तों की गलत परिभाषाएँ करते हुए अपने स्वार्थ की सिद्धि में जुटे रहते है। कई कविताओं में कवि ने इनका उल्लेख किया है। 'ब्रह्मराक्षस' के रूप में 'गाँधी जी की टूटी चप्पल' पहने हैं-

मानव की आत्मा में सहसा कुछ दानव और निकल आये
मानव-मस्तक में से निकले
कुछ 'ब्रह्मराक्षसों' ने पहनी
गांधी जी की टूटी चप्पल।[50]

'चॉद का मुँह टेढ़ा है' कविता मे 'फैण्टेसी' वातावरण रचते हुए कवि ने दो पात्रो की परिकल्पना 'घुग्घू एव उलूक' के रूप मे की है। इनका प्रयोग सत्तापोषितो के पर्याय के रूप मे किया गया है। गांधी और तिलक के सिरों पर बैठे दोनो घुग्घू एक दूसरे से अपने काले कारनामो की चर्चा करते हैं। तिलक और गांधी के सिरपर घुग्घूँ का बैठना इस बात का परिचायक है कि ये अपनी चाले इन दोनो राजनीतिज्ञो की ओट लेकर चल रहे है।

'गांधी के सिर पर बैठे उलूक ने
कहना शुरु किया
"---------मसान मे------।मैंने भी सिद्धि की
देखो, मूँठ मार दी मनुष्यों पर इस तरह---"
तिलक के पुतले पर बैठे हुए घुग्घू ने
देखा कि सचमुच भयानक लाल मूँठ
काले आसमान मे तिर रही,
किसी लाल दीये-सी, काली-काली
हवाओं में तैर रही।
धीरे-धीरे जा रही,
उसे देख, बहुत-बहुत प्रभावित
हुआ वह, उसने कहा-"वाह-वाह
रात के जहाँपनाह,
इसलिए आज कल
दिन के ऊजाले मे भी अँधेरे की साख है
इसीलिए संस्कृति के मुख पर
मनुष्यों की अस्थियों की राख है
जमाने के चेहरे पर
गरीबों की छातियों की खाक है।।
वाह-वाह।।"

पी गया आसमान

अँधियाली सचाइयाँ घोट के,

मनुष्यो को मारने के खूब है ये टोटके।'[51]

'मुक्तिबोध' के राजनीतिक अनुभव की पृष्ठभूमि ऐसी सत्ताव्यवस्था मे जुड़ी है, जो निहायत चालाक बेहद आततायी, और क्रूर है। जिसके आतंक व्यवस्था का मूल्य कर्फ्यू और मार्शल-लॉ है।

'मुक्तिबोध' की अधिकांश कविताएँ राजनीतिक यथार्थ को उद्घाटित करती हैं। यह राजनीति समाज को ही प्रभावित नहीं करती, वरन् अर्थव्यवस्था, साहित्य और संस्कृति को भी प्रभावित करती हैं। सत्तापोषक छिपकर षडयंत्र रचते हैं। परन्तु उनका एक ही अभीष्ट होता है और वह है स्वार्थ सिद्धि। अतः अपनी योजना असफल होते देख वे खुलकर सामने आ जाते हैं। 'चम्बल की घाटी' में कविता में इन्हे 'यातुधान' कहा गया है। इनकी प्रवृत्ति को स्पष्ट करने और अपने कथ्य को सही अभिव्यक्ति देने के लिए यातुधान जैसे 'फ़ैण्टेसी' पात्र का प्रयोग सार्थक है। ये अमानवीय पात्र अपने गुणधर्म से सत्ता पोषकों से बहुत कुछ साम्य रखते हैं-

'लेकिन यह सच है कि

छलनाएँ असफल होते हुए देखकर

इन्द्रजाल त्याग वह

खुलकर काम करे

कभी-कभी सामने भी आ जाएँ

दस्यु ही बन जाए

हथियार-कारखाने चुपचाप

कायम करे, गिरोह बनाये और

आतंक फैलाये।।'[52]

3. पूँजीवाद

पूँजीपतियों का सत्तापोषित राजनेताओं से गहरा संबंध है। वे साम्राज्यवाद के प्रबल समर्थक हैं। प्रायः पूँजीपति वर्ग ही सत्ता में प्रवेश करता है। पूँजीपतियों के प्रत्येक संबंध एवं

सिद्धान्त व्यापारिक होते हैं। 'मुक्तिबोध' समाज और मनुष्य दोनो की दुर्गति के लिए पूँजीपतियो को दोषी ठहराते हैं। 'अँधेरे मे', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'चम्बल की घाटी में', एक स्वप्न कथा', 'चकमक की चिनगारियाँ', 'आ काव्यात्मन फणिधर' आदि कविताओ मे इसी काव्यानुभूति को 'फैण्टेसी' के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

पूँजीवाद एवं पूँजीपतियो की दुर्नीतियो के कारण, उसके और सामान्य जनता के बीच की दूरी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। गरीब और गरीब बनते जा रहे है। अमीर दिनोदिन और अमीर बनते जा रहे है। मानवीय मर्यादाएँ और रिस्ते महत्त्वहीन होते जा रहे हैं। पूँजीवाद पर आधारित कुव्यवस्था को उद्‌घाटित करने के लिए 'मुक्तिबोध' ने प्राचीन पौराणिक पात्र ब्रह्मा और उनकी कथा का आधार लेकर 'फ़ैण्टेसी' का निर्माण किया।

' वह भीषण मुख उस ब्रह्मदेव का
जो रहकर प्रच्छन्न स्वयं
निजी अकशायनी दुहिता-पत्नी सरस्वती
उस ब्रह्मदेव का दर्शन सभी कर सकेगे
जिसकी छत्रछाया में वह
अधिकाधिक दीप्तिमान होते
धन के श्रीमुख
पर, निर्धन एक-एक सीढ़ी नीचे गिरते जाते
उस ब्रह्मदेव का विवेक-दर्शन
होगा उद्‌घाटित पूरा।''[53]

पूँजीवाद से साहित्यकारों का वर्ग भी अछूता नहीं है। कमजोर आत्मबल वाले लेखको को पूँजीपति वर्ग सदैव आकर्षित करता रहा है। यद्यपि इन लेखकों में प्रतिभा की कोई कमी न थी, पर सुविधावादी प्रवृत्तियों ने इन्हें समझौतापरस्त बना दिया है। पूँजीपति वर्ग अपनी सुरक्षा एवं प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए साम्राज्यवादी एवं सामन्तवादी विचारधारा को जीवित रखना चाहते हैं। छोटे या मझोले मध्यमवर्ग के महत्त्वाकांक्षी लेखक, पद और प्रतिष्ठा के लोभ में, उन्हीं के दरवाजे जाते हैं। उन्हीं से सामंजस्य स्थापित करते हैं और जाने या

अनजाने, साहित्य मे उन्ही उच्चतर वर्गो की अद्यतन राजनीतिक-सांस्कृतिक मनोवृत्तियो के, उन्ही के प्रभावों और विचारो के, उन्ही की दृष्टियों और भावो के संवाहक बन जाते हैं।

'बीते हुए जमाने मे ये
मनुष्य ये सब
सम्भव है ज्ञानी और त्यागी रहे हों----
और किसी पुराचीन कथा अनुसार
कोई यातुधान
(कोई जाइ-दा)
इन्हें खींचकर
प्रलोभन सूत्रों से उन्हे बद्धकर
सहस्त्र आकर्षण जालों मे इन्हें रुद्धकर
शिला-रूप दे गया
कर गया कैद
और ये भी खुशी-खुशी चट्टान हो गये''।[54]

'मुक्तिबोध' की रचनाकार संबंधी धारणा मार्क्सवाद से प्रेरित है। वे स्वीकार करते हैं, कि पूँजीवादी विसंगतियों रचनाकार को क्रमशः समाज से पृथक करती हुई आत्म केन्द्रित बना रही हैं।[57]

4. बुद्धिजीवी वर्ग एवं वर्गीय चेतना

'मुक्तिबोध' स्वयं बुद्धिजीवी वर्ग के है। उन्होंने इस वर्ग में दो तरह की प्रवृत्तियों को देखा है। एक वर्ग वह है जो प्रलोभन द्वारा जकड़ा है,अपनी आवश्यकता से विवश हो उच्चवर्ग के साथ सामंजस्य स्थापित किए हुए है, परिस्थिति के समक्ष घुटना टेक दिया है, क्योंकि इसमें प्रबल इच्छा शक्ति और संघर्ष शक्ति नहीं है। वे उनके दरवाजे चापलूसी करते हैं, उधार ज्ञान पर अपनी दुकान सजाते है और पुनः मध्यम वर्ग से घृणा करने लगते है। अपनो से विलगाव की बदरंग सूरत उनमें, उनके विरुद्ध एक तड़पती हुई प्रतिक्रिया पैदा करती है। वे अपने स्वामियो या उच्च सत्ताधारियों या लाभदायक प्रभाव सम्पन्न व्यक्तियों की खुशामद करने में, एक दूसरे की

होड करने लगते है।[56] इनमे अपनी बात को पूर्ण ढ़ग से कहने का साहस नही रह जाता, वे अपने सरंक्षको की भाषा और विचार को प्रकट करते हैं। 'एक स्वप्न कथा' मे इस बात को एक 'फैण्टेसी' के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

'स्फूर्तियाँ
कहती हैं कि
मै जो पुत्र उनका हूँ
अब नहीं पहचान मे आता हूँ
मन मे जो बात एक कराहती रहती है
उनकी तुष्टि करने का
साहस संकल्प और बल नही'।[57]

दूसरे प्रकार के बुद्धिजीवी सत्यान्वेषी हैं, जिन्हें सत्य की तलाश है। वे कुछ बेहतर की प्राप्ति मे अन्वेषणरत हैं। जैसे 'ब्रह्मराक्षस' कविता में 'फ़ैण्टेसी' पात्र 'ब्रह्मराक्षस' बुद्धिजीवियो के इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। यह वर्ग समझौता परस्त नही वह हर तरह के कष्टों को झेलते हुए जीवन की विभीषिकाओं से संघर्ष करता हुआ अपनी खोज में लगा हुआ है।

बुद्धिजीवियों का पहला वर्ग भ्रष्टाचारियों के साथ मिला है, उनकी हाँ में हाँ मिलाकर भ्रष्टाचार को और असत्य को ज्यादा समृद्ध बना रहा है। वह अपने वर्ग के उन लोगों का दमन कर रहा है जो सत्य के साथ हैं।

'अपने स्वार्थी मालिक की सूरत लेकर
लम्बे-लम्बे बालों वाले एक बने हैं श्वान भयंकर
आधी आँखें मूदे बैठे
या चबूतरे पर जा लेटे
खूब उन्होंने-रखवाली की
कइयों के घर बार उजाड़
आंतें फाड़ी
एक रीक्ष बन और दूसरे शूकर बनकर

स्वामी के घर के पिछवाड़े नाच रहे हैं
और दूसरे बने हुए पिंजरे के तोते
स्वामी द्वारा रटी हुई
सिद्धान्तवलियाँ बाँच रहे है।'[58]

दूसरा वर्ग शोषित जनता के साथ है। वह अपने विचारो को आत्मसात् कर अपने अनुभव को परिपक्व करता है। इस प्रकार अपने ही वर्ग के सुविधाभोगी बुद्धिजीवियो से उसका वैचारिक विरोध रहता है। परन्तु यह वर्ग जन सामान्य एवं सर्वहारा जिसे वह अपना मित्र मानता है, उनसे कुछ कारणों एवं संस्कारोवश वह जुड़ नहीं पाता और अन्दर ही अन्दर ग्लानि का अनुभव करता है-

'टीले ने फिर कहा
समाज मे, सच मैं अकेला हूँ
जिनका मैं अंग हूँ
जिनसे है श्रेणीवत एकता
वे मुझसे दूर हैं
मुझे दुश्मनी निगाहों से देखते
जो मुझसे एकदम भिन्न हैं
वे मेरे मित्र हैं
परन्तु गुण धर्म जो स्वाभाविक उनके हैं
मेरे न हो सके
इसीलिए पंगु हूँ।। क्या करुँ
क्या करुँ'।।[59]

यहाँ कवि ने आत्मचेतना वाले बुद्धिजीवियों के अंतर्द्वन्द्व को 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि ने इसको स्वयं अनुभूत किया है, क्योकि वह भी इसी वर्ग का है।

5. आत्मसंघर्ष

किसी भी रचनाकार का दो परिवेश होता है, बाह्य एवं आन्तरिक। प्रायः बाह्य एवं

आन्तरिक परिवेश मे विरोधाभास होता है, दोनो एक दूसरे के विलोम होते हैं। 'मुक्तिबोध' ने स्वयं इस त्रासदी का अनुभव किया है। इस विलोम अवस्था के कारण दोनो में तादात्म न बैठ पाने के कारण एक दुविधा की स्थिति उत्पन्न होती है। उसकी आत्मचेतना उसे जनता की मुक्ति के सघर्ष मे सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित करती है। उसके अन्तर को झकझोर कर उससे अपनी पक्षधरता चुनने का आग्रह करती है।

'बशर्ते तय करो
फिस और तुम, अब
सुनहले उर्ध्व आसन के
निपीड़क पक्ष मे, अथवा
कहीं उससे लूटी-टूटी
अँधेरों निम्न कक्षा में तुम्हारा मन;
कहाँ हो तुम'[60]

आत्मचेतस व्यक्ति जब संघर्ष के लिए तत्पर होता है तो उसकी कमजोरियाँ एवं सुविधाभोगी प्रवृत्तियाँ उसे रोकती हैं। पलायन का मार्ग दिखाता हैं। आत्मचेतस व्यक्ति अपनी आत्मा की पुकार को अधिक देर तक अनसुनी नहीं कर सकता। इस कथ्यानुभूति को कवि ने कई 'फैण्टेसी' कविताओं मे जैसे- 'अँधेरे में', 'अन्तः करण का आयतन' आदि में व्यक्त किया है।

विषम स्थिति को देखकर वह अपने कर्त्तव्यों एवं स्थिति का मूल्यांकन करने को तत्पर होता है। उसे लगता है उसकी निष्क्रियता की वजह से आज यह विषम स्थिति आयी है। आत्मालोचन की प्रक्रिया के दौरान वह स्वयं को धिक्कारता है, अपनी अकर्मण्यता के कारण उसे ग्लानि होती है।

'मैं एक थका हुआ मात्र आवेग
रुका हुआ एक जबरदस्त कार्यक्रम
मैं एक स्थगित हुआ अगला अध्याय अनिवार्य
आगे ढ़केली गयी प्रतीक्षित

महत्त्वपूर्ण तिथि
मै एक शून्य मे छटपटाता हुआ उद्देश्य
मुझे अफसोस है गहरा'।[61]

आज की शोषण व्यवस्था के लिए वह स्वयं को जिम्मेदार पाता है। उसे अनुभव होता है कि उसकी कायरता के कारण ही शोषण व्यवस्था प्रबल हुई है। यदि वह अपना शोषण होने देता है, या उस व्यवस्था से बँधा रहता है, या उसका अंग बना रहता है, तो उसका कारण स्वय उसकी आन्तरिक कमजोरी है। 'चम्बल की घाटी' मे इसी तथ्यानुभूति को व्यक्त किया गया है। इस सत्य के उद्‌घाटित होने पर उसमें व्यक्तित्वान्तरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है, उसमें परिस्थितियों एवं आन्तरिक कमजोरियों से युद्ध करने की इच्छा जागृत होती है। फलस्वरूप वह व्यक्तित्व की काट-छॉट कर रूपान्तरण की प्रक्रिया गुजरता है[62]। वह 'स्व' को निर्वैयक्तिक बनाता है। कभी-कभी वह संघर्ष में आने वाली कठिनाइयो से घबराकर पलायन की ओर उन्मुख होता है। परन्तु उसकी चेतना उसे इस स्थिति से उबारती है[63]। अब वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मानव के उत्थान के लिए पूरी शक्ति से संघर्ष में जुटता है।

'कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में उमगकर
जन्म लेना चाहता फिर से
कि व्यक्तित्ववान्तरित होकर
नये सिरे से समझना और जीवन
चाहता हूँ सच'।।[64]

6. स्वानुभूति

'मुक्तिबोध' की दृष्टि मे "आत्मा कोई अलौकिक, आध्यात्मिक या धार्मिक वस्तु नहीं है, वह मनुष्य की प्रबल आत्मिक शक्ति है, जो व्यक्ति को अच्छे या बुरे की अनुभूति कराती है। उसका विवेक से घनिष्ट संबंध है। वह अंधे भौतिकवाद, सुविधाभोगी प्रवृत्ति एवं लोभ की वृत्ति के कारण निर्बल एवं सुप्त पड़ जाती है। वह अचेतन में छिपे विवेक मणि के रूप में संचित रहती है। उच्च वर्ग अपनी सम्प्रभुता कायम रखने के लिए सबसे पहले व्यक्ति की आत्मा का हनन करना चाहता है। आत्मा के चैतन्य होने पर विवेक जागता है। आत्मा एक देदीप्यमान अग्निमणि

है, एक ज्ञान-धन है"[65]। आत्मचेतना ही जड़ता से लड़ने और विकास के लिए सघर्ष करने को प्रेरित करती है।

'मुक्तिबोध' के अनुसार आत्मिक शक्ति का अचेतन से निकट संबंध है। यह आत्मिक शक्ति अचेतन मे ही रहती है। अतः अचेतन प्रबलशक्ति का केन्द्र है। इसी में आत्म-विवेक भी रहता है। प्राय¯ अधिकांश 'फैण्टेसी' कविताओ मे रत्न-मणि आदि के रूप मे अचेतन में इनकी उपस्थिति दर्शायी गयी है। चेतन स्तर से इनका संबंध प्रायः टूटा हुआ है, क्योकि लाभ एवं सुविधा की दौड़ मे आत्म-विवेक बाधा पहुँचाते हैं।

'कि उस गुमनाम खड्डे में
भयानक चीखती सी "धड़ड"
सिर फूटा
व उसकी थाह में से तब
अचानक जोर से उछले
दमकते रत्न
बिखरे श्याम गहवर मे'।[66]

7. जन सम्पृक्त एवं प्रेरणा

'मुक्तिबोध' जनवादी कविता के रचनाकार थे। उनका साहित्य जनता का साहित्य था और जनता के लिए था। उन्होने अपनी कविता का यह वस्तु तत्त्व जनता के बीच सेअपने आस-पास के परिवेश से ग्रहण किया था। जनवादी साहित्य लेखन की प्रेरणा उन्हें सामान्य जन से ही प्राप्त हुई थी। उन्हे अनुभव हुआ कि सत्यता के वास्तविक तथ्य को जनता के बीच रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने अनुभव किया कि संवेदना के विस्तार और सामान्यीकरण के लिए जन अनुभव से जुड़ना होगा। वास्तव मे एक दायित्ववान सच्चा कलाकार, जन हृदय से जुड़े बिना नहीं बन सकता[67]। इसीलिए उसे जनानुभवों को आत्मसात करना होगा।

'गम्भीर तुम्हारे वक्षस्थल
में अनुभव-हिम-कन्या गंगा-यमुना

के जल की

पावन शक्तिमान लहरे पी लेने दो

ओ मित्र, तुम्हारे वक्षस्थल के भीतर के

अन्तरस्थल का पूरा विप्लव जी लेने दो

उस विप्लव के निष्कर्षों के

धागों से अब

अपनी विदीर्ण जीवन चादर सी लेने दो'।68

'मुक्तिबोध' के अनुसार अकेले संघर्ष कर युग एवं व्यवस्था में परिवर्नन नहीं लाया जा सकता। यदि मुक्ति चाहिए तो जन को संगठित करना होगा। क्योकि मुक्ति अकेले नही, सबको साथ मिलाकर सबके सहयोग से ही प्राप्त की जा सकती है। 'मुक्तिबोध' के लिए संगठिन जनता भीड़ नही शक्ति का केन्द्र है। जहॉ संगठन है, वहाँ एक प्रेरणा और उद्देश्य भी है। जहाँ एक प्रेरणा और उद्देश्य है, वहॉ एक स्फीति और सक्रिय चेतना भी है।[69]

'मुक्तिबोध' की जन सम्पृक्त केवल अपने देश की जनता तक ही सीमित नहीं है। वे देश की परिसीमा के बाहर के जन से भी सम्पर्क बनाए हुए हैं। वे देश-विदेश में रहने वाले सभी प्रियवर (जो उनके लक्ष्य एवं विचारधारा का समर्थन करते है) को ढूढ़कर उनके साथ विचारो का आदान-प्रदान करना चाहते हैं। 'अन्तःकरण का आयतन' कविता में इस कथ्य को 'फ़ैण्टेसी' के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इस कविता में कवि ने अपनी आत्मचेतना को छाया के रूप मे इंगित किया है, जिसे सहचरों की तलाश के साथ अपने दायित्व का भी बोध है। वह जन-जन मे विश्वात्मक चेतना एवं विश्वबन्धुत्व का भाव भरती है।

'अनजाने रास्तों पर रोज

मेरी छाह यूँ ही भटकती रहती

किसी श्यामल उदासी के कपोलों पर अटकती है

अँधेरे में, उजाले में

कुहा के नील कुहर और पाले मे,

व खड्डों-खाइयों मे घाटियों पर या पहाड़ों के कगारों पर

किसी को बाँह में भर, चूमकर, लिपटा
हृदय मे विश्व-चेतस् अग्नि देती है।
कि जिससे आग उठती है
समूची आत्म संविद, उष्म-श्वस गहराइयें,
गहराइयो से आग उठती है'।[70]

8. मनुष्य एवं जन-चेतना के प्रति सम्पूर्ण आस्था

'मुक्तिबोध' आशावान कवि हैं, उन्होने वर्तमान समय में मानवीय अन्तःकरण को रोग-ग्रस्त देखा था, परन्तु उन्होंने पूरी आस्था के साथ विश्वास किया और उम्मीद की कि वह होश मे लाया जा सकता है, उसका पुनर्वास किया जा सकता है[71]। 'मुक्तिबोध' ने आधुनिक युग यथार्थ को उसकी भयंकरता के साथ चित्रित किया है। इस युग मे अधिकांश जन को उन्होंने परिस्थिति के हाथों विवश पाया है। वे जानते हैं कि उसकी कमजोरी ही उसकी विवशता का कारण है। परन्तु इसके बाद भी उनके मन मे मनुष्य और उसकी आत्मशक्ति के प्रति पूरी आस्था है। उन्हे विश्वास है कि इस स्वार्थ के अन्धे दौड़ मे भी मनुष्यता जीवित रहेगी। चाहे युग का कितना भी भयानक एवं विकट दौर चल रहा हो, सम्पूर्ण मनुष्यता नष्ट हो जाय ये असम्भव है। 'मुक्तिबोध' का यह विश्वास कि मनुष्य की आत्मिकशक्ति, उसका आत्मविवेक समाज की विकृतियो को भाँप लेगा।

'अँधूरी और सतही जिन्दगी के गर्म रास्तों पर,
अचानक सनसनी भौंचक
कि पैरों के तलों का काट खाती-सी यह आग?
जिससे नच रहा-सा हूँ,
खड़ा भी हो नहीं सकता, न चल सकता।
भयानक, हाय, अन्धा दौर
जिन्दा छातियों पर और चेहरों पर
कदम रखकर
चले हैं पैर।

अनगिन अग्निमय तन-मनं व आत्माएँ
व उनकी प्रश्न मुद्राएँ,
हृदय की द्युति-प्रभाएँ
जन-समस्याएं
कुचलता चल निकलता हूँ।
इसी से पैर-तालुओं में
नुकीला एक कीला तेज
गहरा गड़ गया औ' धँस गया इतना
कि ऊपर प्राण-भीतर तक छुँआ आया,
लगी है झनझनाती आग,
लाखो बर्र-कॉटो ने अचानक काट खाया है।
हर पल चीखता हूँ, शोर करता हूँ
कि वैसी चीखती कविता बनाने में लजाता हूँ'[72]

विसंगतियों को पहचानकर वह इनसे मुक्ति तथा मानवना के सुंदर भविष्य के निर्माण के लिए संघर्ष में भाग लेने को तत्पर होता है। इस युद्ध में उसके और भी मित्र सहचर हैं। वह अपनी कमजोरियों का परित्याग करता है। प्रायः अधिकांश 'फ़ैण्टेसी' कविताओं में इसी मुख्यकथ्य को बार-बार कहा गया है। उपरोक्त प्रसंग में भी काव्य नायक को अधूरी, सतही जिन्दगी की विद्रूपता का भान होता है। यह विद्रूपता, जिसमें वास्तविकता और सत्य कुचला जा रहा है, उसके मन में गहरी संवेदना जगाती है, पर उसकी पीड़ा को व्यक्तिगत स्तर पर प्रकट करना, उसे उचित नहीं लगता, वह इसे सार्वजनिक रूप में व्यक्त करने का प्रयास करना चाहता है।

प्रबल शत्रु के संहार और परिस्थिति परिवर्तन के लिए जन-जागरण करना होगा। समष्टिगत प्रयास से ही विकास सम्भव है। 'मुक्तिबोध' को जनशक्ति द्वारा परिस्थिति में असाधारण परिवर्तन आने का विश्वास है। देश-विदेश के पिछले इतिहास से हमें यह सूचित होता है कि संगठित जनता ने असाधारण कार्य किया है।[73]

'मुक्तिबोध' को विश्वास है कि जनशक्ति द्वारा उस सुंदर विश्व का निर्माण अवश्य होगा, जिसकी उन्होने कल्पना की है, जिसे उन्होने अपनी कविता मे 'फ़ैण्टेसी' के रूप में व्यक्त किया है उनकी 'फ़ैण्टेसी' भविष्य में अवश्य सच का रूप ग्रहण करेगी।

'मैं विचरण करता-सा हूँ एक 'फैण्टेसी' में
यह निश्चित है कि 'फैण्टेसी' कल वास्तव होगी।'[74]

'फैण्टेसी' के प्रयोग से वे तत्कालीन जीवन की विभीषिकाओ को, उनके समग्र संदर्भ मे पकड़ने के साथ मनुष्य की अकर्मण्यता, निराशा, विक्षुब्धता, संघर्ष शक्ति और जिजीविषा आदि को एक साथ प्रकट कर सके है। इसका लाभ यह हुआ कि उनकी कविता युग की भयानकता को गहरे अभिव्यक्ति देते हुए भी पाठक को आंतकित नहीं करती।[75]

'मुक्तिबोध' के 'फ़ैण्टेसी' निर्माण में चेतन की तुलना में अवचेतन मन का अधिक योगदान है। कल्पना के माध्यम से काव्यात्मक अनुभूति का कहीं विस्तार, कहीं न्यूनीकरण करके 'फ़ैण्टेसी' रची गयी है। 'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' के ढ़ाँचे का उपयोग करके अपनी बात को तथा जीवन के विविध प्रसंगो को पूरे कलात्मक कौशल से कह सके। 'मुक्तिबोध' के 'फैण्टेसी' की पृष्ठिभूमि उनके द्वारा सचित और पोषित विचार धारा की भूमि पर अवतरित है। कटु यथार्थ की अनुभूति के प्रकटीकरण मे 'फैण्टेसी' जैसे शिल्प, उनके लिए विशेष सहायक बने हैं। क्योकि इसमे कार्य-कारण के तर्क का तालमेल बैठाने की आवश्यकता नहीं होती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अंश में हमने 'मुक्तिबोध' की प्रौढ़ रचनाओ के आधार पर उनके पीड़ा, अवसाद, संत्रास, वेगनगी मानववाद, पराजयबोध, क्रान्ति, आत्मसंघर्ष की भावना, जन संम्पृक्त एवं जन-चेतना, वर्गीय चेतना, राजनैतिक बोध की भावना तथा अन्य पक्षों को चित्रित किया गया है। 'मुक्तिबोध' के द्वारा रचित साहित्य को दो कालो में विभक्त किया गया है, (सन् 1935-1950 और सन् 1950-64)। प्रथमकाल में ''मुक्तिबोध'' की अनुभूति में छायावादी संस्पर्श है। उनमें वैयक्तिकता, संवेदना और कल्पना के सभी सूत्र मिलते हैं, जो छायावादी अनुभूति के प्रमुख तत्त्व हैं। पंचम दशक की रचनाओं में छायावादी तत्त्व विरल और प्रयोगवादी तत्त्व सघन

होते है। छायावादी अनुभूति के तत्वो से मुक्त होने में उन्हे समय लगा है। इस काल की रचनाओ मे वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, जिनका समुचित प्रौढ़ विकास परिवर्ती काल की रचनाओ मे हुआ है। सन् 1950 के बाद के 'मुक्तिबोध' में प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति के वे तराने नही मिलने जो उनकी पहले की रचनाओ मे विद्यमान है। सन् 1950 के बाद की रचनाओ मे भय, सन्त्रास, अवसाद, कुण्ठा बेगानगी, बिलगाव, मानववाद, क्रान्ति आदि के स्वर प्रमुख है। इस दृष्टि मे प्रथम काल 'मुक्तिबोध' का निर्माण काल है, द्वितीय उनका प्रौढ़ रचनाकाल।

'मुक्तिबोध' की कविताओ के अनुभूति पक्ष का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि अपने समय की भयावहता और बेरहमी का जो उन्होंने सामना किया, उसका साक्ष्य तो इसमे हैं ही, उसके साथ उनकी आत्मीयता और आन्तरिकता भी इसमे हैं। उनके वैचारिक लगाव को इन कविताओ मे स्पष्टता के साथ खोजा जा सकता है।[76] उनकी कविताएँ अपने युग की सामाजिक जटिलता, पाखण्ड, मानसिक तनाव तथा विषमतापूर्ण जीवन की भयानकता उपस्थित करती हैं।----मनुष्य के जीने की कोशिशों को वाणी देती है।[77] वास्तव मे उनकी 'फैण्टेसी' इस भयानक वास्तविकता को व्यक्त करने के कारण ही प्रभावशाली बन सकी है। उनकी कविताओं मे 'फ़ैण्टेसी' और यथार्थानुभवो का मणिकांचन संयोग दिखायी देता है। उन्होंने मानव के सूक्ष्म मनःस्थिति को भी बहुत सफल रूप से प्रकट किया है।

प्रायः सभी रचनाकार अपनी कृति के विषयवस्तु में अपनी वैयक्तिकता और कल्पनाशक्ति का समिश्रण करते हैं। 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की कविताओं में तो कल्पनाशक्ति अपनी नवोन्मेषता एवं स्वच्छन्दता या स्वतन्त्रता की चरम सीमा प्राप्त करती है। 'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की कविताओं में यथार्थ और वैयक्तिकता के साथ कल्पना के अनोखे अद्भुत स्वतन्त्र उड़ान को समाहित करके एक रोचक और आश्चर्य जनक दिक्काल (मे पहुचा दिया) की सृष्टि की तथा वर्तमान यथार्थ को उस विस्मयकारी वातावरण में विचरण कराया। जिससे कविता मे वर्तमान का सत्रास तनाव कम हुआ और पाठकों मे विषय वस्तु के प्रति एक जिज्ञासा भरा कौतूहल पूर्ण भाव जागृत हुआ।

'मुक्तिबोध' अपने 'फ़ैण्टेसी' शिल्प के प्रयोग पर विवेक और चिन्तन की छाप डालते हैं। उन्होंने संवेदना में उसके ज्ञानात्मक पक्ष की संश्लिष्टता पर विशेष बल दिया। जिसका प्रमाण

उनकी कविताऍ है। उनकी धारणा है कि वस्तु का ज्ञानात्मक आधार पूर्व निर्मित संवेदना को नए-नए तत्त्व प्रदान करता है। उन्होने वस्तु से सबंधित ज्ञानात्मक आधार का प्रयोग करके अपनी सवेदनात्मक सत्ता को अधिक युग सापेक्ष बनाने का प्रयत्न किया है। [78]

इस प्रकार 'मुक्तिबोध' की कविताएँ उनकी अनुभूति विषयक मान्यताओ पर खरी उतरती है। उनकी अनुभूति में प्रखर जनवादी स्वर है जो ज्ञानात्मक आधार प्राप्त कर उच्चस्तरीय और विश्वात्मक सवेदना मे परिणित हुई हैं। उनमे कवि की सशक्त वर्गीय चेतना और वैचारिक मौलिकता परिलक्षित होती है।

'फ़ैण्टेसीगत' कविताओं मे उनका स्वर प्रखर यथार्थवादी का रहा है। 'फ़ैण्टेसी' मे यथार्थ की अभिव्यक्ति देकर उन्होने अपनी काव्यगत मान्यताओं की पुष्टि तो की ही साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया है कि एक सच्चा समर्थ तथा यथार्थ जीवन के रंगो मे रंग कवि भाववादी तथा आत्मपरक शैली का प्रयोग करके भी यथार्थ की सुंदर प्रभावी एवं कलात्मक अभिव्यंजना प्रस्तुत कर सकता है।

पाद टिप्पणी

1 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 234
2 कला सृजन प्रक्रिया और निराला - डा॰ शिवकरण सिह पृष्ठ 159
3 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 26
4 वही पृष्ठ 25
5 वही पृष्ठ 25
6. वही पृष्ठ 48
7. वही पृष्ठ 72
8. वही पृष्ठ 208
9 समाजोन्मुखी यथार्थवादी काव्य - डा॰ रमाकान्त शर्मा पृष्ठ 197
10 'मुक्तिबोध' का काव्य विवेक और उनकी कविता - डा॰ लल्हान राय पृष्ठ 263
11. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 48
12 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 89
13. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 20
14 आलोचना का आधुनिकवाद और नयी समीक्षा - डा॰ शिवकरण सिह पृष्ठ 121
15 वही पृष्ठ 12
16 मुक्तिबोध रचनावली भाग-4 पृष्ठ 269
17. सभी कविताएँ 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 1 में सग्रहित
18 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 1 (वाणी से प्रकाशित) पृष्ठ 43
19 उपरिवत पृष्ठ 133
20 उपरिवत पृष्ठ 143
21. उपरिवत पृष्ठ 150
22. उपरिवत पृष्ठ 152
23 उपरिवत पृष्ठ 166
24 उपरिवत पृष्ठ 167

25 उपरिवत (धर्मयुग मे प्रकाशित) पृष्ठ 185
26 जिरह - श्रीकान्त वर्मा पृष्ठ 47
27 एक साहित्य की डायरी - 'मुक्तिबोध' पृष्ठ 2
28 उपरिवत् पृष्ठ 4
29 'मुक्तिबोध' एक साहित्यिक इकाई - डा॰ जगदीश शर्मा पृष्ठ 4
30 चॉद का मुँह टेढ़ा है - 'मुक्तिबोध' पृष्ठ 78
31 उपरिवत पृष्ठ 47
32 उपरिवत पृष्ठ 120
33. उपरिवत पृष्ठ 120
34. उपरिवत पृष्ठ 76
35 उपरिवत पृष्ठ 79
36 उपरिवत पृष्ठ 81
37 उपरिवत पृष्ठ 312
38 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 86
39 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 274
40. उपरिवत पृष्ठ 269
41. उपरिवत पृष्ठ 265-270
42 उपरिवत पृष्ठ 270
43. उपरिवत पृष्ठ 270-271
44 उपरिवत पृष्ठ 271
45 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 02-303
46. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 155
47. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 146
48 उपरिवत पृष्ठ 35
49. उपरिवत पृष्ठ 297
50 उपरिवत पृष्ठ 297
51 उपरिवत पृष्ठ 278-279
52. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 405
53 उपरिवत पृष्ठ 183-184

54 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 403

55 मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन - डा॰ शिवकुमार मिश्र पृष्ठ 418

56 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 287

57 उपरिवत पृष्ठ 264

58 उपरिवत पृष्ठ 299

59 उपरिवत पृष्ठ 215

60. उपरिवत पृष्ठ 237-238

61 उपरिवत पृष्ठ 402

62 उपरिवत पृष्ठ 416

63 उपरिवत पृष्ठ 144

64. उपरिवत पृष्ठ 243

65. उपरिवत पृष्ठ 384

66 उपरिवत पृष्ठ 234

67. आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्य सिद्धान्त - डा॰ सुरेश चन्द्र उद्धृत जैसा हमने देखा था - सम्पा॰ क्षेमचन्द्र सुमन - पृष्ठ 140

68 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 246

69 उपरिवत पृष्ठ 156

70 उपरिवत पृष्ठ 149

71 फिलहाल - अशोक वाजपेयी पृष्ठ 112

72 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 252-253

73 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 156

74 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 155

75 'मुक्तिबोध' युग चेतना और अभिव्यक्ति - डा॰ आलोक गुप्ता पृष्ठ 142

76 भूरी-भूरी खाक धूल-गजानन माधव 'मुक्तिबोध' में सम्पादक द्वारा दीगयी भूमिका-पृष्ठ 3

77 साहित्य एवं जनसंघर्ष - शम्भूनाथ पृष्ठ 109

78 कविता का अन्तर अनुशासकीय विवेचन - डा॰ वीरेन्द्र सिंह पृष्ठ 874

●●●

पंचम अध्याय

'फ़ैण्टेसी' और अभिव्यक्ति पक्ष

अनुभूति को कविता का रूप धारण करने के लिए आवश्यक है कि इसे कला पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त हो। कलात्मक अभिव्यक्ति का रूप विधान, विविध शिल्पगत उपकरणों के परस्पर सहयोग से निर्मित होता है। इन्ही शिल्पगत उपकरणों से कविता कलात्मक, सजीव एवं मर्मस्पर्शी रूप ग्रहण करती है। शिल्प के ढ़ाँचें में अनुभूति विशेष कलात्मक रूप-विन्यास प्राप्त करती है। शिल्प मे प्रायः काव्य-भाषा, रूप-योजना, छन्द-योजना, बिब प्रतीक, रूपक, अप्रस्तुत-विधान, अलंकार आदि उपकरणों को परिगणित किया जाता है। काव्य की संरचना इन्हीं के संयुक्त सम्मिलित प्रयास से आकार ग्रहण करती है।

किसी विशिष्ट शिल्प के कलेवर में सर्जक द्वारा कलात्मक अभिधान की क्षमता का उत्कर्ष किया जाता है। इस प्रकार शिल्प अनुभूति विशेष की कलात्मक अभिव्यक्ति है, अतएव कहा जा सकता है कि अभिव्यंजना, शिल्प-कला काव्य का अनिवार्य तत्त्व है।[1] वास्तव में अनुभूति का सही उद्घाटन शिल्प के सफल, सजीव प्रयोग पर आश्रित है। 'मुक्तिबोध' ने विविध शिल्प उपकरणों में से बिंब, प्रतीक, रूपक को अधिक महत्त्व दिया है। इन्हीं उपकरणो के सफल प्रयोग से उन्होने भव्य काव्यात्मक 'फैण्टेसी' का निर्माण किया।

कविता के स्वरूप विधान मे बिंबों एवं प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है विशेषतः जब कविता में अत्यन्त सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति करनी होती है तब अपनी अनुभूतियों को रूप देने की समस्या कवि की जटिल समस्या होती है। इस जटिलता का समाधान वह बिंबों एवं प्रतीकों की सहायता से करता है। बिंबों एवं प्रतीको के बिना आधुनिक कविता का शिल्प पूरा नहीं हो पाता तथा सूक्ष्म अथवा अमूर्त अनुभूतियों का प्रेषण भी नहीं होता। आचार्य शुक्ल ने इस संदर्भ मे लिखा है- "कविता के अर्थग्रहण से काम नहीं चलता, बिंब ग्रहण भी अपेक्षित होता है। यह

बिंब ग्रहण निर्दिष्ट, गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।"[2] 'डॉ0 नगेन्द्र' के मतानुसार......."बिंब का मूल विषय मूर्त और अमूर्त दोनो हो सकता है। किन्तु उसका अपना रूप मूर्त ही होता है।"[3]

बिंब

किसी भी कथ्य को मूर्त, जीवन्त एवं साकार रूपधारण करने के लिए बिंबों का सहयोग अपेक्षित होता है। इस दृष्टि से बिंब काव्य की संरचना के लिए महत्त्वपूर्ण उपादान हैं। 'व्यवहारिक-दृष्टि से भी बिंब अनुभूति की मूर्तन क्रिया का अंग है। मनोगोचर को इन्द्रियगोचर बनाने का साधन है'।[4] बिंब विधान आधुनिक युग की देन है। आधुनिक युग का कवि कविता को अलंकारों से सजाना नहीं चाहता, बल्कि अनुभव को सजीव और जटिल रूप में व्यक्त करना चाहता है। सुंदरता की अपेक्षा अनुभव की बनावट और जीवंतता आधुनिक कवि के लिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।[5] उसका दृष्टिकोण सौन्दर्यवादी की अपेक्षा जीवनवादी अधिक है। यही कारण है कि कविता मे बिंब का महत्त्व बढ़ गया है। ऐसा माना जाता है कि बिंब संवेदना से जुड़े होते हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता 'ऐन्द्रियता' होती है। यही कारण है कि सुंदरता से अधिक सजीवता बिब का प्रधान गुण है।[6] अलंकार मे सजीवता हो सकती है लेकिन प्रयोग का प्रधान उद्देश्य सौन्दर्य लाना है। उसी तरह बिम्ब में सौन्दर्य हो सकता है। लेकिन प्रधान उद्देश्य कविता को सजीव बनाना है। कविता में जब कवि-कल्पना के प्रयोग से बिंब की सृष्टि करता है, तब वह अपने अनुभव को ठीक उसी रूप में व्यक्त करना चाहता है जैसा वह अनुभव करता है। लेकिन जब अलंकार का प्रयोग करता है तो उसे कुछ आडम्बर के साथ व्यक्त करना चाहता है। यानी बिंब के प्रयोग से कवि अपने अनुभव को प्रमाणित करता है। उसकी असलियत की चिन्ता करता है।[7]

काव्य-बिंब को स्पष्ट करते हुए 'डॉ0 नगेन्द्र' ने लिखा है- "बिंब अपने में महज एक दृश्य उपकरण नहीं है, वरन वह मूलतः काल-क्रम में आगे-पीछे उठने वाली विविध अनुभूतियों के एक साथ साक्षात्कार का उपक्रम है। इस तरह अर्थ-सश्लेषण की अनुभूति-अभिव्यक्ति का वह एक विकसित स्तर है"[8]। उन्होंने पुनः लिखा है-

"बिंब जब भी आता है, किसी गहरे विचार या जीवन दृष्टि का संवाहक बन कर आता है। एक श्रेष्ठ बिंब जीवन के प्रत्यक्षात्मक और धारणात्मक दोनों ही गुणो से सम्पन्न होता है।"[9] साहित्य यदि बिखरे-बिखरे और खण्डित जीवनानुभवों और यथार्थ की पुनर्रचना है, तो बिंब-विधान इस पुनर्रचना प्रक्रिया का मुख्यअंग है। काव्य, जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करता है और आधुनिक काव्य की सूक्ष्म अर्थवत्ता बिंब से निर्मित होती है।[10]

बिंब विधायक कल्पना से निर्मित होता है। साहित्य में बिंब को लेकर बहुत विवेचन हो चुका है, अतएव पिष्टपेषण से बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम केवल इसकी मूलभूत विशेषताओ का उल्लेख करे। इस तथ्य को स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही है कि सृजन-प्रक्रिया का पथ कल्पना पर आधारित होता है, जो प्रकृत्या बिंब-विधायक होती है। बिंबो को दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। पहली कोटि मे प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित बिंब आते हैं, दूसरी कोटि में परोक्ष अनुभव पर आधारित बिंब आते हैं। 'युंग' ने मूला दर्शात्मक बिंब की बात उठायी है और 'जार्ज ह्वेले ने निदर्शनात्मक बिंबों की। 'लैंजर' ने इस विचार को बदलते हुए अनुभूत बिंब का भी उल्लेख किया है।यह सर्वविदित सत्य है कि बोध का अनुभूति में पारिणत होने और अनुभूति के अभिव्यक्ति में ढ़लने की क्रिया की स्थिति मे बिंबो का निर्माण होता है। जब 'लैंजर' 'अनुभूति बिंब' का उल्लेख करते हैं, तो निश्चित रूप से उनकी दृष्टि, संकेत रूप में कला निरूपण की होती है। बिंबों का अपना संदर्भ होता है। उनके निर्माण में कल्पना का योगदान होता है। अतएव वे कवि की अनुभूति को नए रूप में प्रस्तुत करने के प्रमुख साधन होते हैं।

प्रत्यक्ष और परोक्ष अनुभव पर आधारित बिंब के अतरिक्त आलोचकों ने उद्‌भव के आधार पर और ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर भी बिंबों का विभाजन किया है। 'हिन्दी साहित्य कोश' मे उद्‌भव के आधार पर बिबों के दो प्रकार माने गये हैं-

स्मृतिजन्य और स्वरचित। ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर दृष्टि शब्द गन्ध, रस, स्पर्श आदि प्रकार माने गये हैं। 'कुमार विमल' ने कलाशास्त्र के आधार पर बिंबों के कई वर्गो का उल्लेख किया है-कलात्मक अभिव्यक्ति-भंगिमा पर निर्भर बिंब (शब्द बिंब, वर्ण-बिंब, सामाजिक-बिंब) काव्येतर कलाओं से संबन्धित बिंब-अमित्र इन्द्रियबोधक बिंब (चाक्षुष, श्रावण, घ्राणिक,

गतिबोधक आदि) मित्र इन्द्रियबोधात्मक बिंब (सह-संवेदात्मक, वर्गोदभेदक) तथा उदात्त बिंब आदि। 'केदारनाथ सिंह' ने सज्जात्मक, छायात्मक, धनात्मक, मिश्रित, उदात्त, नाद, अमूर्त और प्रतीकात्मक आठ वर्गो मे विभक्त किया। इन अर्थो के अतरिक्त उन्होंने विरोधी-बिंब, पशु-बिंब, आवेग-बिंब, यथार्थमूलक-बिंब, पारदर्शी-बिंब, शिशु बिंब, भाषावैज्ञानिक-बिंब, खण्डित-बिंब आदि विभेद भी किए है। 'डॉ0 नगेन्द्र' ने बिंबो के वर्गीकरण को अधोलिखित रूप में प्रस्तुत किया है-

इसके अतिरिक्त भी विद्वानों ने कई भेद प्रस्तुत किए हैं यथा-रूपात्मक-बिंब, प्रतीकात्मक-बिंब, तत्कालिक-बिंब, शून्य-बिंब, अलंकारिक-बिंब, विश्रृंखल-बिंब, प्रतिमाशून्य-बिंब आदि।[11]
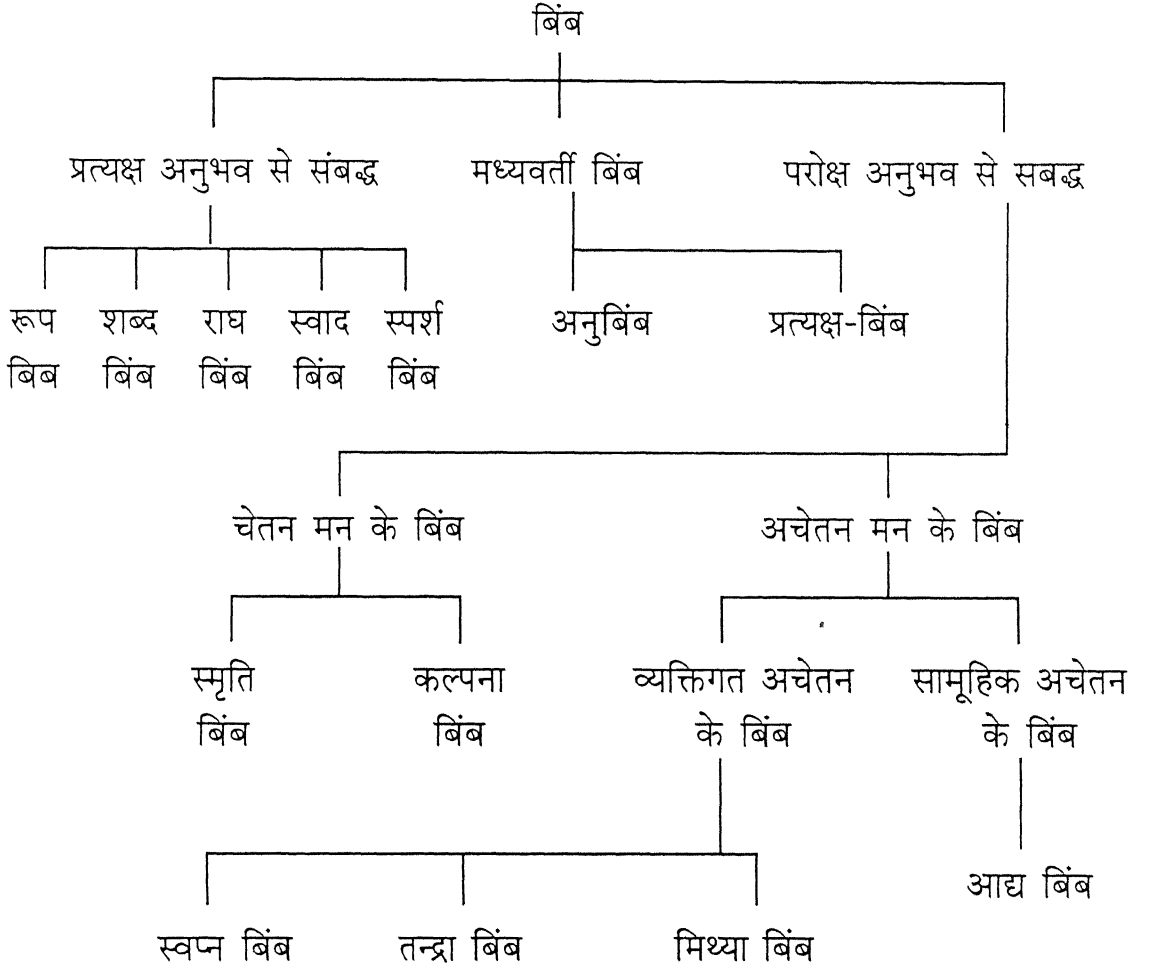
'फ़ैण्टेसी' और बिंब विधान

'फैण्टेसी' में बिंबो का समायोजन आवश्यक रूप से होता है। 'फ़ैण्टेसी' से बिंब का बहुत महत्त्वपूर्ण संबंध है। एक तरह से बिंबो के बिना 'फ़ैण्टेसी' का कोई अस्तित्त्व ही नहीं होता। 'फ़ैण्टेसी' जीवन्त एवं संचित अनुभव प्रसूत होती है तथा मानस में बिंबों के माध्यम से अपना प्रकटीकरण करती है। जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु के सम्पर्क मे आता है तब उस वस्तु का कोई चित्र या उससे संबंधित विशिष्ट अनुभूति अचेतन में संग्रहित हो जाती है। अचेतन में स्थित बिंब कल्पना के माध्यम से सचेतन में स्थूल रूप से अभिव्यक्त होते हैं।

'फैण्टेसी' का संबंध देखने से है। मनः दृष्टि द्वारा मानस पटल पर अपनी अनुभूतियों (दृश्यवत्, बिंबवत्) को देखने से विदित होता है कि काव्यात्मक 'फ़ैण्टेसी' की संरचना अचेतन और चेतन मन के सहयोग से होती है और अचेतन प्रायः अपनी अभिव्यक्ति बिंब के माध्यम से करता है। काव्यात्मक 'फ़ैण्टेसी' एक कल्पनात्मक सोच है जिस पर चेतन का नियंत्रण होने पर भी अचेतन का अधिपत्य अधिक होता है। रचनाकार जब अपनी संवेदनाओं को कल्पना के सहयोग से 'फ़ैण्टेसी' में रूपान्तरित करने लगता है तब ऐन्द्रिक संवेदनात्मक क्षमता पर से उसका नियंत्रण शिथिल हो जाता है, उसके विचार या भाव शब्दमय न होकर, चित्रात्मक प्रवाह का रूप धारण कर लेते हैं और मानसिक धरातल पर चित्रवत प्रसारित होने लगते हैं।

'फ़ैण्टेसी' के बिंब रहस्य, रोमांच, रोचकता के गुणोत्पादक एवं वर्धक होते हैं। 'फैण्टेसी' के काल्पनिक एवं मिथकीय स्वरूप के कारण उसमें आद्य-बिंब, ब्रह्माण्ड-बिंब, निजन्धरी-बिंब (कथा-बिंब, परीकथा-बिंब, भूत-प्रेतादि-बिंब), प्रत्यय-बिंब (आस्था, पूजा, अवधारणा आदि) देवाख्यान-बिंब (पौराणिक) आदि का विशेष प्रयोग होता है।

बिंब और 'फैण्टेसी' का बहुत अंतरंग संबंध होते हुए भी 'फ़ैण्टेसी' बिंब नही है। बिंब और 'फैण्टेसी' मे उल्लेखनीय अंतर यह है कि 'फ़ैण्टेसी' विश्रृंखल किन्तु संश्लिष्ट कल्पना होती है, जबकि बिंब एकोन्मुखी होते हैं। 'फ़ैण्टेसी' में स्वप्न जैसी गत्यात्मकता होती है जबकि बिंब आम तौर पर स्टैटिक होते हैं।[12]

मुक्तिबोध के काव्य में बिंब योजना

'टी॰एस॰ इलियट' के विषय में कहा जाता है कि उनका काव्य उस कक्ष की भाँति

है जिसमे अनेक दर्पण सजाकर रख दिए गए हो, अर्थात टी0एस0 इलियट ने अपने काव्य में विभिन्न सन्दर्भो को पिरोया है। 'मुक्तिबोध' की अधिकांश कविताएँ इसी प्रकार संदर्भ गर्भित हैं और इन सन्दर्भो को 'मुक्तिबोध' ने बिंबों की लड़ी के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

बिंब विधान की दृष्टि से 'मुक्तिबोध' का काव्य अत्यन्त समृद्ध है इस विधा मे वे अद्वितीय है। उनकी कविता को बिंबो का नगर कहा जा सकता है। वे कविता के प्रत्येक कथ्य स्तर को बिंबात्मकता प्रदान करते हुए अपने जीवन दर्शन को मूर्त आयामो मे स्पष्ट करते चलते हैं। उनकी यह विशेषता है कि वे शब्द बिंबों का लयात्मक उपयोग करते हुए उसे जीवन दृष्टि का संवाहक बनाकर समग्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

'मुक्तिबोध' की कविता बिंब की कविता है 'एक अरूप शून्य के प्रति' कविता में 'मुक्तिबोध' ने लिखा है-

सृजन के घर मे तुम
मनोहर शक्तिशाली
विश्वात्मक 'फ़ैण्टेसी'[13]

'चकमक की चिनगारियाँ' कविता में भी उन्होने लिखा है-

प्रतीकों और बिंबों के
असंवृत रूप मे भी रह
हमारी जिन्दगी है यह।[14]

'मुक्तिबोध' की कविता में शब्दों और वाक्यों में मानवीय अभिप्रायों का जो सूरज निकलता है और धरती के अकुलाने से छविमधुरा कविता का जो स्रोत फूटता है,[15] उसी के परिणाम स्वरूप उनके काव्य बिंब का अविर्भाव होता है।

'मुक्तिबोध' ने अपने काव्य में बिंब प्रयोग के संबंध में वक्तव्य दिया है-वे लिखतेहैं- ''मानव संबंधो की इस गिरावट के जमाने में, मेरी कविता की सारी इमेजरी-बिंब माला विकसित हुई है। उसमें घने और काले, लाल और नीले, जामनी और बैगनी रंग हैं। इन कविताओं मे से अधिकाश अप्रकाशित हैं। यह इमेजरी कहाँ से कैसे पैदा हुई यह कहना मुश्किल है। केवल इतना कहना चाहूँगा कि मनुष्य संबंधो की भीषण गिरावट के बीच, मनुष्य-दीप्ति के जो

प्रकाशमान दृश्य मेरे सामने आये, उन्ही के सहारे मेरा जीवन आगे बढ़ता रहा। दृश्य और अदृश्य सहस्त्रों, कोमल स्पर्शो ने संयुक्त रूप से मन की रचना कर डाली। ये स्पर्श जिन ज्वलन्त जनो के हैं, वे कम नही, अनगिनत है। उन्हीं के सहारे अनवस्था, व्यवस्था बद्ध होने लगी। वेदना सोचने के लिए बाध्य हुई। संवेदना डिफरेंशियल कैलक्युलस करने लगी।''.........उस जमाने मे विक्षोभ मेरा स्थायी भाव हो गया था''।[16] ''यद्यपि आगे के वर्षो मे धीरे-धीरे मेरी कविता के काले रग धुलने लगे, किन्तु मेरी इमेजरी बढ़ती ही गयी। विषय भी विभिन्न और विस्तृत होते गये।''[17]

''मानव-मन या मानव-मूल्य पर चोट पहुँचाने वाली कोई बात होती है तो संवेदनशील चिन्तन, मन-ही-मन चलता रहता है। बिंब रूप पूरा कैसे होगा, कह नही सकता, पर डूब जाऊँ तो शाखा-प्रशाखा अपने आप निकलती जाती है और पूरी बात पूरा चित्र आ जाता है।''[18]

''कुछ कमजोरियाँ भी हैं। कभी-कभी लगता है कि यह कमजोरी नही है। वस्तुतः मैं, बिना चित्र प्रस्तुत किए लिखता नही। यदि लगता है कि मेरा चित्र यथार्थ नही है तो नहीं लिखता। कोई भी विचार यदि अभिभूत कर देता है, तभी ठीक से लिख पाता हूँ''।[19]

रचना प्रक्रिया पर विचार करते हुए उन्होंने उसके कसकते मूल से अलग होने और 'फ़ैण्टेसी' के रचनाबद्ध होने की प्रक्रिया का निर्देश दिया है। 'फ़ैण्टेसी' जहाँ अपने मूल से अलग होती है वहीं, काव्य बिंब के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। 'मुक्तिबोध' ने इस संदर्भ मे विचारों को संवेदना मे और संवेदना को चित्रों में परिणत होने की प्रक्रिया का उल्लेख किया है। 'मुक्तिबोध' की दृष्टि में 'फ़ैण्टेसी' अनुभव-बिंब है, जो रचना बिंब में परिणत होने के पूर्व बदल जाती है। इसका संकेत करते हुए उन्होने लिखा है ''चूंकि 'फ़ैण्टेसी' के मर्म को शब्द-बद्ध करते समय अनेक अनुभव चित्र और स्वर तैर आते हैं, इसलिए 'फ़ैण्टेसी' के उद्देश्य और दिशा के निर्वाह के लिए कलाकार को भाव सम्पादन करना पड़ता है जिससे कि केवल मर्म के अनुकूल और उसको पुष्ट करने वाले स्वर भाव या चित्र ही कविता में आ सकें और इस बीच यदि कोई अन्य अनुकूल मार्मिक अनुभव तैर आएं तो उसे भी 'फ़ैण्टेसी' के मर्म की उद्देश्य दिशा में प्रतिपादित कर दिया जाय अर्थात भाषा में प्रवाहित कर दिया जाय''[20] स्पष्ट है कि 'मुक्तिबोध' की कविता चित्र प्रधान या बिंब प्रधान कविता बन गयी है, उनकी साधना चित्र और

ध्वनि के साथ चलती है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है "साहित्य मनुष्य के आंशिक साक्षात्कारों के बिंबो की एक मालिका तैयार करात है। ध्यान रहे कि वह सिर्फ बिंब मालिका है और उसका सारा सत्यत्व और औचित्य मनुष्य के जीवन या अन्तर्जगत में स्थित है, चूँकि सभी मनुष्यों के अन्तर्जगत होते हैं, इसलिए उनके औचित्य और सत्यत्व की अनुभूति सार्वजनीन होती है"।[21] 'मुक्तिबोध' ने मनोमय जीवन के अनुभवो को ही बिंब का प्रमुख आधार माना है। उनकी मान्यता यह है कि "रचना मनोमय जीवन के सम्बेदन चित्रों की अभिव्यक्ति की स्थिति में अधिक व्यापक और व्यंजना प्रधान तर्क प्रदान करती है। रचनाकार अपने जीवन की पुनर्रचना करने मे कल्पना का सहारा लेता है, जो स्वयं बिंब विधायनी होती है। इस दृष्टि से कला जीवन का बिंबात्मक या भावात्मक प्रतिनिधित्व करती है।"[22] 'मुक्तिबोध' की दृष्टि में "कल्पना के मूर्त विधान या बिंबमाला के दो प्रमुख कार्य होते हैं (1) व्याख्यात्मक (2) प्रतिनिधिक। मूर्त विधान एक ओर जीवन की सारभूत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरी ओर वह उस जीवन की व्याख्या के रूप में प्रस्तुत होता है व्याख्यात्मकता और प्रतिनिधिकता एक ही सिक्के के दो पहलू है। दोनो के अस्तित्त्व की संभावना अकल्पनीय है"[23] 'शब्दों का अर्थ जब' कविता मे "मुक्तिबोध" ने इस महत्त्वपूर्ण सत्य का उल्लेख किया है-

शब्दो का अर्थ जब;
जनता के जीवन के संवेदन-सत्यों के
चित्रों से-
तथ्यों के विश्लेषण-संश्लेषण बिंबों से
बनाकर घरित्री का मानचित्र
दूर क्षितिज फलक पर टॉग जो देता है
वह जीवन का वैज्ञानिक यशस्वी
कार्यकर्ता है
मनस्वी क्रान्तिकारी वह[24]

स्पष्ट है 'मुक्तिबोध' ने स्वयं बिंब पर विचार किया है और बिंबधर्मी कविताओ को

श्रेष्ठ माना है।

उपरोक्त उदाहरण 'मुक्तिबोध' के बिंब और उसके भावों की पृष्ठिभूमि के सोपान पर प्रकाश डालता हैं। 'मुक्तिबोध' के बिंब अपनी काव्य-वस्तु के अनुरूप नवीन अर्थ-भावो से युक्त है। उनके बिंब जहॉ एक ओर आधुनिक जीवन की विभीषिका, आतंकपूर्ण भयानक स्थितियो का युगीन सत्रास, मानवीय कुंठा, घुटना, निराशा, अनास्था, तनाव, मूल्यहीनता आदि को बिबित करते है, वही दूसरी तरफ मानवीय अदम्य जीवन शक्ति, मूल्य, आस्था के भी चित्र प्रस्तुत करते है। उनके बिब समसामयिक विषयो और परिवेश को पूरी तरफ चित्रित एवं मूर्त बनाते हैं।

उद्‌भव के आधार पर बिंब का भेद

स्मृतिजन्य

स्मृतिजन्य बिंब पूर्वगामी अनुभूति का पुनरूत्पाद मात्र होता है, यह मानसिक जगत की स्मरण शक्ति पर बिंबित चित्रण है, 'मुक्तिबोध' की कविता मे इस बिंब के पर्याप्त उदाहरण मिलते है-

'मुझे याद आती है
आँखों मे तैरता है चित्र एक
उर मे सम्भाले दर्द
गर्भवती नारी का'।
XX XX XX XX
एकाएक टूट गया स्वप्न व छिन्न-भिन्न हो गए
सब चित्र
जागते मे फिर से याद आने लगा वह स्वप्न
फिर से याद आने लगे अँधेरे में चेहरे'.......।[25]

स्वरचित

स्वरचित बिंब नूतन व मौलिक होते हैं, यद्यपि उनके निर्माण के घटक हमारे अनुभव में अलग-अलग आ चुके होते हैं। विशुद्ध कल्पना तत्त्व को आधार बनाकर इनका निर्माण किया जाता है।

आसमान स्याही की

कड़ाही से एकाएक

सड़कों पर फैल गयी

सत्यों की मिठाई की चाशनी'।[26]

ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर बिंब का भेद

(1) चाक्षुष या दृश्य बिंब

चक्षुरूपी इन्द्रिय ही संवेदना को उद्वेलित करती है। 'डॉ नगेन्द्र' के शब्दों में ''इनका स्वरूप सबसे अधिक स्पष्ट होता है, क्योकि उसके आयाम अधिक मूर्त होते हैं। यही कारण है कि ऐसे अनुभव के लिए, जिसमे किसी इन्द्रिय का सीधा सन्निकर्ष होता है, प्रत्यक्ष विशेषण का प्रयोग किया जाता है। काव्य मे दृश्य-बिंबों का प्रयोग सर्वाधिक होताहै।''[27]

'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' कविताओ में दृश्य बिंबों की प्रधानता है।

'अनेक मंजिलो के तंग घेरों में

घने धब्बे

कि सदियों का पुराना मेल

लेटे धूल खाते प्रेत

जिनकी हड्डियों के हाथ में पीले

दबे कागज

भयानक चिटिट्यों का जाल जासूसी

कहीं पर रायफल का कारतूसी ढ़ेर

फैले युद्ध के नक्शे'।[28]

यह दृश्य-बिंब जहाँ एक ओर 'फ़ैण्टेसी' का अंश है, जो रहस्य, रोमांच, रोचकता का भाव जागृत कर रहा है, वही दूसरी ओर सदियो से उपेक्षित उपयोगी ज्ञान है। इसमें अतीत के जन-संघर्ष के अवशेष भी विद्यमान है। 'मुक्तिबोध' की कविताओ मे ऐसे रहस्यात्मक, भयावह तथा जीवन के दारुण सत्य को उद्घाटित करने वाले बिंबों की कमी नहीं है।

आलोचको ने दृश्य-बिंब के व्यापक क्षेत्र को वर्ग कल्पना तक सीमित कर दिया है। यद्यपि बिंब मे रंग विश्लेषण उसके चाक्षुष होने के प्रमाण है। किन्तु इसे रंग या वर्ण तक सीमति कर देना उचित नही है। इस वर्ण संवेदना जनित चाक्षुष बिंब के उदाहरण भी 'मुक्तिबोध' की कविता में प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं-

> दूर-दूर मुफलिसी के टूटे-फूटे घरो मे
> सुनहरे चिराग जल उठते हैं,
> आधी-अंधेरी शाम
> ललाई में निलाई से नहाकर
> पूरी झुक जाती है।''[29]
> xx xx xx
> 'गोपनीय भावों-सा जामुनी
> संध्या का नीलापन सरकता है'।[30]
> xx xx xx
> व सुदूर जंगल मे
> दीप्तिमान नारंगी ज्वाला-सा
> तारा टिमटिमाता है
> जामुनी अम्बर में'।[31]

'मुक्तिबोध' की लगभग सभी कविताओं मे रंग बिंब का प्रयोग देखा जा सकता है। अलग-अलग भावों के लिए विविध रंगो का प्रयोग है। जिसमें लाल और काले रंग की प्रधानता है। 'मुक्तिबोध' ने रंगों के प्रयोग में, उनकी प्रकृति का ध्यान रखा है। इसीलिए वे रंग उन भाव-दृश्यों को पूरी तरह मूर्त करते हैं।

(2) शब्द बिंब

जब शब्दों के माध्यम से बिंब उपस्थित होता है, तब वह शब्द बिंब कहलाता है। 'मुक्तिबोध' के काव्य मे इन बिंबों की भी कमी नही है। यथा-

> 'पिछवाड़े, ढ़ेरो मे खड़-खड़

कोई गड़बड़

सर-सर करता छत चढ़ा, फांद दीवार बड़ा

वह नाग

एक भय-जनक श्याम-संवेदन-कोब्रा।[32]

यहाँ 'सर-सर' शब्द कोब्रा की गति का द्योतक है। 'खड़-खड़' शब्द सांप के रेगने से उद्‌भूत है। ये शब्द कुछ गड़बड़ी भी सूचित करते हैं। 'पंचम पंक्ति' में 'नाग' शब्द का अग्रेजी अनुवाद 'कोब्रा' जहाँ पुनरावृत्ति के रूप में निरर्थक सा प्रतीत होता है, वहीं द्विरूक्ति का भावबोध कराता हुआ नाग की भयावहता की प्रतीति भी कराता है।

'सूनापन सिहरा

अँधेरे मे ध्वनियों के बुलबुले उभरे,

शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की,

मेरे ही उर पर, धँसाती हुई सिर,

छटपटा रही हैं शब्दो की लहरें

मीठी हैं दुःसह'!![33]

इस तरह के संश्लिष्ट बिंबों की बहुलता विशेष रूप से दर्शनीय है।

(3) गन्ध बिंब

घ्राण शक्ति के संवेदन के आधार पर वातावरण का चित्रण गन्ध बिंब या घ्राण बिंब कहलाता है। 'मुक्तिबोध' की कविताओं मे रस बिंब या घ्राण बिंब के उदाहरण कम ही हैं। 'मुक्तिबोध' ने 'चॉद का मुँह टेढ़ा है' शीर्षक कविता में अजगरी मेहराब की आदिम, जीर्ण, मटमैली एवं उपेक्षित अवस्था को इस गन्ध शक्ति के आधार पर बिंबित किया है-

'अजगरी मेहराब-

भरे हुए जमानों की

संगठित छायाओं में बसी हुई

सड़ी-बुसी बास लिए

फैली हैं रास्ते के मुहाने पर चुपचाप'।[34]

गन्ध शक्ति पर बिंबित एक और बिंब द्रष्टव्य है-

'वीरानी मे टूटे विशाल पुल के खण्डहर मे
उगे आक के फूलों के नीले तारे
मधु-गन्ध-भरी उद्दाम हरी
चम्पा के साथ उगे प्यारे'।[35]

(4) रस बिंब

कवि के अनुभव को स्वादगत प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त करने वाला बिंब आस्वाद परक या रस-बिंब कहलाता है। 'मुक्तिबोध' की कविता में निम्न पंक्तियो में स्वाद बिंब है-

'बड़ी अजीब (आँसुओं-सी नमकीन)
वह मिट्टी की सुगन्ध
मेरे हियें में समाती है'।[36]

उपर्युक्त उदाहरण में हृदय में समाती हुई मिट्टी की सुगन्धि को ऑसुओ-सा-नमकीन बताया है। निम्नलिखित पंक्तियो मे हृदय में धँसती हुई लहरें असहनीय रूप से मीठी है-

'मेरे ही उर पर, धँसती हुई सिर
छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें
मीठी है दुःसह।'[37]

(5) स्पर्श बिंब

'मुक्तिबोध' स्पर्श बिंब का निर्माण भयानक एवं विसंगत संसार के अनुभव की शारीरिक प्रतिक्रिया के रूप में करते हैं।

'अपने ही कृत्यों डरी
रीढ़-हड्डी
पिटपिची हुई
वह मरे साँप के तन सी ही लुच-लुची हुई।'[38]

xx xx xx xx

तरुणि, मेरा मुख ढ़ँके स्नेहाल तेरे बाल काले

मृदुल कर का स्पर्श कम्पित आज मेरी प्यास पा ले
मे उठूँ,सखि तरुणता-सा, तू बिठा सखि, वासनामयि,
उष्ण कर चिर-शीत कर दे मधुर तेरे गाल बाले।[39]

(6) व्यक्ति बिंब

निम्न पंक्तियो में व्यक्ति बिंब द्रष्टव्य है-

'काले-काले मेघ-सा
काटे हुए गणित की तिर्यक रेखा-सा
सरीसृप-सक्र सा
मेरे इस साँवले चेहरे पर कीचड़ के धब्बे है
दाग है
और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग
अग्नि-विवेक की'।[40]

गत्यात्मक बिंब

'मुक्तिबोध' ने प्रसंगानुसार गतिशील बिंबो का भी प्रयोग किया है 'अँधेरे में' कविता मे आया 'जुलूस का बिंब', एक अन्तर्कथा में 'अग्नि काष्ठ खोजती माँ', 'अन्तःकरण का आयतन' मे काव्य नायक की 'छाँह', 'पता नहीं' कविता में 'देव की यात्रा', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में 'चाँद की लुक-छिपकर चलती जासूसी', 'अँधेरे मे' कविता में काव्य नायक का भागना (भागता मै दम छोड़, घूम गया कई मोड़) आदि दृश्यों मे गतिशील बिंब-विधान का प्रयोग हुआ है चम्बल की घाटी मे प्रयुक्त एक गतिशील बिंब द्रष्टव्य है-

'गुंजान रात
अजनबी हवाओं की तेज भार-धाड़
बरगदी बबूलो को तोड़-ताड़-फाड़
क्षितिज पर अड़े हुए पहाड़ो से छेड़-छाड़
कोई नहीं आड़
मद्दिम चाँदनी में, हवाओं के हमलों में मैं

अधखुले रहस्यों मे टीलों के बीच
जाने किस फिक्र में घूम रहा हूँ'।[41]

भाव बिंब

'मुक्तिबोध' की कविता मे भाव बिंबों की भी कमी नही है। 'उत्साह', 'करुण', 'वीभत्स', 'निराशाजन्य' बिब आदि स्पष्ट दिखायी देते है। रसराज शृंगार और हास्य भाव बिब 'मुक्तिबोध' के काव्य में दिखायी नहीं देते। कतिपय भाव बिबो की झांकी द्रष्टव्य है।

(1) उत्साह

क्रान्तिकारियों की राह में फूल बिछाने वाला एक सुंदर उत्साह बिंब द्रष्टव्य है-

'जन संघर्षों की राहों पर
आगन के नीमों ने मंजरियाँ बरसायीं।
अम्बर में चमक रही बहना-बिजली ने भी
थी ताकत हिय में सरसायी'।[42]

(2) करुण बिंब

'. ..मैं अपने कमरे में
यहाँ पड़ा हुआ हूँ।
आँख खुली हुई हैं
पीटे गये बालक सा मार खाया चेहरा
उदास इकहरा
स्लेट पट्टी पर खींची गई तसवीर
भूत- जैसी आकृति-
क्या वह मैं हूँ
मैं हूँ?'[43]

(3) विषाद बिंब

इसके लिए कवि ने कहीं-कहीं पर प्रकृति का सहारा लिया है-

'अँधियारा पीपल देता है पहरा

हवाओ की निःसंग लहरों में कांपती
कुत्तों की दूर-दूर अलग-अलग आवाज
टकराती रहती सियारों की ध्वनि से'।[44]

(4) वीभत्स बिंब

निम्न पंक्तियो में पाठक के मन को घृणा से सरोबोर कर देने वाला वीभत्स बिंब प्रस्तुत है-

'जनता को ढ़ोर समझ
ढ़ोरों की पीठ-भरे
धावो में चोच-मार
रक्त-भोज, मांस-भोज
करते हुए गर्दन मटकाते दर्प भर कौऔं-सा
भूखी अस्थि-पंजर शेष
नित्य भार खाती-सी
रंभाती हुई अकुलाती दर्द भरी
दीनमलिन गौओं-सा
शब्दों का अर्थ जब''।[45]

'मुक्तिबोध' ने प्रायः कठोर यथार्थ के संदर्भ मे मानवीय भाव को व्यंजित करने के लिए भावात्मक बिंबों का सहयोग लिया है, यद्यपि इनमें संत्रास के भाव ही अधिक उद्‌घाटित हुए है, पर साथ ही उनमें आशा और प्रसन्नता का भाव भी है। ये यथार्थ की सत्यता को ध्वनित करते हैं-

'अजीब तरह से हुआ खून
मुर्च्छित कर वश में किया गया'।[46]

'मुक्तिबोध' ने रूपात्मक बिंबों का भी बहुत प्रयोग किया है। रूपबिंब के अन्तर्गत जीवन और जगत के जड़-चेतन रूपो के बिंब आते हैं। उनकी शुरु की रचनाओं में प्रेम और सौन्दर्य के प्रचुर बिंब उपलब्ध होते हैं।

'तारों-सा मैं तरल पड़ा हूँ, इन फूलों के कण्टक वन में

स्थिरता का वरदान न दो प्रिय, मेरे अस्थिर मानस सर को'।[47]

'तूँ और मैं' कविता में कई तरह के बिंब आये हैं जो प्रेम की निश्चित मनः स्थिति को व्यक्त करते हैं :

'मैं बना उन्माद री सखि, तू तरल अवसाद
प्रेम-पारावार पीड़ा, तू सुनहली याद
तैल तू तो दीप मैं हूँ, सजग मेरे प्राण।
रजनि में जीवन-चिता औ प्रात में निर्वाण
शुष्क तिनका तू बनी तो पास ही मैं धूल
आम मे यदि कोकिला तो पास ही मैं हूल
फूल-सा यदि मैं बनूँ तो शूल-सी तू पास
विधुर जीवन के शयन को तू मधुर आवास
सजल मेरे प्राण हैं री, सजग मेरे प्राण
तू बनी है प्राण! मैं तो अलि चिर-म्रियमाण'।[48]

'पता नहीं' कविता में भी रूप बिंबों की भरमार हैं। कुछ स्थल रूप-चित्रण की दृष्टि से द्रष्टव्य हैं

(अ) 'आसमान बाबा ने संकट पहचान हनुमान चालीसा..........गुनगुनाना शुरू किया'।[49]

(ब) 'सच्चाई के अधजले मुर्दो की सुनसान चिताओं की'।[50]

(स) 'शक्तियों का सिंदूरी विकराल खड़ा हुआ भैरो'।[51]

(द) 'उस अधियाले ताल के उस पार नगर निहारता सा खड़ा है पहाड़ एक'।[52]

ऐसे अनेक रूप-बिंबों से उनकी कविताएँ भरी पड़ी हैं कुछ रूप -बिंबो की 'मुक्तिबोध' ने बार-बार पुनरावृत्ति की है। 'बरगद', 'सूनी बावड़ी', 'सन्दूक', 'रहस्यमय कमरा', 'रक्तिम आलोक', क्रान्ति का प्रतीक 'लालरंग', सड़क पर या पेड़ो पर 'टंगे पोस्टर' आदि-

'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' के दृश्यो एवं भावों को प्राकृतिक उपादानो के माध्यम से भी बिंबित किया है। कहीं-कही ये प्राकृतिक दृश्य 'फ़ैण्टेसी' दृश्यों को पुष्ट करते हुए गूढ़ अर्थ की व्यंजना प्रस्तुत करते हैं। यथा-

'यह है अधियारी कुँआ,
करौदी की झाड़ी
में छिपी हुई चौड़ी मुँडेर
अध टूटी-सी
वीरान महक सूखी-सूनी
ठण्डी कन्हेर
पर लाल-लाल कुछ फूल
कि यह क्या है।'[53]

इस उपेक्षित स्थान और वीरान वातावरण में सूखी सूनी ठण्डी निष्क्रिया के बीच लाल-फूल के रूप में सक्रियता भी विद्यमान है।

मुक्तिबोध ने आध्यात्मिक एवं साधना से संबन्धित शब्दावली से भी बिंबों का निर्माण किया है इनका प्रयोग अप्रस्तुत-विधान के रूप मे किया गया है।

'नाभि नाल छूता हूँ अकस्मात
मृणाल, हाँ मृणाले/जल-खोहों से ऊपर उठ
लहरों के ऊपर चढ़/बनकर वृहद एक
काला सहस्त्रदल सम्मुख उपस्थित है
उसमें है कृष्ण रक्त'।[54]

भ्रष्टाचार एवं शोषण व्यवस्था के तह तक पहुंचने के प्रयास में जब काव्य नायक अपने लक्ष्य के मूल तक पहुंचता है तो उसे ज्ञात होता है कि 'काले सहस्त्रदल' ने ही इस पूरी व्यवस्था को अपने अधिपत्य में आबद्ध कर रखा है उसमे 'कृष्ण रक्त' के रूप मे उसका विचार है। काला सहस्त्रदल सत्ताधारियो का प्रतीक है।

'मुक्तिबोध' की कविताओ मे प्रखर समसामयिक यथार्थ प्रस्तुत हुआ है। मनुष्य की पशुता को बिंबित करने के लिए पशु बिंबो का प्रयोग किया है। इस प्रयोग में जहाँ उन्होने प्राचीन बिंबो का कलात्मक प्रयोग किया है, वही 'ओरॉग-उटाँग' जैसे नए मौलिक बिंब से भी पाठकों को परिचित कराया है। यह मनुष्य के अचेतन में रहने वाली पाशविक वृत्ति का पर्याय है। अपने

स्वार्थ के लिए अपने नैतिक विचारों की हत्या करने वालो के लिए 'शूकरी' के बिंब का प्रयोग किया। 'एक प्रदीर्घ कविता' में 'श्वान', 'बन्दर', 'लंगूर'[55] के बिंब स्वार्थ वृत्ति के परिचायक हैं। इसी कविता मे एक अन्य स्थल पर अपने लाभ हेतु अपने भ्रष्ट मालिक के चापलूस के प्रतीक के रूप मे 'श्वान', 'रीछ', 'शुकर' एवं 'तोता' आये है।[56] इस कविता मे श्रृंगाल एवं 'बिल्ली' के अनुभव 'शिशु' के रक्षा की चर्चा का भी बिंब द्रष्टव्य है।

'क्रोधी श्रृंगाल की आँखो से
जब शुक्र गगन मे दमक उठे
जगली बिल्ली की आँखो से
जब तारे नभ में चमक उठे
जब लाल बबर फौजी जैसा
जो खूनी चेहरा चमक उठा
वह चाँद गगन में देखो तो
उसकी आंखों से बचा-बचा गुपचुप चलकर
यदि आत्मज बालक-सत्य
यही यदि वह त्यागे
उस पार उसे पहुंचाये यदि
अनुभव शिशु की रक्षा होगी'।[57]

यह प्रसंग मनुष्य के स्वार्थान्ध होने के बाद उपजी पशुता के साथ सामाजिक संत्रास को भी व्यंजित करता है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है मे 'बिल्ली' सत्तापक्ष के गुप्तचरों की प्रतिनिधि बनकर आयी है। 'भविष्यधारा' और इस 'ऊंचे चौड़े टीले पर' कविता में भी प्रायः यही अर्थ बिंबित होता है।

'मुक्तिबोध' ने ब्रह्माण्ड से संबंधित शब्दों एवं उनसे संबंधित नियमों का प्रयोग अप्रस्तुत के लिए किया है। ऐसे बिंब एक 'फ़ैण्टेसी' का सृजन करते हैं और अप्रस्तुत मे छिपे गूढ़ अर्थ को बोध भी कराते हैं। द्रष्टव्य है एक उदाहरण जिसमे आत्मविस्तार की प्रक्रिया का परिचय दिया गया है।

'कि जिससे ब्रह्माण्ड-धूल बनकर मैं
गहन अनन्त में
संवेदनशील पटल बन सकूँ
अनेकानेक तारा रश्मि-उल्का प्रकाश में
उजल सकूँ।
विभिन्न गुरुत्वाकर्षण अनुभव करता हुआ
सीख सकूँ
विराट जीवन से..........'।[58]

प्रसंगानुसार 'मुक्तिबोध' ने गणित एवं वैज्ञानिक बिंबो और आधुनिक जीवन से सबधित बिबों का भी प्रयोग किया है, जो अपने प्रसंग को समुचित अभिव्यक्ति देते है। 'एक टीले और डाकू की कहानी', 'मेरे सहचर मित्र', चाँद का मुँह टेढ़ा' हैं, 'अँधेरे मे' आदि कविताओं मे इस तरह के बिंबो का प्रयोग हुआ है।

'मुक्तिबोध' की कविताओं में पक्षियों से संबंधित भी कुछ बिंब है जिसमें 'उलूक', 'घुग्घू', 'गिद्ध', 'चिड़ियाँ', 'पशु-पक्षी', 'चमगादड़' प्रमुख हैं जो आततायी और विध्वंसक प्रवृत्ति के समर्थित भावों को प्रकट करते हैं।

'वीरान प्रदेशों पर घुग्घु
चुपचाप तेज देखता रहा
झरने के पथरीले तट पर
रात के अँधेरे में धीरे-धीरे
चुपचाप कौन वह आता है या आती है''[59]
xx xx xx xx
'इस नगरी के सिद्धो जैसे वृद्ध बरगदों
पेड़ो पर हैं
गिद्धो और उल्लुओं के उदण्ड बसेरे
जिनमें चलती हाथा पाई'[60]

XX XX XX XX

'वह चमगादड़ दल

भटकता है प्यासा-सा

बुद्धि की आँखो मे

स्वार्थों का सीसा-सा'।[61]

'मुक्तिबोध' ने 'फैण्टेसी' शैली मे जिन कविताओं का निर्माण किया है, उसमे 'आद्य बिंबो' का प्रमुख रूप से प्रयोग किया गया है। 'आद्य बिंब' का संबंध अचेतन से है, इसीलिए 'फ़ैण्टेसी', स्वप्न आदि में इस प्रकार के बिंबो का प्रयोग होता है। 'मुक्तिबोध' ने 'किमाकार देव-पुरष', 'सघोजात शिशु और 'अचेतन' के लिए 'आद्य बिंब' का प्रयोग किया है।

'मुक्तिबोध' ने देवपुरुष (अलग-अलग कविताओं में अलग-अलग नामों से अभिहित किया है।) के बिंब की सृष्टि आदिम लोक विश्वास, मिथको एव अपनी मौलिक कल्पना के सहयोग से किया है। 'एक स्वप्न कथा' में भी वह शक्तिपुरुष दोनों हाथो से आसमान थामे दृष्टिगोचर होता है। 'एक अन्तंकथा' में भी वह आसमान दोनों हाथो से थामे है, किन्तु नायक के कन्धे पर खडा है, 'मेरे युवा जन मेरे परिजन में वह चेतन पुरुष हिय के तालाबो मे सिर से पैर तक लहू-लुहान नहाता है। 'लकड़ी का रावण' में वह लक्षहस्त लक्षमुख वाला भीमाकाय रावण है, जो कवि की नितान्त मौलिक कल्पना का आश्रय लेकर विरचित हुआ है।

'मुक्तिबोध' की अधिकांश कविताओ मे सद्योजात-शिशु का बिंब आया है। 'एक प्रदीर्घ कविता' में यह शिशु किसी निर्जन वीरान स्थान पर छोड़ा गया है।

'त्यागे मन्दिर के अधटूटे गुम्बद पर स्थित

घुग्घु की आँखो को अब तक

कोई भी धोखा नहीं हुआ, उसने देखा

झरने के तट पर रोता है कोई बालक

अधियारे मे काले सियार से घूम रहे

मैदान सूघते हुए हवाओं के झोके

झरने के पथरीले तट पर

सो चुका अरे-किन-किन करके कुछ रो-रो के
चिथड़े से सद्योजात एक बालक सुंदर।[62]

'अँधेरे में' कविता मे 'गांधी' द्वारा काव्य नायक को शिशु सौंपा जाता है 'ओ काव्यात्मन फणिधर' मे श्रम गरिमा का दूध पीकर विकसित होता जाता है।, 'चम्बल की घाटी मे' शीर्षक कविता मे काव्यनायक पीठ पर फटे अगोछे से बंधा है और एक बालक कन्धे पर बैठा है।

अचेतन बिंब के लिए कवि ने 'बावड़ी' 'अंधेरा', 'प्राकृत गुहा', 'समुन्दर', 'तम विवर', 'आइना', 'अधियारा', 'कुआँ' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।[63]

'मुक्तिबोध' वस्तुतः आत्मनुभव के कवि है, जिसे वे 'फ़ैण्टेसी' कथा बिंबो या चरित्र बिंबो के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे धारा प्रवाह चित्रण करते है; सहसा आवेग के किसी चरम क्षण मे यह रहस्य स्वतः खुल जाता है कि वे किसी और का नहीं अपना ही चित्रण कर रहे हैं। 'अँधेरे में' उनकी प्रसिद्ध कविता है, इसमें वे एक भयावह किन्तु मोहक तिलिस्म ढूढ़ते हैं किंतु सारा रहस्य तंत्र उस बिन्दु पर सहसा ही छिन्न-भिन्न हो जाता है जहाँ कवि यह कह देता है।

'वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है,
............आत्मा की प्रतिमा'।[64]

'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग-उटांग' कविता मे 'ओरांग-उटांग' कोई नहीं कवि का अपना आत्म सत्य है। 'ब्रह्मराक्षस' कविता भी इसी शैली में लिखी गयी है। कवि कविता के अन्त मे उसके शिष्यत्व की आकांक्षा प्रकट करता है। यह आकांक्षा ही बताती है कि 'ब्रह्मराक्षस' कवि आत्म-सम्बद्ध चरित्र बिंब है, जिसे उसने 'फ़ैण्टेसी' के छद्म रूप में प्रस्तुत किया है।[65]

'मुक्तिबोध' ने अपनी काव्य-वस्तु के अनुरूप बहुत सारे नवीन बिंबो की रचना की कुछ उदाहरण प्रस्तुत है 'भभकते हैं नीले-नीले बड़े-बड़े अक्षर', 'संवलाई चाँदनी', 'फुसफुसाते हुए शब्द', 'हड़ताली अक्षर', 'आवारा शोहदों की चाँदनी', 'भैरो के सिंदूरी भयावने मुख', जिदगी की झल्लाई हुए भाग', 'शक्ति के पर्वत दहाड़ते', 'वेदना की तड़ित-कराहती', 'साजिश

के कुहरे', 'अस्त्रों को पकड़े कलाइयों को मोटी नस हाँफने लगी', 'रुधिर स्नात हँसता समुद्र', 'साँवली हवाओं', 'लक्ष-मुख दानव सा', 'लक्ष-हस्त देव-सा', 'ब्रह्मराक्षस', 'रक्तलोक स्नात पुरुष'[67]। 'मुक्तिबोध' ने अपने काव्य की विविध परिस्थितियों के अनुरूप कोमल एवं कठोर दोनो प्रकार के बिबो का प्रयोग करते हैं।

'देवेन्द्र इस्सर' के अनुसार ''मुक्तिबोध के काव्य-बिब न आंखो को सुख देते है। न मन को शान्ति, उल्टे मस्तिष्क पर हथौड़े मारते हैं। जासूसी उपन्यासो की भाँति एक के बाद दूसरी फिर तीसरी गुफा मे उतार देते हैं, जहाँ एक रोमांचकारी दृश्य देखने को मिलता है। यद्यपि उनके बहुत से बिंब मानसिक तनाव उत्पन्न करते है, परन्तु सभी बिंब ऐसे नही हैं। ऐसा कहना अतिरेक हैं। ऐसे बिंब की उत्पत्ति का कारण उनका कटु कठोर यथार्थ बोध है''। 'मुक्तिबोध' के बिंबो के बारे मे 'शमशेर बहादुर' जी लिखते हैं- '''मुक्तिबोध' के हर इमेज के पीछे शक्ति होती है। वे हर कथन को दमदार, अर्थपूर्ण और चित्रमय बनाते हैं।''[67]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मुक्तिबोध' की बिंब योजना नवीनता एवं अनूठेपन से युक्त है। उनके बिंब उनकी सृजनात्मक गहराई को उद्घाटित करते हैं। बिंबो ने उनकी काव्य-संवेदना को अधिक मुखर किया है, जिससे कथ्य में अधिक सुस्पष्टता आयी और विडम्बना पूर्ण, विद्रूप यथार्थ का पूरा चित्र उभर पाया है। उनके काव्य की बिंब शृंखला 'फ़ैण्टेसी' के अनुरूप बहुत सुविचारित रूप मे गुँथी हुई है, जिससे 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की पुष्टि के साथ मूल मर्म (कथ्य) भी अपने अभीष्ट स्वरूप को अक्षुण्य रख पाया है।

प्रतीक

प्रस्तुत रूप-योजना में जहाँ बिंबों का विशेष महत्त्व है वहीं अप्रस्तुत रूप-योजना मे प्रतीको का, प्रतीक अनुभव अथवा अनुभूति की एक अवस्था विशेष का सामाजिक रूप है। इनके संतुलित प्रयोग से काव्य में एक नयी अर्थवत्ता का समावेस होता है। मानव को अपने को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक खोजना पड़ता है। वस्तुतः अभिव्यक्ति ही प्रतीकत्त्व है। प्रतीकों की स्थित पर तारसप्तक के कवियों ने अवश्य कुछ वितार किया है। उनके अनुसार पुराने प्रतीक अब उनकी उलझी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने मे नितान्त असमर्थ हैं। नये उलझे हुए युग की जटिल सवेदनाओं तथा अनुभूतियो को नूतन प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की

आवश्यकता का अनुभव उन्होंने किया है।

'अज्ञेय' के अनुसार- ''प्रत्येक स्वस्थ्य काव्य-साहित्य प्रतीकों की नये प्रतीको की सृष्टि करता है और जब वैसा करना बन्द कर देता है तब जड़ हो जाता है।''[68]

'प्रतीक सामान्यतया चिह्न को कहते हैं। जब कविता मे कोई वस्तु इस तरह प्रयोग की जाती है कि वह किसी दूसरे वस्तु की व्यंजना या संकेत करे तब उसे प्रतीक कहते है'।[69]

प्रतीको के विषय में विचार करते हुए 'सी०एम० बावरा' ने कहा है- ''ऐसा लगता है कि मानवता को अपने को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक खोजना पड़ा है। वास्तव में अभिव्यक्ति ही प्रतीकत्त्व है''।[70] अभिव्यक्ति को कलात्मक बनाने के लिए प्रतीक सदैव अनिवार्य रहा है। 'राबर्ट सिलबरर' ने अपने लेख 'प्रतीक रचना पर' में कहा है- 'हम लगातार ऐसे दृश्यो का सामना करते हैं, जिनको उनके ऊपरी अर्थ तक सीमित नहीं किया जा सकता, उन्हे किसी का प्रतीकात्मक प्रतिनिधि मानना होता है, जो उनके पीछे छिपा होता है और जो उसमे निहित होता है''।[71]

साहित्य के क्षेत्र में किसी भाव या विचार का प्रतिनिधित्व करने वाले शब्द 'प्रतीक' कहलाते हैं वैसे तो हमारी भाषा का प्रत्येक शब्द ही सामान्यतः प्रतीक है।....'वस्तुतः किसी भी शब्द के प्रचलित अभिधेय अर्थ को ग्रहण करते हुए भी जब उसके द्वारा किसी अन्य अर्थ की सूचना दी जाय तो उसे प्रतीक कहते हैं'।[72]

जब एक ही शब्द या अप्रस्तुत किसी सम्पूर्ण अर्थ संदर्भ को व्यंजित करने की शक्ति अर्जित कर लेता है तब वह प्रतीक बन जाता है।

प्रतीक और बिंब

कल्पना से बिंब जन्म लेता है और बिंब से प्रतीक का आविर्भाव होता है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिंब की सृष्टि होती है और जब बिंब व्युत्पन्न अथवा बार-बार प्रयुक्त होने से किसी निश्चित अर्थ मे निर्धारित हो जाता है, तब प्रतीक का निर्माण होता है।[73]

बिंब स्वतःसंभवी होते हैं, जबकि प्रतीकों का निर्माण सचेष्ट क्रिया है। प्रतीक-निर्माण मे बुद्धि कर्ता के पद पर रहती है, जबकि बिंब का प्रमुख धर्म है ऐन्द्रियता। इसीलिए 'लैंगर' ने

प्रतीक को कान्सेप्चुअल कहा है और बताया है कि प्रतीक-सृजन में मनुष्य का मस्तिष्क केवल ट्रांसमीटर का ही कार्य नहीं करता, ट्रांसफार्मर का भी कार्य करता है। प्रतीक मे सूक्ष्म अर्थ की नियोजना रहती है। उसके सम्पूर्ण अर्थ की व्याख्या अन्य शब्दों मे नही की जा सकती। बिंब का सीधा सबध अभिव्यक्ति और मानस पटल पर उभरने वाले चित्रो से है। बिंब द्वारा प्रेषित अर्थ सहज ग्राह्य और सब के लिए एक सा होता है। इसके विपरीत प्रतीक द्वारा प्रेषित अर्थ भिन्न-भिन्न पाठक अपनी-अपनी सूझ-बूझ, शक्ति, शिक्षा-दीक्षा और योग्यता के अनुसार अलग-अलग ग्रहण करेगे। अनेक बार पाठक प्रतीक को उस अर्थ में ग्रहण नहीं करता जो लेखक को अभीष्ठ था, इसीलिए प्रतीकों को समझने के लिए संदर्भ बहुत महत्त्वपूर्ण है।[74]

बिंब मे संवेदना अपने तत्कालिक रूप में होती है, लेकिन प्रतीक में संवेदना तत्कालिक रूप को लांघ जाती है बिंब जिस वस्तु दृश्य या व्यापार का होगा वह उसी के आन्तरिक बाह्य स्वरूप के सघन और गतिशील रूप का उद्घाटन करेगा, लेकिन प्रतीक प्रस्तुत वस्तु से अधिक और भिन्न किसी और बात का संकेत करता है।[75]

बिंब मे विषय-वस्तु का बोध प्रत्यक्ष एवं अभिधा में प्रस्तुत किया जाता है, जबकि प्रतीक के मूल में लक्षणा और व्यंजना कार्य करती है। बिंब में शब्दावली सदा एकार्थक होती है। जबकि प्रतीक में शब्दों के कम से कम दो अर्थ होते हैं। बिंब का लक्ष्य चित्रात्मक है, जबकि प्रतीक वक्रता के द्वारा आकर्षण उत्पन्न करता है।[76]

प्रतीक और 'फ़ैण्टेसी'

'फ़ैण्टेसी' कविता के शिल्प में प्रतीक का बहुत ही प्रमुख स्थान है। कविता में निहित मुख्यार्थ और कथ्य मूल रूप से प्रतीक से ही स्पष्ट होता है, क्योंकि विभाव पक्ष प्रतीकों में छिपा रहता है। 'फ़ैण्टेसी' में प्रतीकों के कारण ही कवि अनावश्यक विस्तार से बच जाता है। प्रतीक सब कुछ संक्षेप मे ही कह जाते हैं।

'फ़ैण्टेसी' शिल्प के प्रतीक, सामान्य कविता के शिल्पगत प्रतीक की तुलना में खतरनाक एवं दुरुह होते हैं। यदि उनके सही अर्थ को न पकड़ लिया जाय, तो अध्ययन कर्ता उसमे प्रस्तुत मुख्य अर्थ या कवि के द्वारा उठाये गये वास्तविक अभिप्राय का स्पर्श भी नहीं कर

सकेगा। जिससे अर्थ के अनर्थ होने में देर नहीं लगती तथा कविता भी क्लिष्ट बन जाती है।

'फ़ैण्टेसी' शिल्प के कारण मूल मर्म की अभिव्यक्ति उसमें प्रयुक्त भाषा के सामान्य अर्थ संयोजन से पूरी तरह उद्‌घाटित नही होती। अतः उसमें कवि को लाक्षणिक बोधगम्यता की सृष्टि करनी पड़ती है। 'फैण्टेसी' की रोचकता एवं आकर्षण प्रतीको के कारण ही संरक्षित रहती है।

सामान्य प्रतीको की ही भाँति.......'फंतासी मे प्रतीक' एक संभावना के द्वारा यथार्थता का अधिग्रहण कराते हैं। वे हमारी नयी चेतना के किसी एक महीन तन्तु को झनझना देते हैं। इस तरह वे चिन्त के द्रष्टिभावक हैं और चेतना के एकनिष्ठ संवर्धक भी'।[77]

'मुक्तिबोध' का प्रतीक-विधान

'मुक्तिबोध' के प्रतीक-विधान के विषय में 'चंचल चौहान' का मत है कि '''मुक्तिबोध' के प्रतीक ही उनके अर्थ के स्रोत हैं। 'मुक्तिबोध' का प्रतीक-विधान अपनेपन की वर्षा करता है और साथ ही हमारे सबके अपने-अपने तप्त अनुभवों की तुलना करने में भी सक्षम होता है। उसकी अपनी धक-धक मे दर्दीले फैलेपन क़ी मिठास है''। उदभ्रांत शब्दों के नये आवर्त्त मे उनका 'आत्म-चेतस', विश्व-चेतस' में बदला हुआ है। प्रतीकों के माध्यम से रूपान्तरण की प्रक्रिया इतनी अनूठी चरमता में हिन्दी काव्य में नहीं मिलती।''[78]

'मुक्तिबोध' के अनेक शब्द प्रयोग एक साथ ही प्रतीक और बिंब दोनों हैं जैसे 'ब्रह्मराक्षस', 'ओटाँग -उटाँग', 'लकड़ी का रावण', 'वानर' आदि।

'फ़ैण्टेसी' कविता मे प्रतीको के उचित संयोजन और उनके द्वारा अभीष्ट अर्थ उद्‌बोधन के कारण अभिव्यक्ति सफल एवं सार्थक बन जाती है। 'मुक्तिबोध' की रचनाओ में सांस्कृतिक, पौणामिक-मिथकीय, प्राकृतिक-ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, सामाजिक, राजनैतिक, जीव-जगत, रंग, ब्रह्माण्ड आदि क्षेत्रों के प्रतीक प्राप्त होते हैं। 'मुक्तिबोध' के प्रतीकों के प्रयोग की विशेषता यह है कि उनके प्रतीक अलग-अलग कविता मे भिन्न-भिन्न सन्दर्भों मे भिन्न-भिन्न अर्थ उदघाटित करते हैं कटिपय प्रतीकों के उदाहरण द्रष्टव्य है। कतिपय प्रतीकों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं

सांस्कृतिक प्रतीक

आधुनिक प्रगतिशील कवि होने के कारण 'मुक्तिबोध' प्राचीन संस्तिक की शोषणकारी प्रवृत्ति के विरुद्ध हैं, किन्तु प्राचीन काल से चली आ रही शोषण की परम्परा को स्पष्ट करने के लिए कवि ने इन्ही प्राचीन सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग भी किया है।

'डूबता चाँद कब डूबेगा' कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

'आँखे फाड़े मैंने देखा मन के मन में
जाने कितने कारावासी वसुदेव
स्वयं अपने कर में, शिशु-आत्मज ले
बरसाती रातों में निकले
घंस रहे अँधेरे जंगल में
विक्षुब्ध पूर मे यमुना के
अति-दूर, अरे, उस नन्द-ग्राम की ओर चले
जाने किसके डर स्थानान्तरित कर रहे वे
जीवन के आत्मज सत्यों को
किस महाकंस से भय खाकर गहरा-गहरा[79]

यहाँ पर 'महाकंस', शोषक का प्रतीक है। 'वसुदेव', शोषित एवं 'शिशु आत्मज', सत्य का प्रतीक है। इस कविता में कवि उस पौराणिक सत्य को उजागर कर रहा है कि सत्य का निष्कासन नया नहीं, अपितु पौराणिक काल से चला आ रहा है।

पौराणिक प्रतीक

'मुक्तिबोध' ने प्राचीन प्रतीकों का चयन कर सफलता पूर्वक उनका प्रयोग किया है कतिपय पौराणिक घटनाओं को आधुनिक समाज से जोड़ने का सुंदर सफल प्रयास किया है।

'आयु में यद्यपि मैं प्रौढ़
बुद्धि से बालक हूँ
मै एकलव्य जिसने निरखा...

ज्ञान के बन्द दरवाजे की दरार से ही
भीतर का महा मनो मंथनशाली मनोज्ञ
प्राणाकर्षक प्रकाश देखा'।[80]

प्राचीन काल के समाज में जिस प्रकार एकलव्य जैसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के लिए ज्ञान के दरवाजे बन्द कर दिय गये थे। उसी प्रकार आज भी समाज मे अनेक 'जीनियस' है, जिसके विकास का रास्ता बन्द है और वे अवसर की तलाश मे भटक रहे हैं। इसमे कुछ ऐसे भी है, जो विघ्न बाधाओ को झेलते हुए मानव मुक्ति की दिशा में कदम बढ़ाते हैं। ऐसे ही मानव मुक्ति के लिए कदम बढ़ाने वाले और शोषित जन का प्रतिनिधित्व करने वाले अर्जुन का चित्र द्रष्टव्य है। जिसकी आँखो में शोषणकारियों के विरुद्ध एक पवित्र ज्वाला दहक रही हैं-

'वह सवालाया कलियाया मुँह
है स्नेह भरी चिन्ता मे
शाल्मलि वृक्ष तले
उद्विग्न खड़े वनवासी दुर्धर अर्जुन का
जिसके नेत्रों में चमक उठे
चन्दन के पावन अंगारे'।[81]

ऐतिहासिक प्रतीक

ऐतिहासिक प्रतीक ''मुक्तिबोध' के काव्य में कम ही दृष्टिगोचर होते है। ऐतिहासिक प्रतीको से सामान्य मानव का महत्त्व प्रतिपादित होता है। 'गांधी', 'तिलक', 'टाल्सटाय' आदि को जनवादी चेतना के पोषक के रूप में प्रयुक्त किया है। 'एक प्रदीर्घ कविता' मे 'शिवाजी', 'रवि राज-पुत्र', विकासवान चेतना के प्रतीक है, 'रामायण' नवीन चेतना का प्रतीक है-

'वह जन है जिसके उच्चभाल पर
विश्व भार, और अन्तर में
निःसीम प्यार'।[82]

XX XX XX

'अम्बर के चलने से उतार रवि-राज पुत्र
ढ़ांक कर सांवले कपड़ो मे
रख दिशा-टोकरी में उसको
रजनी रूपी पन्ना दाई
अपने से जन्मा पुत्र-चन्द्र फिर सुला गगन के पलने में
चुपचाप टोकरी सर पर रख
रवि-राज पुत्र ले खिसक गयी
पुर के बाहर पन्ना दाई
....इसलिए कि अब शशि की हत्या का क्षण आया।'[83]

आज भी मालिकों के लिए अपने पुत्रो का बलिदान न जाने कितनी पन्ना दाईयों ने इस समाज मे किया है। बलिदान के रूप बदल गये हैं, किन्तु परम्परा ज्यो कि त्यो कायम है। मॉ का मजदूर बेटा अपने रक्त से मिल मालिक के बेटे की दुनियॉ आबाद करता ही है।

प्राकृतिक प्रतीक

इसका प्रयोग 'मुक्तिबोध' की कविताओं में प्रचुरता से मिलता हैं। 'वट-वृक्ष', 'कमल' आदि कवि के प्रिय प्रतीक हैं। कहीं-कहीं कवि ने सर्वथा मौलिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। मधुमक्खी के छत्ते में अनगिनत छेद होते हैं। उसी प्रकार कवि की छाती में अनेक छिद्र हैं। मधुमक्खी फूलों से एकत्रित मधु की रक्षा करता है। कवि अपने पैने डंको वाली बुद्धि से जिन्दगी के फूलो से एकत्र किये गये मधु के रस बिन्दु की रक्षा करता है।

'छाती में मधुमक्खी का छत्ता फैला है
जो अकुलाया
औ' दंश तत्परा मधुमक्खी के दल-दल
रस-मर्मज्ञाओ की सेना स्नेहान्वेषी
पर डंक सतत तैयार
बुद्धि का नित संबल।
मधुमक्खी दल ने जिन्दगियों के फूल से

रस-बिन्दु-मधुर एकत्रित कर संचित रखने
मेरे प्राणों में
अग्नि-परीक्षाओं-से गहरे छेद किये
छाती मधुपूरित अनगिन छेदो का जाला'।[84]

दुःख से चलनी बने हृदय मे भी स्नेह का मधुकोष सचित है और उसी मधुकोश के सहारे संघर्षरत व्यक्ति का इतना सशक्त चित्रण 'मुक्तिबोध' के अतिरिक्त किसी अन्य कवि की लेखनी से निःसृत होना सम्भव नहीं।

सैद्धान्तिक प्रतीक

आधुनिक यांत्रिक सभ्यता की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने यंत्र प्रतीको की योजना की है, जो कि मौलिक हैं। मार्क्सवादी कवि ''मुक्तिबोध'' ने मशीनों को मानव-प्रगति का पथ प्रशस्त करने वाला कहा है। जहाँ ये मशीने कवि के मन में विक्षोभ उत्पन्न करती है, वहाँ युगानुकूल एक साफ-सुथरा रास्ता भी तैयार करती है, जिसे कवि भी चाहता है।

'इस दिल के भरे रिवाल्वर में
बेचैनी जोर मारती है, इसमें क्या शक!
क्यों ताकतवर उस मशीन के
पिस्टन की सी दिल की धक-धक'
उद्दाम वेग से चला रही
ये लौह चक्र
मन-प्राण बुद्धि के विक्षोभी
मन स्याह स्टीम-रोलर जीवन सा
सुख-दुःख की
कंकर गिट्टी यक साँ करके
है एक रास्ता बना रहा युग के मन का
मेरे मन का'।[85]

रंग प्रतीक

'मुक्तिबोध' ने अपनी कविताओं में मुख्यतः 'लाल' और 'काले' इन दो रंगो का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। लाल रंग प्रसंगानुसार सक्रियता, क्रान्ति चेतना और खतरे का प्रतीक है, यद्यपि इसका और भी प्रतीकार्थ हो सकता है। काला रंग प्रायः निराशा, विध्वंश, विकृति का प्रतीक है।

नारी प्रतीक

'एक अन्तर्कथा' मे वह 'माँ' है। अँधेरे में वह 'स्वप्न-स्पर्श अज्ञात प्रणयिनी' है। 'अन्तःकरण का आयतन' कविता में 'प्रेयसी' है जो प्रेरणास्रोत है तो 'चकमक की चिनगारियाँ' मे वह 'मनो आकार-चित्रा सुनेत्रा' है।[86]

अचेतन के प्रतीक

'मुक्तिबोध' ने बावड़ी, अंधेरा, अंधियारा कुँआ, अद्‌भुत समुन्दर, तम विवर, आइना, गुहा आदि का प्रयोग अचेतन की प्रस्तुति के लिए किया है।[87]

जीव-जगत (पशु-पक्षी)

''मुक्तिबोध'' ने मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्ति को दर्शाने के लिए विविध पशु-पक्षियों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है। प्रतीक के रूपमें इनका प्रयोग करते समय उन्होंने इनके प्रवृत्तिगत गुणो का विशेष ध्यान रखा है। कविता में इनका प्रयोग गुण धर्म साम्य के अनुरूप हुआ है।

'दिमागी गुहान्धकार का ओराँग-उटाँग' कविता में ओरांग-उटांग' मनुष्य की विकृति चेतना तथा उसकी पशु प्रवृत्ति का प्रतीक है।[88] 'बिल्ली'[89], 'श्वान'[91], 'रीछ', 'शूकरी'[92] आदि सभी आततायी सत्ता से सम्बद्ध है, आतंक-पोषण के प्रतीक हैं। ये सभी पशु, खूंखार, आक्रामक प्रवृत्ति के होते हैं। 'श्वान', खूंखार होने के साथ ही अत्यन्त स्वामिभक्त होता है। 'शूकरी' अपने 'जन्मते बच्चों को स्वयं खा लेती है। ''मुक्तिबोध'' ने उन लोगों के लिए 'शूकरी' का प्रयोग किया है, जो थोड़ी सी कठिनाई या अवरोध देखकर पलायन का मार्ग चुनते हैं, कठिनाइयों के डर से अपने विचारों की हत्या कर देते हैं। इसीलिए कवि ने 'भविष्यधारा' कविता

मे उसे 'मूर्ख' कहा है।[93]

'बन्दर' अलग-अलग कविताओं में प्रसंगों की विविधता के अनुरूप अलग-अलग प्रतीकार्थ रखता है। 'एक प्रदीर्घ कविता' मे वह स्वार्थ वृत्ति' का परिचायक है,[94] जबकि 'लकड़ी का रावण' मे वह जनशक्ति, जनचेतना, जनता का प्रतीक है।[95] नाग, 'ओ काव्यात्मन फणिधर' मे नवीन प्रासंगिक मूल्य व चेतना का संरक्षक है।[96] जबकि अन्य दूसरी कविताओ मे उसका नकारात्मक रूप है।

'मुक्तिबोध' की कविताओं में पक्षी प्रतीक के रूप में 'उल्लू', 'चमगादड़', 'गिद्ध', 'घुग्घू' आदि का प्रयोग मनुष्य की कुत्सित मनोवृत्ति और विकृत चेतना को दर्शाने के लिए किया गया है। घुग्घू इन सब में मुक्तिबोध का सबसे प्रिय और चर्चित प्रतीक है। इसको विशेष ख्याति 'अँधेरे में', 'चांद का मुंह टेढ़ा है' तथा 'एक प्रदीर्घ कविता' जैसी रचनाओं से प्राप्त हुआ है। ये सभी पात्र जीवन के विकृत मूल्यो को ध्वनित करते हैं।

> 'मानव आदर्शों के गुम्बद से आज यहाँ
> उलटे लटके चिमगादड़ पापी
> भावों के'।[97]
>
> XX XX XX
>
> 'वह कारण, सामाजिक जंगल का
> घुग्घू है
> है घुग्घू का संगठन, रात का तम्बू है'!![98]

'गिद्ध', 'अन्तःकरण का आयतन' नामक कविता में पूंजीवादी व्यवसायिक सभ्यता और संस्कृति की छाया-माया में पलने वाली मनोधारा और विचार धारा का प्रतीक हैं।[99]

शिशु

शिशु नवचेतना, क्रान्तिकारी विचारधारा, मूल्यवान जीवन-दर्शन एवं जीवन-सत्य का प्रतीक है। यद्यपि अलग-अलग विद्वानों ने इस प्रतीक के अलग-अलग अर्थ दिये हैं। इस विसंगतिपूर्ण, विद्रूप, भयावह वातावरण के कारण वह उपेक्षित है।

> 'चिथड़े मे सद्योजात एक बालक सुंदर

आत्म रूपी माता ने जाने कब त्यागा

जीवन का आत्मज सत्य

न जाने किसके डर'।[100]

'मुक्तिबोध' की कविताओ मे वह काव्य नायकों से अपने संवहन अर्थात दायित्व पालन की माँग करता है। आज के विषम वातावरण मे उसका संवहन एक कठिन कार्य है क्योकि वह बुहत ही भारवान (जिम्मेदारी पूर्ण कठिन दायित्व पालक) है। उसे जग के समक्ष लाना (प्रसार करना) दुष्कर और जोखिम भरा है। प्रायः सभी कविताओं मे 'शिशु' काव्य नायक को पलायन से रोककर (रूदन द्वारा चिल्लाकर) सक्रिय-कर्म पथ की ओर प्रवृत करता है।[101]

'ओ काव्यात्मन फणिधर' में 'शिशु', सर्वहारा वर्ग के सक्रिय व्यक्ति से जुड़कर अपना विकास करता है।

'श्रम गरिमा का पी दूध

सत्य नवजात

विकसता जायेगा'।[102]

यह 'शिशु' जहाँ उपयुक्त धरातल होने पर विकसित होता है, वहीं भ्रष्ट पूंजीवादी दुर्नीतियों के कारण मृत बनता है। यह मृत शिशु आधुनिक सभ्यता के विकास हेतु संकट का सूचक है।[103] शिशु प्रतीक का संबंध 'आद्य प्रतीक' से है।

देव पुरुष

देव पुरुष भी आद्य प्रतीको से सबंधित है। 'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' शैली में इसका सहज स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। 'सुरेश ऋतुवर्ण' इसे 'संस्कृति पुरुष'[104] युंग इसे 'आत्म पुरुष' मानते है। वह अलग-अलग कविताओं में पृथक्-पृथक् नामों से अभिहित किया गया है। 'मेरे युवजन मेरे परिजन' कविता में वह चेतना पुरुष है। 'मेरे सहचर मित्र' में क्रान्तिदर्शी अजानुबाह के रूप मे है। 'पता नहीं' कविता में अन्तस्थल में जमी जड़ता रूपी प्रस्तर सतह को तोड़ता हुआ 'शक्ति पुरुष' है, कवि ने इसके माध्यम से गहरे दायित्व बोध को व्यंजित किया है।[105] 'एक स्वप्न कथा' में 'देव' है तथा 'एक अन्तर्कथा' में जन-अनुभव और दायित्व का

गहन, गम्भीर बोझ उठाये काव्यनायक के समक्ष आता है। 'अँधेरे मे' 'रक्त लोक स्नात पुरुष है'। 'एक चौड़े ऊचे टीले पर' कविता में वह 'यूरोपीय यक्ष' 'हिन्दुस्तानी जिन्न' है।[106]

'ब्रह्मराक्षस'

एक प्रकार का आद्य प्रतीक है तथा आप्त पुरुष से संबंधित है। 'ब्रह्मराक्षस', कविता मे बुद्धिजीवियों का प्रतीक है, इस कविता मे यह प्रतीक पूरे नये तेवर के साथ प्रस्तुत हुआ है। 'श्रीकान्त वर्मा' के अनुसार "मुक्तिबोध" स्वयं ही 'ब्रह्मराक्षस' भी थे और स्वयं ही उस 'ब्रह्मराक्षस' का शिष्य भी।[107] 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और 'एक प्रदीर्घ कविता' में 'ब्रह्मराक्षस' के विध्वसंक रूप को प्रकट किया गया है। इन कविताओं मे उसे 'गांधी जी' की टूटी चप्पल पहने दर्शाया गया है। वह इस बात का प्रतीक है कि दुष्ट व्यक्तियो द्वारा अपने स्वार्थपूर्ति के लिए महान पुरुषों के आदर्शों को विकृत किया जा रहा है।"[108]

रत्न और मणि

ये सभी कविताओ में समान अर्थ के द्योतक हैं। ये सभी स्थलों पर विवेक अचेतन मे संग्रहित विकासवान चेतना और मूल्य के प्रतीक हैं।

'सिर फूटा
वह उसकी थाह में से तब
अचानक जोर से उछले
दमकते रत्न
बिखरे श्याम गहवर में'।[109]

'मुक्तिबोध' ने आध्यात्मिक प्रतीकों के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया को दर्शाया है।

'तब धरती की महानाड़ियाँ
इड़ा-पिंगला-फड़क रही थी
और सुषुम्ना के अभ्यन्तर
उन अंगारी प्राण पथों पर

हम भी घूम रहे थे मानो

निर्णय निश्चय

जीवन संचय की कुण्डलिनी

पृथ्वी के भीतर की ज्वालामयी कमलिनी की

विवेकमय पंखुरियों पर

हम जा लेटे।[110]

इसके अतिरिक्त 'अनहद', 'ब्रह्मरन्ध' आदि का भी 'मुक्तिबोध' ने प्रतीक के रूप में उपयोग किया है।

'मुक्तिबोध' की कविताओ मे उपर्युक्त के अतिरिक्त और नये प्रतीक भी पाये जाते है 'बरगद', 'चाँद', 'कमल', 'बिजली', 'बबूल', 'टीला', 'अक्षयवट', 'सूर्य', 'सागर', 'हवा' आदि।

बरगद

कही कवि ने इसे जीवन का प्रतीक माना है, तो कही पर अनुभवात्मक ज्ञान का प्रतीक है। 'चकमक की चिनगारियाँ' कविता में जन अनुभव का प्रतीक है।[111] 'एक प्रदीर्घ कविता' में वह युगान्तरकारी आस्थाओं का एक विशाल भव्य अक्षयवट है 'चाँद का मुँह टेड़ा है' में 'जन अनुभव' का प्रतीक है। अपनी मार्क्सवादी विचारधारा को कवि ने 'बरगद' के प्रतीक के रूप मे उभारा है।

तब बैठ एक

गम्भीर वृक्ष के तले

टटोलो मन जिससे जिस छोर मिले,

कवि जानता है कि अकेले रहकर अपनी विचारधारा को पनपाया नहीं जा सकता। इसके लिए घुलना-मिलना आवश्यक है।

'हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ

फैलेगी बरगद छांह वही

गहरी-गहरी सपनीली-सी'।[113]

यहॉ स्नेह का प्रतीक है। 'अँधेरे में' कविता में उपेक्षितो, वंचितो, गरीबो का आश्रय स्थल है। इस कविता मे काव्य नायक के कंधे पर बरगद के पत्ते का गिरना जन चेतना से सम्पृक्त होने का संकेत करता है।

चाँद

इसका प्रयोग नकारात्मक और सकारात्मक दोनों अर्थो में हुआ है। एकाध स्थलों को छोड़ दे तो इसका प्रयोग नकारात्मक रूप में ही हुआ है। परम्परागत रूप से सौन्दर्य का प्रतीक है, किन्तु 'मुक्तिबोध' ने पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीक माना है। यह आततायियो के पक्ष मे जनता के विरुद्ध जासूसी के कार्य से संलग्न है। उसकी चॉदनी जनता के आक्रोश और विरोध का भेद और थाह लेने के लिए विविध स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूपाकार ग्रहण करती है, इसीलिए कवि ने उसे ऐयार भी कहा है।[114]

'वह चाँद कि जिसकी नजरो से
यो बचा-बचा
यदि आत्मज सत्य यहाँ रखे झरने के तट
अनुभव शिशु की रक्षा होगी'।[115]

कमल

कमल को सर्वहारा वर्ग के प्रतीक रूप में प्रयोग किया गया है

'उस-कमल-कोष के पराग-स्तर
पर खड़ा हुआ
सहसा होता है प्रकट एक
वह शक्ति पुरुष'।[116]

बिजली

कहीं पर इसका प्रयोग 'सत-चित-वेदना' के रूप में हैं तो कहीं पर 'बहना बिजली' बन जाती है। यथा-

'जन संघर्षो की राहों पर,
आंगन के नीमों ने मंजरियाँ बरसायीं

अम्बर में चमक रही बहना बिजली ने भी
थी ताकत हिय में सरसायी'।[117]

बबूल

सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। यथा-

'सूखे बबूलो की कटीली पांत
भरती है ह्दय मे धुन्ध डुबा दुःख
भूखें बालको के श्याम चेहरों साथ
मैं भी घूमता हूँ शुष्क'।[118]

सागर

'चकमक की चिनगारियाँ' में 'समुद्र' 'अचेतन' का प्रतीक है।[119] 'एक स्वप्न कथा' में आये समुद्र के प्रतीक को 'कृष्ण मुरारी ने 'अचेतन'[120], 'डॉ0 जगदीश शर्मा' ने 'समष्टि अचेतन' का[121], 'डॉ॰ राम विलाश शर्मा' ने अचेतन मन' का प्रतीक माना है।[121] कालासागर कहकर अचेतन में संग्रहित नकारात्मक वृत्ति स्वार्थ और भ्रष्टाचार आदि को संकेतिक किया गया है, जबकि 'डॉ॰ आलोक गुप्ता' ने 'एक स्वप्न कथा' में वर्णित समुद्र को 'शोषणजीवी व्यवस्था और उसके राजतंत्र का प्रतीक स्वीकार किया है।'[123]

सूर्य

प्रयोग अलग-अलग कविताओं में थोड़ा भिन्न-भिन्न रूप में किया गया है 'भविष्य धारा' कविता में बुद्धि विवेक का प्रतीक है।

'मेरा क्या था दोष
यही कि तुम्हारे मस्तष्क की बिजलियाँ
अरे, सूरज गुल होने की प्रक्रिया
बता दी मैंने
सूत्रो द्वारा'।[124]

'एक टीले और डाकू' की कहानी मे 'आत्मा' का प्रतीक है।[125] 'अन्त करण का आयतन' मे 'बुद्धिजीवी' और 'ज्ञानी वर्ग' का प्रतीक है।[126] 'एक प्रदीर्घ कविता' में 'सूर्य'

'आत्मा' का प्रतीक है, 'सूरज'[127] तथा 'सूर्य कन्या' को भव्य कर्म-निष्ठा जन-कन्या' कहा है।[128] कवि के ही शब्दो मे उसका स्वरूप अधोलिखित है-

'रवि अन्तर के साक्षात्कारी क्षोभ-केन्द्र से संबंधित है
यहाँ हृदय-आलम्बन भाव सब
तीव्र ज्ञान-संवेदन के ही पूर्ण बिंब हैं
ठीक सूर्य के मूल केन्द्र से उनका उदगम'।[129]

हवा

'एक टीले और डाकू की कहानी' में हवा निरपेक्ष, निर्वैयक्तिक विश्वात्मक अनुभूति है।[130] 'चम्बल की घाटी'मे 'सक्रिय विश्वात्मक अनुभव और चेतना' है।[131] इसी कविता मे एक जगह हवा को 'बदमस्त' भी कहा गया है।[132]

टीला

यह मध्यम वर्ग की जड़ता का प्रतीक है। सामन्तवाद समाप्त होने पर पूँजीवाद का जन्म होता है और पूंजीवाद के नष्ट हो जाने पर समाजवादी व्यवस्था की उत्पत्ति होती है। जब मध्यम वर्गीय व्यक्ति अपने से निम्न वर्ग की उपेक्षा न कर उसे अपनाता हुआ अपने वर्ग को समृद्ध बनाता है तभी ज्ञान नये सत्य के रूप में दीप्त होता है और उसे नये रत्न की प्राप्ति होती है।

'पत्थर सा बुत
अपना जड़ीभूत सिर ताने खड़ा है!!
वह मैं, वह मैं'।[133]

xx xx xx

'अतः हमने अपरिचय, बेरुखेपन
ओ, उपेक्षा की
खड़ी भूरी पहाड़ी खोद डाली और
उसमें से निकाले जगमगाते रत्न'।[134]

xx xx xx

'फुसफुसे पहाड़ो-सी पुरुषों की आकृतियाँ

भुसभुसे टीलों सी नारी प्रकृतियाँ
ऊंचा उठाये सिर गर्वीली चाल से
सरकती जाती है'।[135]

उपर्युक्त उदाहरण में टीला मध्यम वर्ग के पुरुष व नारियो का प्रतीक है, जो शोषण के काले सागर मे डूबा हुआ होकर भी मुग्ध है।

'मुक्तिबोध' ने प्रसंगानुसार नये एवं पुराने प्रतीको का प्रयोग किया है. परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है कि उन्होंने नये प्रतीकों का प्रयोग अधिक किया है। नये वह इस दृष्टि से भी हैं कि कवि ने उनके पुराने अर्थ संदर्भों को तराश कर नये अर्थ-अभिप्राय से आपूरित किया है और आवश्यकतानुसार अनेक मौलिक प्रतीकों का निर्माण भी किया है।

'मुक्तिबोध' का एक प्रतीक अलग-अलग प्रसंगो में अलग-अलग अर्थ देता है। यानी एक कविता मे जहॉ वह एक खास अर्थ का उद्बोधन कर रहा है, वहीं दूसरे स्थल पर उसके प्रतीकार्थ मे परिवर्तन हो जाता है। वह सर्वथा नया अर्थ देने लगता है। एक ही प्रतीक के अलग-अलग अर्थ देने के कारण कविता का प्रतीक-विधान क्लिष्ट हो गया है।

'मुक्तिबोध' ने युगीन यथार्थ और आन्तरिक यथार्थ को इनके माध्यम से सफलता पूर्वख मूर्त रूप दिया है। उनके प्रतीक उनकी भावानुभूति के उचित संवाहक बने हैं। इनकी कविता मे प्रतीक केवल शिल्प रूप ही नही हैं, बल्कि अनुभूति को प्रभविष्णु एवं जीवन्त करते हैं। 'मुक्तिबोध' के प्रतीक गहरी, पैनी अर्थसत्ता रखते हैं।

उनकी कविता में प्रतीक योजनाबद्ध एवं सुविचारित हैं। यही कारण है कि उनकी स्वानुभूतियाँ 'फ़ैण्टेसी' के आवरण में प्रतीको द्वारा सार्थक रूप से व्यक्त हो सकी हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से 'मुक्तिबोध' जहाँ अपने कथ्य को अधिक स्पष्ट और ठोस बनाते हैं वहीं उसमे एक गजब की रहस्यात्मक सांकेतिकता का समावेश भी कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप उनका काव्यशिल्प अधिक पैना और धारदार बन गया है।[136]

'मुक्तिबोध' के प्रतीक-विधान के अनोखेपन की प्रशंसा करते हुए 'शमशेर बहादुर' लिखते हैं- ''वे विशिष्ट बिंब बल्कि उससे अधिक विशिष्ट प्रतीक योजना लाते हैं। उनके प्रतीक की कथा, सृष्टि की भूमिका बनाने लगते हैं''। अपने प्रतीकों की निजता, मौलिकता व नवीनता

के विषय में 'मुक्तिबोध' स्वयं कहते हैं-

"अपने स्वयं के शिल्प का विकास केवल वही कवि कर सकता है, जिसके पास अपने निज का कोई ऐसा मौलिक विशेष हो। जो यह चाहता हो कि उसकी अभिव्यक्ति उसी के मनस्तत्त्वों के आधार को, उन्ही मनस्तत्त्वो के रंग की, उन्हीं के स्पर्श और गन्ध की हो।"

रूपक

प्राचीन काल में 'रूपक' (मेटाफर) नाटक का पर्याय था। अरस्तू के समय रूपक एक अलकार समझा जाता था, जिसमे किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर आरोपित किया जाता था। प्राचीन काव्य समीक्षा के आचार्यों ने, रूपक को इसी अर्थ में ग्रहण एवं व्याख्यायित किया है। एक लम्बे समय से 'हिन्दी के साहित्य जगत में 'रूपक' का प्रयोग इसी रूप में होता रहा है। परन्तु अधुनातन युग मे रूपक के शिल्प-संदर्भ मे भारी परिवर्तन हुआ है। अब वह केवल 'अलंकार' के रूप में ही नहीं प्रयुक्त होता वरन् उसका अलग अस्तित्त्व भी है। उसका यह नया रूप विदेश से आयातित है।

आधुनिक युग में रूपक का प्रयोग 'रूपक कथा काव्य' के रूप में भी होता है। यह अंग्रेजी के एलेगरी का पर्याय है। अंग्रेजी साहित्य मे एलेगरी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। एलेगरी वह कथात्मक प्रबन्ध है, जिसमें प्रस्तुत कथा के भीतर कोई अन्य अप्रस्तुत कथा भी अन्तः सलिल की भांति छिपी रहती है। काव्य में ही नहीं कथा साहित्य और नाटकों में भी रूपक कथा होती है। रूपक कथा के कई प्रकार होते हैं और अंग्रेजी में सबको एलेगरी कहा जाता है।[137]

एलेगरी प्राचीन हिन्दी रूपक से भिन्न है। प्राचीन रूपक, अलंकार का एक प्रकार है, जिसमे उपमेय तथा उपमान अभिन्न समझे जाते हैं। कुछ विद्वान एलेगरी को अध्यवसित रूपक कहते हैं।[138]

एलेगरी प्रायः प्रतीकात्मक होती है, परन्तु वह प्रतीक से भिन्न है। प्रतीक मे प्रस्तुत वर्ण्य वस्तु नगण्य होता है, उसका अप्रस्तुत या प्रतीयमान अर्थ ही साध्य होता है। अन्ययोक्तियाँ प्रायः प्रतीकात्मक ही होती है, किन्तु एलेगरी में कभी-कभी अन्योक्ति नहीं, समासोक्ति होती है। जिसमे प्रस्तुत और प्रतीयमान दोनों अर्थों का समान रूप से महत्त्व होता है।[139]

अध्यवसित रूपक से कथात्मकता का बोध नहीं होता अतः यह एलेगरी के अर्थ-रूप अभिप्राय को पूरी तरह नही व्यक्त करता। अतएव एलेगरी के लिए हिन्दी में रूपकथा ही सबसे उपयुक्त शब्द है।[140]

रूपात्मक या संरचनात्मक आधार के अनुसार एलेगरी या 'रूपक कथा' के चार भेद किये जा सकते हैं।[141]

प्रथम वर्ग

जिसमें पात्र भावनाओं, विचारों या सूक्ष्म अशरीरी तत्त्वों के मानवीकृत रूप होते हैं। ऐसी रूपक कथा में चरित्र चित्रण, घटनाओ की योजना आदि में अयथार्थ या स्वाभाविकता नहीं होती, क्योंकि उसके पात्र ही मानवीकृत होते हैं और मानवीकृत अपने आप मे एक अयथार्थ व्यापार है"।[142]

द्वितीय वर्ग

जिसमे पात्र मानवीकृत तो नहीं होते पर प्रतीकात्मक अवश्य होते है। मानवीकरण मे प्रस्तुत और प्रतीयमान एक होते हैं, अर्थात् प्रवृत्ति, भावना या सूक्ष्म तत्त्व के नाम ही पात्र का नाम होते हैं, परंतु प्रतीकात्मक पात्र में पात्र का नाम चाहे जो भी हो, वह पात्र अपने गुणो या कार्यों द्वारा किसी प्रतीयमान तत्त्व या प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसी रूपक कथा में पात्र ही नही, अधिकांश घटनाएं और वर्ण्य वस्तुएं प्रतीकात्मक या संकेतिक होती हैं। इस प्रकार की रूपक-कथाएं भी दो तरह की होती है।

(क) **अन्योक्ति मूलक-** जिसमें प्रस्तुत कथा गौण या व्यर्थ और अप्रस्तुत कथा प्रधान होती है।

(ख) **समासोक्ति मूलक-** जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो कथाएँ समान महत्त्व की होती है किंतु इसमें यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक घटना या वस्तु प्रतीकात्मक या सांकेतिक ही हो। उसमें प्रस्तुत और प्रतीयमान कथा भी आद्यन्त नहीं मिलती, बीच-2 में ही मिलती है।

तृतीय वर्ग

जिसमें पात्र मानवेतर प्राणी या जड़ पदार्थ होते हैं। वे पात्र मानव-भाषा बोलते,

समझते और मानवों से बातचीत करते दिखाये जाते हैं। धार्मिक या आध्यात्मिक तत्त्व निरूपण या नैतिकता और व्यवहार-कुशलता का उपदेश देना ही इनका उद्देश्य होता है। ऐसी कथाओं में 'स्वाभाविकता और यथार्थ-जीवन का अभाव दिखायी पड़ता है।'

चतुर्थ वर्ग

जिसमे पात्र तो यथार्थ मानव होते हैं और घटनाएं भी स्वाभाविक होती हैं, परंतु उसका समग्र प्रभाव गूढ़ार्थ व्यंजक और सांकेतिक होता है।

उसमें कवि पात्रों के जीवन का ऐसा मनोवैज्ञानिक और यथार्थ चित्र उपस्थित करता हैं और ऐसी घटनाओ और परिस्थितियों का चुनाव करता है कि पूरी कथा मानव-जीवन से किसी सूक्ष्म सत्य या महत्त्वपूर्ण घटना की ओर संकेत करती प्रतीत होती है। यह संकेत पूरी कथा के समन्वित प्रभाव मे अधिक प्रतिफलित होती है, कथा के अवयवों में उतना नहीं।[143]

'फ़ैण्टेसी' और रूपक

'फ़ैण्टेसी' शिल्प की कविता के निर्माण विधान में रूपक व्यवस्था एक अनिवार्य उपकरण है। रूपक की मुख्य विशेषता यह है कि 'रूपक का सादृश्य आरोपित होता है'। 'फैण्टेसी' में प्रस्तुत कथा (भले ही अतार्किक हो) रूपक व्यवस्था के माध्यम से गतिशील होती है। 'फ़ैण्टेसी' में विभाव पक्ष मात्र सांकेतिक होता है, जबकि भाव पक्ष का चित्रण होता है। इसलिए उसमे निहित प्रतीकों और रूपकों को समझे बिना वास्तविक अर्थ तक नहीं पहुँचा जा सकता है। 'फ़ैण्टेसी' में प्रयुक्त रूपक, 'रूपक अलंकार' नहीं होता, जैसा कि आदिकाल, रीतिकाल या आधुनिक युग की पहले की कविताओं में मिलता है, बल्कि ये रूपक 'रूपक काव्य कथा' होती है। अर्थात् उसमें एक 'आरोपित कथा' विधान निहित होता है। 'रूपक काव्य कथा' मिथकीय तथा आधुनिक युग की सामान्य कविताओं में भी दृष्टिगत होती है।

'फ़ैण्टेसी' की, 'रूपक कथा' की संरचना जटिल होती है, जिसका कारण उसका ''फैण्टेसी' कथा या अतार्किक कथा' व्यवस्था है। इस प्रकार की 'रूपक कथा' के समझने के लिए पाठक मे भी ज्ञान-समृद्धि होना अपेक्षित है। यह 'रूपक कथा काव्य' पाठन में दुरूह होती है, पर अपने में जिज्ञासा भाव को समाविष्ट करने के कारण रोचक और आकर्षक होती है।[144]

'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' प्रधान कविताओं में रूपक विधान

'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' प्रधान कविताएँ ज्यादातर प्रदीर्घ हैं, अतएव उनमे लम्बी 'रूपक कथा' का प्रयोग संभव हो सका है। इस रूपक कथा का स्वरूप सरल और सपाट नहीं है, अपितु 'वह संकेत प्रधान और चक्करदार है। उसके वास्तविक आशय को परिश्रम से खोजना पडता है। कारण यह है कि इनका लक्ष्य अलंकार विधान नहीं, रूपक और कथ्य के सहारे अपने मर्म की बात कहना है'।[145] 'मुक्तिबोध' की कविताओं में 'रूपक कथा काव्य' यानी 'एलेगरी' के चारो प्रकारों का प्रयोग हुआ है। 'मुक्तिबोध' भी 'एलेगरी' को रूपक कथा काव्य ही स्वीकार करते हैं।[146]

रूपक कथा काव्य के वर्गों या प्रकारों के आधार पर 'मुक्तिबोध' की कविताओं को यदि परखा जाय तो, ज्ञात होगा कि कुछ कविताओ में रूपक के एक ही वर्ग का आदि से अंत तक प्रयोग हुआ है, जैसे- 'ब्रह्मराक्षस', 'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग-ऊटांग', 'अन्तःकरण का आयतन' आदि। परंतु अधिकांश कविताओं में संश्लिष्ट रूपक कथा काव्यों का प्रयोग हुआ है। इसका कारण 'फ़ैण्टेसी' शैली और उसका अतार्किक कार्य-कारण संबंध है। 'संश्लिष्ट रूपक-कथा' के प्रयोग की दृष्टि से 'अँधेरे में', चांद का मुंह टेढ़ा है', 'एक प्रदीर्घ कविता', 'एक स्वप्न कथा' महत्वपूर्ण है। अन्तःकरण का आयतन' कविता में अन्तःकरण का मानवीकरण कियागया है। वही इसमें काव्य नायक है। अन्तः करण का आयतन संक्षिप्त है परन्तु उसकी छांह सर्वगामी है, उसकी अन्तश्चेतना सक्रिय है तथा शाश्वत मानवीय-मूल्यों की वेदना से युक्त है। वह अपनी इस वेदना को लेकरअनेक द्वारों पर दस्तक देता है, पर वहाँ इन्कार ही मिलता है, परंतु वह उनमें एक मानसिक द्वन्द्व जगाने में सफल हो जाता है। वह चिंताग्रस्त है कि क्या बेबीलोन (पूंजीवाद) नष्ट होगा। उसकी छांह देश-विदेश के जन सामान्य के बीच घूमती हुई एक दूसरे से विचारों का आदान प्रदान करती और निष्कर्ष प्राप्त करती हुई, अपना आत्मविस्तार करती है तथा दूसरों को भी परिष्कृत करती है। वह समाज की उन्नति के लिए होने वाले संघर्ष मे अपना भी एक पक्ष प्रस्तुत करती है। वह भविष्य के सुनहरे सपनों में खोयी है कि अचानक उसे अपने अन्तर्जगत में 'काले स्याह चेहरा' (कमजोरियों) के उपस्थिति का भान होता है। जो उसकी सक्रियता में बाधक है। इसी अंतराल में उसे अपने आत्मचिन्तन द्वारा ज्ञात होता है कि

उसके अन्तर्जगत मे स्वयं और जगत का विकृत बिंब है। वह उन विकृतियों (आत्मकेन्द्रित भाव) का परिहार कर पुनर्रचना की सोचता है। इतने मे उसके समक्ष वहीं एक प्रतेजस आनन/ प्रतिभामयी, मुख लालिमा/तेजस्विनी लावण्य-श्री उपस्थित होता है। यह और कोई नहीं सहस्रो पीढ़ियो द्वारा देखा गया मानव कल्याण, उत्थान, प्रेम और बंधुत्व का स्वप्न है। प्रतेजस आनन उसे बताती है कि सृजन के लिए संहार आवश्यक है, इसलिए सूर्य (पूंजीवाद) के केन्द्र के नष्ट होने मे तुम अपना योग दो और इसके लिए आवश्यक है कि तुम उत्पीड़कों के जादुई आकर्षण युक्त षड्यंत्र से बचों। अब वह प्रतेजस आनन के साथ पूरी तरह सहयोग करते हुए, हृदय में दृढ़ता धारण करते हुए संघर्ष की ओर उन्मुख होता है। उसे लगता है। कि उसका वर्तमान उसे आवाज दे रहा है।[147]

'ब्रह्मराक्षस' कविता में 'ब्रह्मराक्षस' प्रतीकात्मक पात्र है, जो आत्मचेतस बौद्धिकों का प्रतिनिधित्व करता है। शहर के परित्यक्त एवं उपेक्षित स्थल पर एक बावड़ी है, उसमें वह स्नान (अपना आत्मिक परिष्कार) कर रहा है। वह सभी पुराने ज्ञान ग्रन्थों पर पुनर्मुल्यांकन करते हुए उसकी नयी व्याख्याएं प्रस्तुत करता है। उसका लक्ष्य अच्छे से और अच्छा प्राप्त करना है। वह शोधार्थी है। सच्चे गुरू और ज्ञान की प्राप्ति के लिए वह जगह-जगह भटक रहा है। लेकिन पूँजीवादी युग का उदय हो गया है। इस विषय विद्रूप वातावरण में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाया तथा अंदर-बाहर के यथार्थ के संघर्ष की भयानक त्रासदी में वह पिस कर मर गया।[148]

'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग-उटांग' मे 'ओरांग-उटांग' की स्थिति प्रतीकात्मक है, यह मानव मन की विकृत चेतना और भाव का प्रतीक है। 'ओरांग-उटांग' मानव मस्तिष्क के कक्षों के भीतरी प्रकोष्ठ (अचेतन) में मजबूत, दृढ़ और भारी भरकम संदूक में बंद है। काव्य नायक के संस्कृति-प्रभामय अध्ययन गृह में चल रहे विवाद मे भाग लेते समय वह अपने अंदर 'ओरांग-उटांग' को प्रत्यक्ष महसूस करता है, वह सोचता है, कहीं कोई उसके अंदर के 'ओरांग-उटांग' को जान न ले। भयभीत नायक उसे संदूक मे बंद कर देता है और बंदूक लेकर खड़ा हो जाता है कि यदि वह फिर बाहर निकले तो वह उसे समाप्त कर देगा। उसे बंद कर वह पुनः जब सभागार में लौटता है, तो देखता है कि वहाँ सभी व्यक्तियों में वह 'ओरांग-उटांग' उपस्थिति है।[149]

'एक टीले और डाकू की कहानी' कविता में 'टीले' और 'हवा' का मानवीकरण किया गया है। यह कविता मानवीय मूल्य और जीवनादर्श के लिए मानव के मन मे होने वाले अंतर्द्वन्द्व एवं संघर्ष को मूर्त करती है। टीला मनुष्य के अन्तर्व्यक्तित्व मे स्थित उसकी आत्मग्रस्तता है, जिसके कारण एक दस्यु उसके उर पर आसीन हो गया है। मानव इस टीले और दस्यु दोनो से छुटकारा चाहता है। उसके हृदय मे इस समस्या को लेकर विकट द्वन्द्व चलता है। अपनी स्थिति को लेकर वह तनावग्रस्त है। इतने मे एक जबरदस्त हवा आती है। यह हवा उसके विश्वातमक चेतना एवं संवेदनात्मक ज्ञान का प्रतीक है। टीला उससे अपनी मुक्ति का मार्ग पूछता है। हवा उसे बताती है कि उसकी आंतरिक कमजोरियों के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई है और दस्यु कोई बाहर का व्यक्ति नहीं है, बल्कि यह उसके अंदर निहित पापो की युग-युगीन पुरानी परम्परा है। अपनी मुक्ति के लिए, स्वयं ही उसे अपने मूल द्वन्द्व को समझना होगा, स्वयं से लड़ना होगा। अंततः टीला स्वयं आत्मरूपान्तर की क्रियाओं में लीन होता है और उसे विश्वास होता है कि वह एक दिन अवश्य सफल होगा।[150]

'एक अर्न्तकथा' शीर्षक कवता में कवि ने 'मां' और 'बेटे' को लेकर रूपक कथा तैयार की है। 'मां' ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्परा के उपयोगी पक्ष को समझने एवं उसके दायित्व का निर्वाह करने वाले व्यक्तित्व का प्रतीक है जबकि पुत्र सुविधाभोगी व्यक्तित्व (विशेष रूप से मध्यम वर्ग) का प्रतिनिधित्व करता है।

'लकड़ी का रावण' प्रतीकात्मक कविता है, जिसमें 'रावण' और 'वानर' प्रतीकात्मक पात्र हैं। 'रावण' पूंजीपति सत्ताधारियो का प्रतीक है और 'वानर' जनसत्ता की शक्ति है।

'चांद का मुह टेढ़ा है' कविता मे संश्लिष्ट रूपक-कथा का प्रयोग हुआ है। नगर के बीचो-बीच कारखाने में चाँदनी फैली है। आधी रात का वक्त है। 'चाँदनी' अपनी गुप्तचरी गतिविधियों मे लिप्त है। वह जन साधारण के विरूद्ध पूंजीपतियों के लिए जासूसी करती है। जन साधारण में अपनी षडयन्त्रकारी गतिविधियों द्वारा आंतक का सृजन करती है। यहीं एक नया रूपक पैदा होताा है, जो कविता के मर्म के अनुकूल है। गांधी और तिलक की मूर्तियों के शीर्ष पर दो धुग्धू आसीन है जो अपने मनोविनोद से जुड़े हैं। वे बताते हैं कि कैसे वे जनता को छलते हैं। यहाँ पहली रूपक कथा दूसरी से जुड़ती हुई पुनः प्रकट होती है। यहाँ चांद की दोहरी नीति

को स्पष्ट किया गया है। वह जन साधारण के बीच गुप्तचर है, पर उच्च वर्ग की विलासिता के लिए उनका सहायक है, वह उच्च वर्ग के लिए सुखद अनूकूल वातावरण सृजित करता है। यह चाँदनी भी बड़ी मसखरी है। जनता के बीच उसका आतंक जारी है। घुग्घुओ का षडयंत्र जारी है। इस कथा के मुख्य पात्र जमाना और शहर है। जमाना 'पेन्टर' की भूमिका में है, जबकि शहर अपने को 'कारीगर' बताता है। दोनो ही जन-जागृति एवं जन मुक्ति के लिए प्रयासरत है, कि पोस्टर बनाते और चिपकाते समय अपने स्व और आंतरिक स्वार्थों को त्यागा जाएं तथा पोस्टर सही-सही स्थलों पर लगाए जाएँ। वे बरगद (जन अश्रम स्थल) पर पोस्टर लगातें हैं। भैरो (विद्रोही चेतना) और बरगद में बहस चल रही है कि सुबह कब होगी और मुश्किल कब दूर होगी।[151]

'अँधेरे में' कविता की रूपक कथा, कई कथाओं के संयोग से एक वृहद रूपक कथा का फलक ग्रहण करती है। इसकी संश्लिष्ट कथा की योजना और संरचना बहुत घुमावदार है। 'अँधेरे मे' कविता मे कवि ने अपनी 'अब तक न पायी गयी अभिव्यक्ति' का मानवीकरण किया है। कविता के शुरू में कोई है, जो अँधेरे (अचेतन) बंद कमरे में लगातार चक्कर काट रहा है। वह अक्सर समय-समय पर प्रत्यक्ष होकर, चेतन में आकर अपनी पहचान बताता है, परंतु नायक उसे ठीक से समझ नहीं पाता। रात का पक्षी काव्य नायक को बताता है कि उसे तुम ढूढ़ो, उसका तुम शोध करो, क्योंकि वही तेरी पूर्णतम परम अभिव्यक्ति है, तुम्हारा गुरू है। फिर से दूसरी रूपक कथा आरम्भ होती है, काव्य नायक समझ नहीं पा रहा है कि वह चैतन्य है, या स्वप्न में है। काव्य नायक को अपनी निष्क्रियता पर, अपराध बोध होता है। वह बाह्य परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया की ओर उन्मुख होता है। अन्तःकरण में संचित अनुभव, वेदना, विवेक, निष्कर्ष आदि को प्राप्त करता है। यह कथा फिर से एक नया मोड़ ग्रहण करती है। एक नवीन रूपक कथा, उस मूल रूपक कथा मे संश्लिष्ट होती है। उसकी भेंट बड़े नाटकीय एवं रहस्यात्मक ढ़ंग से गांधी और तिलक से होती है। सुरक्षा एवं पालन का दायित्व सौंपते हैं। यह दायित्व बोध उसे क्रांति का मार्ग दिखाता है। इसी बीच गांधी की हत्या हो जाती है। वह नए सहचरों की तलाश मे निकलता है। अचानक आततायियों के हाथो पड़ जाता है और बाद में उसे रिहा कर दिया जाता है। यहाँ कथा फिर एक नया मोड़ लेती है और

अपने विचारों और अनुभूतियो को जिन्हें वह अभी अभिव्यक्त नहीं कर पाया है, को अभिव्यक्ति देने के लिए वह पुराने मठ, दुर्ग (पुराना विषयवस्तु एवं शिल्प) तोड़ने का निश्चय करता है।

यहाँ काव्य नायक की दिवास्वप्नात्मक रूपक कथा समाप्त होती है। वह अपने इस 'सुखांत स्वप्न' को अपनी प्रेयसी की संज्ञा देता है। वह उस रहस्यमय व्यक्ति को जो उसकी अब तक न पायी गयी अभिव्यक्ति है को जन साधारण में विचरण करते देखता है। अतः वह उसे पाने के लिए जन-जन का चेहरा देखता है। जनता के बीच उसे ढूँढ़ता है।

इस प्रकार 'मुक्तिबोध' की सबसे लम्बी कविता कई छोटे-छोटे रूपक कथाओ के आपसी संयोग से निर्मित हुई है और वह एक वृहद 'फ़ैण्टेसी' काव्य की रचना में पूर्ण सहायक होती है।

निष्कर्ष- 'मुक्तिबोध' की सभी 'फ़ैण्टेसी' कविताओं मे एक रूपक कथा है प्रायः सभी रचनाएं प्रबन्ध कथा जैसी लगती हैं। 'अँधेरे में' कविता को तो रूपक का कथात्मक महाकाव्य माना जा सकता है। उनकी 'फ़ैण्टेसी' कथाओं का निर्माण रूपक कथाओं के सहयोग के अभाव में असंभव जान पड़ता है। क्योंकि रूपक कथाएं ही अप्रस्तुत रूपक मे वास्तविकता को व्यक्त करती हैं।

मिथ

'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसी' कविताओं में मिथ का प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपने 'फ़ैण्टेसी' के ढ़ांचे के निर्माण में इसकी कथाओं एवं पात्रों का भी कुछ तथ्यों पर प्रयोग किया है। वास्तव मे उन्होंने कुछ प्रसंगो में मिथकीय पात्रों या कथाओं को अपने जीवन, विचारों, आदर्शों एवं अनुभवो के सन्निकट पाया।

वस्तुतः कोई कवि किसी मिथ का उपयोग तभी करता है जब वह उसके निजी प्रश्नो और जीवन संदर्भो या उसकी समसामयिक समस्याओं अथवा दोनों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकता है। इस क्रम में वह उसकी सामग्री में उसी तरह संशोधन, परिवर्तन और विस्तार करता है। जिस तरह अन्य प्रकार की कथात्मक लोककहानी, आख्यान और इतिहास की सामग्री में।[152]

युंग के अनुसार मिथ पूरी जाति का स्वप्न है। मिथ सामूहिक अवचेतन से संबद्ध है। मिथ व्यक्ति के सामूहिक अवचेतन की सबसे करीबी अभिव्यक्ति का माध्यम है।[153]

मिथ का कविता मे तीन प्रकार से प्रयोग किया जाता है (क) परम्परागत मिथों का पूरी रचना के विषय के रूप मे प्रयोग (ख) नये मिथों की रचना (ग) मिथकीय पात्रों और संदर्भों का अप्रस्तुतो के रूप मे प्रयोग।[154]

मिथकीय पात्र और कथा के प्रयोग की दृष्टि से 'मुक्तिबोध' की दो कविताएं बहुत चर्चित हुई है। 'लकड़ी का रावण' और 'ब्रह्मराक्षस'। 'लकड़ी का रावण' शीर्षक कविता में ''फ़ैण्टेसी' कथा' की रचना में 'राम-रावण' की कथा का आश्रय लिया गया है। किन्तु कथा की प्रस्तुति में नवोन्मेष है। इसमें 'रावण' को 'वानरी समूह' से भयभीत बताया गया है, 'रावण' को अपने खोखलेपन का आभास है, 'लकड़ी का रावण' कविता के रावण का रूप पुराने परम्परागत मिथकीय रावण का रूप नहीं है, वरन् यहाँ वह लक्षहस्त और लक्षमुख देवता है। अत्याचारी मिथकीय रावण के लक्षमुख और बीस हाथ थे और उसके आतंक से मनुष्य ही नही देवता गण भी प्रभावित थे। परंतु 'मुक्तिबोध' का रावण उससे भयंकर है। इस कविता के कथा का सूत्र और पात्र-योजना यद्यपि प्राचीन मिथक पर आधारित है, परंतु कथा का रूप-विस्तार कवि की मौलिकता पर आधारित है। रावण का सर्वग्रासी स्वरूप भी कवि की मौलिकता की पुष्टि करता है। उग्र विक्षोभित वानरो के संगठित आक्रोश को देख रावण अत्यन्त भयभीत और संशय-ग्रस्त है। 'मुक्तिबोध' के रावण को युद्ध में अपनी पराजय का पूरा विश्वास है। इसलिए वह (रावण) पलायन की सोचता है, रावण की यह पलायनवादी मानसिकता मुक्तिबोध की निजी सोच और धारणा का प्रतिफल है, क्योंकि वे रावण को पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधि स्वीकार करते हैं।[155]

'ब्रह्मराक्षस' कविता का पात्र 'ब्रह्मराक्षस' प्राचीन मिथकीय है, विश्वास पर आधारित है, मुक्तिबोध ने इसे मिथकीय पात्र और उससे संबंधित लोक-विश्वासों का संस्पर्श लेकर 'ब्रह्मराक्षस' कविता की रूपरेखा तैयार की है। लोक विश्वास के अनुसार 'ब्रह्मराक्षस' अभिसप्त होता है, वह सामान्यजन से बहुत दूर प्रायः एकांत, उपेक्षित, सुनसान स्थलों पर खासकर खण्डहर, बावडी, परित्यक्त, कुंओं, तालाबों या विशाल वृक्षों पर निवास करता है।

कवि ने 'ब्रह्मराक्षस' के अतिरिक्त कई कविताओं के कुछ प्रसंगों में भी मिथकीय विश्वासो और धारणाओं को स्थान दिया है। 'ओ काव्यात्मन फणिधर' कविता की संरचना

मिथकीय विश्वासो पर आधारित है। भारतीय जनमानस द्वारा प्राचीन युग से ही नाग को गुप्त धन का संरक्षक माना जाता है। इसी विश्वास के आधार पर 'मुक्तिबोध' ने 'नाग' को मूल्यवान जीवन-मूल्य रूपी मणि या रत्न के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है। जो पूरी कविता का केन्द्रीय कथ्य है।

इस कविता मे 'मुक्तिबोध' ने नाग को केवल रत्नों के सुरक्षा का दायित्व ही नही सौंपा है, वरन् उससे और ज्ञान धन-रत्न को प्राप्त करने के लिए व्यापक सर्वेक्षण की मांग भी की है। यह कवि के नवीनतम दृष्टिकोण का परिचायक भी है।

उनकी सभी कविताओ में 'आप्त पुरुष' के स्वरूप और कृत्य को मिथकीय व परीकथाओं से ग्रहण किया गया है। पर इनका काव्यात्मक प्रयोग कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा पर आधारित है। एकाध स्थलों पर उन्होंने इस पुरूष या देव के रूप को अपनी मौलिक कल्पना के आधार पर भी निर्मित किया है।

कुछ प्रसंगो का निर्माण पुरा कथाओं या लोक कथाओं का आश्रय लेकर किया गयाहै, जैसे 'चम्बल की घाटी में' यातुधान द्वारा ज्ञानी जनों को अपने आकर्षण मे बांधकर उन्हे शिला रूप देने का प्रसंग है।[156] 'एक स्वप्न कथा' में एक ज्ञानी पूर्वज द्वारा गहरे जल-तल से गोल-गोल मनोहर तेजस्वी शिलाखण्ड का निकलना और उसे देवरूप में प्रतिष्ठित करना,[157] पक्षियों द्वारा मनुष्य से वार्तालाप, एक देव का प्रकट होना आदि। 'मेरे सहचर मित्र' कविता में एकलव्य और अर्जुन के पौराणिक मिथकीय स्वरूप का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है। 'एक प्रदीर्घ कविता' मे कंस-वासुदेव-कृष्ण की कथा का प्रतीकात्मक प्रयोग है। इसमें 'कारावासी वासुदेव' रात में, उफनती यमुना को पार कर नंद ग्राम में पहुंचते हैं, शिशु कृष्ण को लेकर, कंस के डर से।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उनकी अनेक कविताओ में मिथ ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मिथकीय कथा एवं पात्र अपनी गुणवत्ता के आधार पर 'फ़ैण्टेसी' के अत्यन्त निकट होते हैं, क्योंकि मिथ को सामूहिक 'फ़ैण्टेसी' माना गया है।

निष्कर्ष- अभिव्यक्ति के धरातल पर, हिन्दी काव्य जगत के शास्त्रीय मानदण्डों के पूर्वाग्रहो से मुक्त होकर 'मुक्तिबोध' ने स्वयं एक नया पथ तैयार किया और उस पर चलते हुए

उन्होंने अपनी एक अलग पहचान और अपने एक पृथक सृजनात्मक व्यक्तित्व को स्थापित किया। पुराने सांचो को तोडा और नया प्रतिमान स्थापित किया।

उनकी बिंब योजना नवीनता एवं अनूठेपन से युक्त है। उनके बिंब उनकी सृजनात्मक गहराई को उद्‌घाटित करते हैं, बिंबो ने उनकी काव्य-संवेदना को अधिक मुखर किया है, जिससे कथ्य में अधिक सुस्पष्टता आयी और विडम्बनापूर्ण, विद्रूप यथार्थ का पूरा चित्र उभर पाया है। उनके काव्य की बिंब शृंखला 'फ़ैण्टेसी' के अनुरूप बहुत सुविचारित रूप मे गुंथी गयी है। इससे 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की पुष्टि के साथ मूल मर्म (कथ्य) भी अपने अभीष्ट स्वरूप को अक्षुण्य रख पाया है।

'फ़ैण्टेसी' के कथ्य का वास्तविक मर्म उनके प्रतीक में ही निहित होता है। 'मुक्तिबोध' ने प्रतीकों में अपनी सम्पूर्ण कलात्मक प्रतिभा का प्रयोग किया है। प्रत्येक प्रतीक अपने कथ्य एवं प्रसंग के अनुकूल हैं। उनके प्रतीक अलग-अलग स्थलों पर अलग-अलग अर्थ देते है। फिर भी ये अटपटे या अनपेक्षित नहीं लगते। यह उनके कलात्मक कौशल का कमाल है।

काव्य के प्रतीक योजना के कारण कहीं-कहीं 'फ़ैण्टेसी' शैली दुरूह भी हो गई है। एक स्थल पर एक ही प्रतीक कई-कई अर्थ ध्वनित करने लगते हैं।

'मुक्तिबोध' ने नए पुराने सभी प्रतीकों का प्रयोग किया है, उनकी कविता में कुछ सर्वथा नवीन प्रतीक भी प्रयुक्त हुऐ हैं, जो उनके जीवन संघर्ष से उत्पन्न हुए हैं और उनके आंतरिक यथार्थ की अभिव्यक्ति देते हैं।

रूपक के स्तर पर भी उन्होंने नयापन स्वीकार किया है। उन्होंने रूपक का अलंकार की दृष्टि से प्रयोग नहीं किया है। उनके रूपक एलेगरी है, पर उनके काव्य में प्रयुक्त रूपक कथा सीधी नहीं, बुहत घुमावदार, लहरीली, चक्करदार है, जो 'फ़ैण्टेसी' शिल्प के अनरूप है। उनके काव्य की रूपक कथा दो अर्थ रखती है। सीधा अर्थ मौन है और अप्रस्तुत अर्थ ही वास्तविक कथ्य को अभिव्यक्त करता है।

'मुक्तिबोध' की रूपक कथा और प्रतीक में मिथकीय कथा और पात्रों का प्रयोग हुआ है। पात्र और कथा मिथक से संबंधित अर्थ न देकर, समसामयिक संदर्भ को उद्‌घाटित करते हैं।

'मुक्तिबोध' के कविता मे रूपक कथाएं, 'फ़ैण्टेसी' कथा के अनुरूप संचालित होती हैं।घुमावदार रूपक कथाएँ रोमांचक 'फैण्टेसी' कथा को जन्म देती हैं। उनकी रचनाओं मे कई छोटी-छोटी रूपक कथाओ को मिलाकर एक भव्य बड़ी रूपक कथा तैयार हुई है।

इस प्रकार 'फैण्टेसी' शिल्प के अधीन होकर बिंब, प्रतीक और रूपक कवि को कलात्मक अभिव्यक्ति देते हैं।

'फ़ैण्टेसी' और भाषिक संरचना

'मुक्तिबोध' ने काव्य के भाषिक सांचे के निर्माण के संबंध में लिखा है। ''इस वैविध्यपूर्ण, स्पन्दनशील आस-पास फैले मानव जगत के मार्मिक पक्षों के संवेदनात्मक चित्रण के लिए अभिव्यक्ति-सम्पदा चाहिए। केवल आत्मपरक तीव्र संवेदना घातपूर्ण मानसिक प्रतिक्रिया करने वाली काव्य शैली को अधिक लचीली, अधिक सक्षम और सम्पन्न बनाना होगा, जिससे कि वह एक ओर कवि हृदय की अत्यन्त सूक्ष्म संवेदनाएँ मूर्तिमान कर सके, तो दूसरी ओर वास्तव मे जीवन जगत की लहर-लहर को हृदयंगम कर उसे समुचित वाणी दे सके। पुरानी शास्त्रीय शब्दावली में कहा जाये तो, उसे भाव-पक्ष के साथ विभाव पक्ष का चित्रण करना होगा।'[161]

'मुक्तिबोध' के शब्दों में, रचनाकार भाषाभिव्यक्ति के पूर्व मानस में, अपने भावों को व्यक्त करने की एक रूप रेखा पहले से ही रचकर रखता है। अपने भाव के अनुरूप उन पूरक शब्दों को लाता है, जो उसके भाव के अभिप्राय एवं सार्थकता की रक्षा कर सकें। शब्दों में निहित अर्थ एवं संकेत शिल्प मे प्रयुक्त होकर अपना रंग बिखेरते हैं। इसीलिए पूर्व की 'फ़ैण्टेसी' के रग और आकार में अंतर आ जाता है, फलस्वरूप 'फ़ैण्टेसी' एक नये स्वरूप को धारण करती है। यह प्रक्रिया काव्य-रचना प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण और आधारभूत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया मे शब्द चयन, शब्दों की प्रयोग योजना वाक्य निर्माण शैली, छन्द-योजना आदि का सहयोग होता है। संवेदनाओं के सफल प्रस्तुतीकरण का सम्पूर्ण दारोमदार इसी प्रक्रिया में निहित है।

काव्य-कृति में प्रयुक्त भाषा एवं आयोजित शब्द-श्रृंखला में कवि के व्यक्तित्व परिवेश,शिक्षा, संस्कार एवं उसकी युग चेतना का विशेष योगदान होता है। प्रत्येक रचनाकार के लिए उसका युग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, इसी से उसका व्यक्तित्व, परिवेश, चेतना, शिक्षा और

सस्कार सभी प्रभावित होता है।

"..............युग परिवर्तन के साथ, भिन्न स्वभाव वाले कवि सामने आते हैं। उन कवियों के विषय और शिल्प भिन्न होते हैं।"[162] वह विषय वस्तु को अपने समसामयिक युगीन दृष्टि से परखता है। नये-नये कथ्यो एवं भावों की अभिव्यक्ति के लिए, वह अपनी भाव सापेक्ष भाषा को नये अर्थ देता है। नये-नये शिल्प पैटर्न तैयार करता है, जिसमें उसके भाव समा सकें और उसकी सार्थक अभिव्यक्ति हो सके।

'मुक्तिबोध' ने अपनी युगीन चेतना को अभिव्यक्ति करने के लिए एक पूर्व प्रचलित भाववादी शिल्प-विधान को एक रूप और अन्दाज प्रदान करते हुए 'फ़ैण्टेसी' प्रवृधि की रूप रेखा तैयार की। इसीलिए उनकी 'फ़ैण्टेसी' समझ में आने पर बहुत ही रोचक और आकर्षक जान पड़ती है।

'मुक्तिबोध' अपने रचनासंसार के निर्माण के लिए विविध प्रकार के शब्दों का चयन करते है। प्रत्येक शब्द के स्पन्दन को पहचानते हुए वे उनका युक्तायुक्त प्रयोग करते हैं। उन्होने विशिष्ट प्रकार के वाक्य-विन्यासों की सृष्टि की है, जो उनके विविध 'फ़ैण्टेसी' के सॉचो के अनुरूप होते हैं और उसे जीवन्त रूप दे सकते हैं। उनकी 'फ़ैण्टेसी' पाठकों के समक्ष 'मूर्त शब्द बिंब की मूक चित्रशाला' के रूप में उपस्थित होती है। यह इतनी आकर्षक होती है कि पाठक उनकी सजीव 'फ़ैण्टेसी' के दिक्कालिय वातावरण में पूरी तरह रम जाता है।

शब्द योजना

'फ़ैण्टेसी' शैली की कविताओं की शब्द योजना बहुत ही वैविध्य पूर्ण होती है। 'मुक्तिबोध' ने 'फैण्टेसी' के रूप-तत्त्व के अनुरूप शब्दों का चयन किया है। उन्होंने 'फ़ैण्टेसी' की भाषा साधना में अपनी अनुभूतियों को पूरी तरह जीवन्त बनाने के लिए, अपने कौशल का सार्थक प्रयोग किया है। इसकी रचना मे उन्होने अपनी सम्पूर्ण बौद्धिक क्षमता पूरी लगन और श्रम का प्रयोग किया है। एक कविता को रचना की लिए महीनो, वर्षो तथा कई कई चरणों मे कार्य सम्पादित किया है। इससे जहाँ 'फ़ैण्टेसी' के स्वरूप में गरिमा आयी, वहीं उसमें छिपे भावार्थ एवं मुख्य अभिप्राय भी प्रभावी एवं हृदय स्पर्शी रूप में उदघाटित हुए हैं। 'मुक्तिबोध' की पूर्वाध की रचनाएँ जिसमें 'फ़ैण्टेसी' नहीं है, रोमानी और छायावादी प्रभाव से युक्त हैं। इन

कविताओं का स्वर भी छायावादी शैली के अनुरूप है। परन्तु बाद की रचनाएं जिनमे 'फ़ैण्टेसी' के प्रयोग से पैने यथार्थ को अभिव्यक्ति दी गयी है कोमल और कठोर शब्दों में रची गयी है।

'मुक्तिबोध' ने जीवन की असमानता और विसंगति से भरे यथार्थ को काव्य मे स्थान दिया और उन्हे उनकी पूरी सत्यता के साथ उद्घाटित करने का प्रयास किया, इसीलिए उनकी भाषा सरचना मे कथा के अनुरूप 'उबड़-खाबड़पन' आ गया है। 'मुक्तिबोध' ने स्वय इस तथ्य को स्वीकार किया है।

'इसीलए मेरी ये कविताएँ
भयानक हिडिम्बा हैं
वास्तव की विस्फारित प्रतिमाएँ
विकृताकृति-बिंबा हैं'

'यों मेरी कविता है बिनाघर
बिना-छत गिरिस्तिन
जिसमें कि मेरा भाव
ज्वलन्त जागता
जिसे लिए हुए मैं
देख रहा जमाने की गयी परिपाटियाँ'।[163]

'मुक्तिबोध' काव्य में, ऐसे शब्दों के आयोजन के समर्थक थे, जो कथ्य को सार्थकता दे सके, विद्वता के प्रदर्शन के लिए अनावश्यक, भारी-भरकम शब्दों के प्रयोग एवं कृत्रिमता के वे सख्त विरोधी थे। मर्म के अनुकूल मानक परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया। उन्हें देशी विदेशी भाषा के शब्दों को ग्रहण करने मे ऐतराज नहीं था, शर्त केवल यही थी कि वे मर्म के उद्घाटन मे सहायक सिद्ध हो सकें।

'मुक्तिबोध' भावों को 'फ़ैण्टेसी' में लिपिबद्ध करने के प्रयास को (अभिव्यक्ति प्रक्रिया को) सबसे अधिक जटिल एवं द्वन्द्वात्मक समझते हैं। इसी विधि से कृति अपना प्रेषणीय स्वरूप ग्रहण करती है। इस प्रक्रिया में रचनाकार को अपने मानस मे पूर्व निर्धारित एवं विचारित पूर्वाग्रह

या दुराग्रह से संघर्ष करना पड़ता है, जिसे 'मुक्तिबोध' ने 'कंडीशण्ड रिफ्लेक्स' कहा है, सार्थक अभिव्यक्ति के लिए कवि को अपनी जड़ीभूत स्थिति से बाहर निकलना ही पड़ता है। ऐसा न कर पाने पर यह नवोन्मेषता की ओर उन्मुख नहीं हो पाता। 'मुक्तिबोध' ने ऐसा कठिन संघर्ष किया है। अपने अभीष्ठ की अभिव्यक्ति के लिए कुछ पुराने शब्दो को नये अर्थ में प्रयुक्त किया हैं और कुछ मर्मानुकूल नये शब्दों की रचना भी की है।

'मुक्तिबोध' की भाषा पर एक आलोचक ने लिखा है- ''नयी चेतना एक नयी धारा की तरह अपना मार्ग बना लेती है। वह कभी पाषाणों के नीचे दबकर कभी पाषाणो की छाती पर चोट करती हुयी, कभी ऊंचे, कभी नीचे, कभी झांड-झंखाँडों, खण्डहरों से और कभी शस्य-श्यामला, पुष्पित समतल भूमि से बहती हुई चलती है। उसका अपना कोई मार्ग नहीं होता क्योकि वह नयी है। मुक्तिबोध की नयी चेतना इसी प्रकार की है। वह कभी संस्कृतनिष्ठ सामासिक पदावली की अलंकृत वीथिका से गुजरती है, कभी अंग्रेजी की इलेक्ट्रानिक ट्रेन पर बैठकर जल्दी से खटाक-खटाक निकल जाती है और कभी विशाल जन समूह के शोर-गुल और धक्के-मुक्के के बीच एक-एक पर तीव्र दृष्टि डालती हुई चलती है। 'मुक्तिबोध' ने अपनी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमें स्पष्ट रूप से ''मुक्तिबोध'पन है।''[164]

'मुक्तिबोध' के काव्य में संस्कृत एवं तत्सम शब्दों की भरमार है। ये शब्द 'फैण्टेसी' को दिक्कालीय वातावरण प्रदान करते हैं और संदर्भ की अर्थसत्ता को अधिक व्यापक और गम्भीर बनाते है। ये 'फैण्टेसी' और काव्य की गरिमा को बनाए रखने मे समर्थ हैं। जहाँ पौराणिक मिथक से 'फ़ैण्टेसी' का फ्रेम तैयार किया गया है, वहाँ संस्कृत एवं तत्सम शब्दो की बहुलता मिलती है।

कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं- 'दस्यु', 'प्रचंड', 'अखंड', 'सहस्त्र', 'स्पर्श', 'नक्षत्र', 'फूल', 'वाणी', 'सन्निकट', 'रूपान्तर', 'आश्रित', 'परम्परा दीप्तिमान', 'वधिर', 'निर्झर', 'घनीभूत', 'अस्तित्त्व', 'अनुभूति', 'सम्राट', 'रूधिर', 'वेदना', 'जात', 'विक्षुब्ध', 'सर्वेक्षण', आदि।

'मुक्तिबोध' ने अपनी भावभिव्यक्ति के लिए हिन्दीतर एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी दृष्टि में ''कविता में विदेशी शब्दो का प्रयोग कोई दोषयुक्त तथ्य नहीं है। उनका

कहना है कि "आज के युम में, जबकि परिवर्तन की गति द्रुत है, जबकि जगत अधिकाधिक परस्पर-सम्बद्ध और संक्षिप्त होता जा रहा है, जबकि घटनाओं का वेग तीव्र होकर सामाजिक जीवन में तरह-तरह की ध्वनियाँ प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न कर रहा है, जबकि मन मे तरह-तरह के घात-प्रतिघात हो रहे हैं, जबकि व्यक्ति जीवन मे भाँति-भाँति के उत्तरदायित्व प्रधान हो रहे है, सामाजिक जीवन जटिल और कर्त्तव्य भावना ग्रन्थिल हो गयी है, तो ऐसी स्थिति में मन के भीतर जो उद्वेग है, जो एक लाप है, जो सुर है, उसकी प्रभावमय अभिव्यक्ति का अभ्यास चाहिए। यदि विदेशी स्रोतो से सहायता मिल सकती हो तो उसे लेने में मुझे कोई हर्ज नहीं दिखता"।[165]

विदेशी शब्दों के उचित स्थलों पर प्रयोग से काव्य की सहजता की रक्षा हुई है। उच्च वर्ग, सत्तापोषित वर्ग एवं शिक्षित वर्ग की बोलचाल की भाषा में अंग्रेजी शब्दों का बाहुल्य होता है। 'मुक्तिबोध' ने- 'मिस', 'मजिस्ट्रेट', 'प्रोसेशन', 'सिविल लाइन्स', 'वैण्ड', 'गैलरी', 'गैस लाइट', 'क्विक मार्च', 'ड्रेस', 'मोर्टरि', 'मार्शल ला', 'इलेक्ट्रान', 'सेक्रेटरी', 'स्क्रीनिंग', 'फायर', 'मैगजीन', 'कर्फ्यू', 'प्रोपेगंडा', 'फैशन', 'केवेलरी', 'गटर', 'सुपीरियारिटी काम्पलेक्स', आदि अंग्रेजी शब्दो का प्रयोग किया। अंग्रेजी शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग अँधेरे में कविता मे देखने को मिलता है। द्रष्टव्य है-

'स्क्रीनिंग करो मिस्टर गुप्ता
क्राँस इक्जामिन हिम थॉरोली'[166]

'मुक्तिबोध' ने उर्दू शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। ऐसे प्रयोग साहित्यिक मान्यताओ के अनुरूप न होते हुए भी काव्य के मर्म को उद्घाटित करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। 'फ़ैण्टेसी' शैली में प्रयोग के कारण वे खटकते नहीं। कवि की लेखनी ने उन उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया है, जो अपना पर्यायवाची तो रखते हैं लेकिन अपना भावार्थ नहीं रखते-यथा- 'बैठे हुए लोगों के खोलो न नकाब सब' मैं नकाब शब्द अर्थ गर्भित है जिसका अर्थ है ऐसे व्यक्ति से जो छिपे तरीके से सब बुरे कार्य करते हैं तथा ऊपर से सज्जन बनते हैं। इसका अर्थ है पर्दा, सज्जनता की ओट मे छिपे दुर्जनत्व का पर्दा। इसी तरह का शब्द है 'खात्मा' जिसमें तीव्रता का भाव है इसका अर्थ है समाप्तिकरण जिसे यह शब्द संक्षिप्तता के बावजूद व्यक्त करता है। ऐसे ही शब्द हैं- 'गिरफ्तार', 'साजिश' 'मेहराब' 'ताबूत', 'खुशबू', 'सरहद', 'दरख्त', 'गुलाम',

'कब्र', 'तूफान', 'खून', 'शहीद', 'इशारे', आदि। कवि ने कुछ ऐसी पंक्तियाँ लिखी हैं जिसमें अधिक से अधिक उर्दू शब्दो का प्रयोग किया है।

ऐ हिन्दुस्तानी फटेहाल, जिन्दादिल जिन्दगी
तेरा साथ तेरा वन्दा नित रहेगा
XX XX XX
उन्होंने जिन्दगी की दहशतो के
वहशतों के जिस्म फाड़े जब[167]

कवि ने 'अजनबी', 'फासले', 'सितारे', 'मुल्क', 'बियाबान', 'वारदात', 'स्याहपोश', 'खामोश', 'भूख', 'मुल्क', 'वारदात', 'जिन्दा', 'कैद', आदि का एकाधिक बार प्रयोग किया है। उर्दू के शब्दों ने 'फ़ैण्टेसी' मे प्रकट वातावरण की भयंकरता एवं जीवन की त्रासदी को सही रूप में उकेरने मे अहम भूमिका निभायी है।

मातृभाषा मराठी होने के कारण कहीं-कही मराठी शब्द भी आ गये है जैसे- 'सिवन्ती', 'कन्दीला', 'थर', औदुम्बर', 'नक्षे', 'वघार', 'हंकाले', 'परत' आदि

'फ़ैण्टेसी' के सांचे के अनुरूप 'मुक्तिबोध' ने इतिहास भूगोल, विज्ञान एवं गणित शास्त्र के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग किया है यथा 'मशीन', 'बम', 'बल्ब', 'विद्युत', 'इलेक्ट्रान', 'आवर्त्त', 'तरंगे', 'रेडियोएक्टिव', 'स्फोटक', 'तेजस्मिय', 'अमोनियम फास्फेट', 'नाइट्रेड', 'यूरेनियम', 'रेडियम', 'गाँधी', 'तिलक', 'तालस्टाय', आदि। इन शब्दों ने अनुभूति संवेदना और कथ्य को पूरी तरह जीवन्त और मूर्त बनाया है।

'मुक्तिबोध' ने 'फैण्टेसी' मे ठोग और आध्यात्मिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है। आध्यात्मिक शब्दावली की योजना में कवि ने अपनी बौद्धिक क्षमता एवं अध्ययन का परिचय दिया है। आध्यात्मिक शब्दावली का प्रयोग आध्यात्मक के लिए न होकर लौकिक समसामयिक जीवन के लिए हुआ है जैसे- 'सुषुम्ना', 'सहस्त्रासार', 'कुण्डलनी', 'अनहद', 'इड़ा-पिगला', 'पुष्यगंगा', 'ब्रह्मरन्ध', आदि।

'मुक्तिबोध' ने अपनी अभिव्यक्ति को अधिक धारदार एवं सम्प्रेषणीय बनाने के लिए कुछ नये शब्द भी गढ़े हैं, जो शब्द साधना के प्रति उसकी दुर्दान्त लगन एवं श्रम को दर्शाते

हैं। उन्होंने कुछ नये विशेषणो का निर्माण कर 'फ़ैण्टेसी' शैली में 'फ़ैण्टेसी' का पूर्ण रूप से प्रयोग कर के निर्माण नए तेवर का परिचय दिया है। 'लकड़ी के रावण' कविता मे कवि ने 'अनाकार' का प्रयोग किया जो वास्तव में 'निराकरा' होता है। उसी प्रकार 'अरोक', 'बेनाम' शब्द का प्रयोग किया जो 'बेराक' 'अनाम' शब्द है। उसी तरह 'व्यभिचरण' शब्द है जो वास्तव में 'व्यभिचार' शब्द है यह पूर्व पंक्ति में आये चरण शब्द के कारण सुंदर बन गया है।

यह सही है कि वह गगन-दहन
एक चरण युग का
वह युग जिसमें प्रजापतियों का
दृप्त व्यभिचरण।[168]

'मुक्तिबोध' के नवीन प्रयोग रोचकता से युक्त और शीघ्र समझ में आने वाले हैं, इनसे कविता बोझिल नहीं हुई है। उनके नवीन शब्द, नवीन-प्रयोग आधुनिक और पुरातन कविता के बीच संबंध सूत्र का काम करते हैं।

'मुक्तिबोध' जीवन के कटु सत्य एवं बिडम्बनापूर्ण भयावह स्थिति के साक्षी थे। यही कारण है कि उनकी 'फ़ैण्टेसी' मे सुखद दृश्य कम भयावह चित्र अधिक हैं। 'बागी', सैनिक, 'मार्शलला', हत्या, 'दुर्घटना', 'आग', 'जुलूस', 'टैंक', 'बन्दूकें', 'भैरव', 'चीख' 'आशंका', 'काँपना', 'दस्यु', 'प्रेत', 'भयानक', 'अंधकार', 'पर्चे', 'स्याह', 'षडयंत्र', 'भय', 'रक्त', आदि शब्द बराबर प्रयुक्त हुए हैं। ये 'फ़ैण्टेसी' में परिस्थिति की भयानक भयावहता को पूरे संत्रास के साथ सृजित करते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है कि 'मुक्तिबोध' की कविता केवल हॉरर ही प्रदर्शित करती हैं। 'फैण्टेसी', हॉरर के साथ-साथ,आशाप्रद जिजीविषा की अदम्य लालसा और संघर्ष शक्ति का दृश्य भी निर्मित करती है। ऐसे दृश्यों के निर्माण के लिए 'मुक्तिबोध' ने 'किरणीली', 'रक्ताली', 'स्नात पुरुष', 'सुनहरा', 'स्वर्णिम', 'शिशु', 'रत्न विवर', 'बिजली के फूल', 'ज्वाला', 'प्रकाश द्वीप', 'सिन्दूरी', 'तेजस्वी', आदि शब्दों की योजना की है। ये शब्द जीवन की सकारात्मक एवं सुखद स्थितियो को प्रदर्शित करते हैं।

'फ़ैण्टेसी' का ध्वन्यात्मकता और चित्रात्मकता से घनिष्ठ संबंध है। 'फ़ैण्टेसी' काव्य तो कई दृश्यों (जो अतर्किक होते हैं) एवं विविध रहस्यात्मक विचित्र ध्वनियों से निर्मित होता है।

'मुक्तिबोध' ने इनकी सजीवता एवं रोचकता तथा कथ्य की संवेदना एवं अभिप्राय के अनुरूप कविता मे इन शब्दों का प्रयोग किया है, जो ध्वनि से ही अपना मन्तव्य स्पष्ट कर देते हैं। 'झुरमुर-झुरमुर नीम हँसा' में नीम का मानवीकरण है। एक प्रयोग है- 'खनके-मानो बहुओं की चूडी के कगन' को देखकर लगता है। मानो लयात्मक बनाने के लिए कवि ने 'चूँड़ी के कंगन' शब्द का प्रयोग किया है। अन्यथा 'चूँड़ी के कंगन' का अर्थ समझ मे नहीं आता। 'खनके' शब्द सार्थक है, जो चूड़ी की खनक हमें सुना देता है। 'चिलविलाना' शब्द धूप की चकाचौंध है, जो चमक उपस्थित करती है और कवि भाव अधिक स्पष्ट करने के लिए कहता है-

'चिलविला रहे प्रखंड धूप में उजाड़'।[169]

इसी प्रकार 'धधकना' शब्द अपना भाव ध्वनि से स्पष्ट कर देता है, 'टिमटिमाना' शब्द भी सार्थक है। कवि लिखता है- 'इस टिमटिमाते दीप के चहुं और पहुंचने भाव लेकर नया' ऐसा ही प्रयोग है। यहाॅ कम ज्यादा होती हुई चमक पाठक के समक्ष उपस्थित होती है। एक स्थान पर कवि ने 'तड़फड़ाना', 'फड़फड़ाना' शब्द प्रयुक्त किया है। इससे व्याकुलता की, बेचैनी की अवस्था समझ मे आती है।

'वह एक विकल विहंगनी-सी आत्मा
है तड़फड़ती फड़फड़ाती पंख'।[170]

'वर्षा' नामक कविता की अंतिम पंक्ति द्रष्टव्य है'

'मत थक, मत डर, दल दल से इस , चल, चलता चल'[171]

इसी तरह एक वाक्य आता है-

'मटक-मटक मुँह बिचकाती है पथ पर पागल' [172]

कुछ अन्यशब्द इस प्रकार है- 'झर-झर', 'भिनभिनाते', 'गड़गड़ाहट', 'झन-झन', सरसराते', 'फफक-फफक कर', 'धड़धड़', 'थरथराता', 'कंपकपी', 'फुसफुसाती', 'खनकाकर', 'भड़ाभड़', 'तड़ाक-तड़ाक', 'गड़बड़', 'धक-धक', 'थर्राहट', 'किटकिटाते', 'कंपकपी', 'गुनगुनाती', 'भुन-भुनाती', आदि।

'मुक्तिबोध' ने असाहित्यिक शब्दों का प्रयोग भी किया है। सीधे-सीधे शब्दों में गालियो का प्रयोग। जब हम कविता की दृष्टि से देखते हैं, तब यह प्रयोग कचोटने वाले होते

है, परन्तु जब हम 'मुक्तिबोध' को पढ़ रहे होते हैं, तब ये शब्द कवि आक्रोश, विवशता के भावों को मूर्त रूप देने मे सहायक होते हैं। 'मुक्तिबोध' की कविता शोषितों की कविता है, वर्तमान व्यवस्था का मुखौटा उतार फेक कर यथार्थ को चित्रित करने वाली कविता है। ऐसे मे यदि ऐसे शब्द आ भी गये तो कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। ये शब्द नगण्य ही हैं, परन्तु उपेक्षणीय नहीं है। कुछ शब्द हैं—

'ऐसी-तैसी', 'साले', 'उल्लू का पट्ठा', 'बेशर्म' आदि

सूत्र शब्द

'मुक्तिबोध' की कविताएं प्रायः लम्बी है। कविता का विशाल कैनवास कई छोटी-बड़ी 'फ़ैण्टेसियो' के सहयोग से निर्मित हुआ है। एक दृश्य बदला तब तक दूसरा दृश्य प्रकट हुआ। 'फ़ैण्टेसी' मे दृश्यों की क्रम योजना में तर्क संगति नही बैठानी पड़ती है, इसीलिए यहाँ अतार्किक रूप से कई चित्र मालाएँ सश्लिष्ट हुई हैं और उनके सहयोग से एक बड़ी 'फ़ैण्टेसी' कविता तैयार की गई है। 'मुक्तिबोध' एक 'फ़ैण्टेसी' से दूसरी 'फ़ैण्टेसी' में प्रविष्ट होने के लिए कुछ सूत्र शब्दों का प्रयोग करते है, जो दिक्कालीय वातावरण में पहुंचने में भी सहायक हुए हैं-यथा-'एकाएक' 'अकस्मात', 'अचानक', 'इतने मे' 'सहसा', 'यकायक'.............हैं। इन्हीं शब्दों के माध्यम से कवि 'फ़ैण्टेसी' में प्रविष्ट होता है। जहाँ ये सूत्र शब्द 'फ़ैण्टेसी' में पहुँचने की कुंजी हैं, वही उसे गति तथा रोचकता प्रदान करते हैं।

इतने में अकस्मात तैरता आता सा
समुद्री अँधेरे में
जगमगाते अनगिनत तारों का उपनिवेश
विविध रूप दीपों की अनगिनत पांतो का
रहस्य दृश्य!!
XX XX XX
एकाएक मुझे भान होता है जग का
अख़बारी दुनिया का फैलाव

फसाव, घिराव, तनाव है सब ओर

पत्ते न खड़के

सेना ने घेर ली है सड़कें

बुद्धि की मेरी रंग

गिनती है समय की धकधक

यह सब क्या है?[173]

नाटकीय एवं सम्बोधन शैली

'मुक्तिबोध' की कविताओं में नाटकीय तत्त्व का समावेश उनकी प्रमुख विशेषता है। मनःसृष्टि, स्वप्न, दिवास्वप्न, एकलाप, स्वगत-कथन उनकी नाटकीय संरचना के प्रमुख अंग हैं। 'डॉ नरेन्द्र मोहन' के शब्दों में "स्थितियों के पीछे की स्थितियों, व्यवहारों मानसिक-आत्मिक क्रिया कलापों को अभिव्यक्त करने के लिए नाटकीय विधान लम्बी कविता की अनिवार्य संरचना माना जा सकता है। कार्यो और व्यापारों को नाटकीय विधान में प्रस्तुत करके स्थितियों के अन्तर्विरोध का बोध जगाया जा सकता है। इसमे नाटकीय संवादो में जिस गहरे कलात्मक संयम की आवश्यकता है, वह भी नाटकीय विधान द्वारा प्रभावी तौर पर सम्पन्न हो सकात है। नाट्य तत्त्वों के प्रयोग से 'फैण्टेसी' का आकर्षण बढ़ता है। 'फैण्टेसी' में आयी नाटकीयता जहाँ रहस्य को और गहरायी है वहीं फन्तीस की गतिमयता को बनाये रखती है। नाटकीय तत्त्वों के सहयोग से जहाँ घटनाक्रम को रोचकता मिलती है वही एक दृश्य से दूसरे दृश्य में मुड़ने मे भी सुविधा रहती है, तथा विविध घटनाक्रमों को आपस में गूंथने में आसानी होती है। कविता में आये जुलूस क्रान्ति के दृश्य, कभी किसी वस्तु या देव का अचानक प्रकट एवं गायब होना, वस्तु या शक्ति के स्वरूप में परिवर्तन होना, नायक को फटकार मिलना, सत्ता पक्ष द्वारा षडयंत्र रचना आदि घटनाओ में नाटकीय तत्त्व का सहारा लिया गया है।"[174]

'फ़ैण्टेसी' कविताओं मे एक काल्पनिक कथा रहती है। यहाँ कथा प्रतीकात्मक होती है, उसके प्रतीकों मे ही वास्तविक कथ्य छिपा होता है, यही कारण है कि 'फ़ैण्टेसी' मे नाटकीयता के निर्वाह के लिए पात्र संवाद आदि का आयोजन किया जाता है कविता मे आये काव्य नायक और विभिन्न 'फ़ैण्टेसी' पात्र आपस में वार्तालाप एवं संवाद करते हैं, इन संवादों

में कवि के विविध मनोवृत्तियों और अन्तद्वन्द्वों को स्वर मिला है। ये संवाद प्रायः आत्मचेतना को जागृत करते हैं; प्रवृत्तिगत कमजोरियों तथा दायित्व के प्रति निर्लिप्त रहने पर धिक्कारते है; या कड़ी भर्त्सना करते हैं। कभी-कभी काव्य नायक अपनी कमजोरियों पर स्वयं लज्जित हो स्वयं को ही संवोधित करता है स्वगत कथन के माध्यम से-यथा-

ओ मेरे पाषाण

ओ मेरे टीले

आखिर तू डाकू की कुरसी ही क्यों हुआ।।

क्यो उसने तुझको ही छाटा और चुन लिया?

तुम पर ही आखिर

बैठ गया क्यों वह?[175]

मुक्तिबोध जहाँ इस तरह के स्वगत कथनों में तल्लीन होते हैं, वहाँ उनके चिन्तन का तेवर बहुत ही धारदार, व्यक्तित्व जुझारू और दृष्टि मानवतावादी बन जाती है। इस तरह के अनेक स्थल उनकी कविताओं मे मिल जाते हैं।

कव ने अपनी कविताओं में संबोधन-शैली का भी प्रयोग किया है। 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' में इसका निखार देखने को मिलता है। संपूर्ण कविता मे संबोधन शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। द्रष्टव्य है-

अरे रे! कौन अभागा वह,

जिसने यों आत्मोत्पन्न सत्य त्यागा?

किस मौन विवशता के कारण?

किसके भय से?

पर, भय किसका?[176]

संबोधन-शैली की स्थिति में कवि की भाषा ओजमय बन गयी है। विचार क्षिप्र और गतिशील रूप ग्रहण कर लिए हैं और उनमें एक अद्‌भुत तरह की नाटकीयता का समावेश हो गया है।

संवादों से कवि के कथ्य को गहराई एवं पैनापन मिला है। 'फ़ैण्टेसी' शिल्प युक्त

कविता मे छोटे एवं लम्बे दोनों ही तरह के नाटकीय संवाद है। इसलिए 'फ़ैण्टेसी' कविताओं मे नाटक जैसा आनन्द मिलता है। संवादों में कवि का भीतरी बाहरी संघर्ष उभरता है और उसके आत्मविवेक का परिचय मिलता है। 'चॉद का मुँह टेढ़ा है', 'एक अन्तर्कथा', 'एक स्वप्न कथा', 'मेरे सहचर मित्र', 'चकमक की चिनगारियॉ, 'एक टीले और डाकू की कहानी', 'अन्तः:करण का आयतन', भविष्य धारा', 'मालव निर्झर की झर-झर कचन-रेखा', 'अँधेरे मे', इस चौड़े ऊंचे टीले पर', 'चम्बल की घाटी में' आदि कविताएँ संवाद शैली में रची गयी हैं। कुछ कविताएँ संबोधन शैली मे लिखी गयी हैं- 'ओ काव्यात्मन् फणिधर', 'लकड़ी का रावण' आदि। 'लकड़ी का रावण' मे 'रावण' स्वयं अपने आप को संबोधित करता है। इन कविताओं मे संवादो का अभाव है। सम्बादों का आकार प्रसंग पर निर्भर करता है। संवादों की भाषा बोलचाल की सहज स्वाभाविक भाषा है।

व्यंग्य

'मुक्तिबोध' ने जीवन की त्रासदी, विडम्बना, विसंगति, खोखलेपल, भ्रष्टाचार, आक्रोश को सीधे-सीधे न कहकर उन्होने उनके प्रकटीकरण के लिए व्यंग्योक्तियो का सहारा लिया है। इससे कथ्य में पैनापन आता है, वही वह पाठको की संवेदना को भी झंकृत करता है, हृदय की गहराई में उतर जाता है। व्यंग्योक्तियो में गुदगुदाहट कम है, कसक अधिक है। व्यंग्य के प्रयोग से कथ्य के तनाव में कमी आयी है, परन्तु वस्तुस्थिति को गम्भीरता मिली है। और मर्म की सही अभिव्यंजना हुई है।

''बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराए के विचारों का उद्‌भास।
बड़े-बड़े चेहरो पर स्याहियां पुत गई।
नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर में छिप गई
कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई।[177]

ऐसे अनेक स्थलों पर वस्तु से सन्दर्भित यथार्थ स्थिति और भावों को व्यंग्यात्मक ढ़ंग

में व्यंजित किया गया है। व्यंग्य सामाजिक एवं आन्तरिक विद्रूपता एवं भ्रष्टाचार पर करारा आघात करते हैं। 'मुक्तिबोध' ने कविता के शीर्षक के लिए भी कुछ व्यंग्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया है जैसे 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'लकड़ी का रावण' आदि।

पुनरावृत्ति

आवृत्ति कविता का एक प्रमुख गुण है। विशेषकर 'फ़ैण्टेसी' कविताओ मे तो यह आवृत्ति प्रयोग एक अनिवार्य तत्त्व है कारण स्पष्ट है लम्बी कविता अपने मूल विषय से दूर इतर वर्णनो मे भटक जाती है। ऐसे मे पाठक और कवि दोनों को ही मूल विषय पर लाने मे यह प्रयोग सहायक सिद्ध होते हैं।

'अँधेरे मे' 'मुक्तिबोध' की सबसे लम्बी कविता है। इस कविता मे लगभग बीस वाक्य ऐसे है, जिनकी आवृत्ति एक से अधिक बार हुई है। कुछ वाक्यों की आवृत्ति तो सात-सात, आठ-आठ बार हुई है। निम्नलिखित वाक्यों की आवृत्ति एक से अधिक बार हुई है।

(1) 'सुनाई जो देता पर नहीं देता दिखायी'

(2) 'सांकल ही रह-रह बजती है द्वार पर'

(3) 'सह नहीं सकता'

(4) 'रही जल'

(5) 'भागता मैं दम छोड़ घूम लाया कई मोड़' - छह बार आवृत्ति

(6) 'अब तक क्या किया जीवन क्या जिया'!!

(7) 'बहुत बहुत ज्यादा लिया, दिया बहुत कम'!

(8) 'मर गया देश और जीवित रह गये तुम'

(9) 'एकाएक हृदय धड़क कर रूक गया।' आदि[178]

सर्वाधिक आठ बार आवृत्ति 'कही आग लग गई कहीं गोली चल गयीं' का हुआ है अन्य कविताओ - 'चांद का मुँह टेढ़ा है' में 'गगन में कर्फ्यू' की पुनरावृत्ति आदि। एक ही कविता में की गयी पुनरावृत्तियाँ प्रायः समान हैं। 'धरती पर जहरीली छी थू' तथा 'धरती पर चारो ओर जहरीली छी थू' या 'टेढ़े मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी' तथा 'टेढ़े मुँह-चांद की ऐयार रोशनी भी खूब है' इस तरह की पंक्तियाँ काव्य के प्रवाह या केन्द्रिय संवेदना को अवरूद्ध नहीं करती

हैं, बल्कि ऐसे वाक्यों ने मूल सवेदना तथा 'फ़ैण्टेसी' के वातावरण के परिदृश्य के प्रकाशन मे सहयोग किया है।

कुछ कविताओं के कथ्य मे बहुत साम्य है। अतः उनकी भाषिक संरचना मे भी साम्य देखने को मिलता है। इस तरह की कविताएँ एक ही ढ़ग से एक ही बात कहती प्रतीत होती हैं यथा- 'चम्बल की घाटी मे' और 'एक टीले और डाकू की कहानी' आदि।

मुहावरे

'मुक्तिबोध' ने आवश्यकता के अनुसार 'फ़ैण्टेसी' के अनुरूप मुहावरों को भी गढ़ा हैं। सफल रचनाकार अभिव्यक्ति की सभी संभावनाओं का आवगाहन करता है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ आरम्भ से ही भाषा-भाव अथवा अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन रही हैं। 'मुक्तिबोध' ने भाषा के स्वरूप को पहचाना था और उसके अनुरूप उसका प्रयोग भी किया था। यही कारण है कि उनके काव्य में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरो का प्रचलित अर्थ में प्रयोग देखने को मिलते है। बहुत कम समर्थ रचनाकारो ने उन्हें नया स्वरूप प्रदान किया है, नए अर्थ-संदर्भ का वाहक बनाया है। 'मुक्तिबोध' में अन्वेषण की क्षमता है। उन्होंने मुहावरो का परम्परित अर्थ में प्रयोग किया किया है। अर्द्ध परम्परित अर्थ में प्रयोग किया है और सर्वथा नवीन अर्थ संदर्भ मे प्रयोग किया है। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर नये मुहावरों का भी निर्माण किया है- यथा- 'बेघर बार करना', 'बेसिर पैर की बात करना', 'कैदकर लाया गया ईमान', 'रोम-रोम खड़े होना', 'ऐसी ट्रेजडी है नीच', 'सजल उर शिष्य बनना', 'मसान में सिद्धी पाना', 'मूंठ मार देना', 'बाकी सब खोल है जिन्दगी में झोल है', 'जिन्दगी उजाड़ बनना', 'सूनापन सिहरना', 'ध्वनियो के बुलबुले उभरना', 'जमाने की जीभ निकलना', 'विवेक वघारना' आदि।

विरोधी शब्द युग्म - 'मुक्तिबोध' ने विरोधी शब्द युग्मों से 'फ़ैण्टेसी' का एक नया, अनोखा, युक्तायुक्त सार्थक अर्थ प्रकाशित किया है। इस तरह के प्रयोग 'मुक्तिबोध' की अन्वेषण शक्ति के परिचायक हैं। यथा- 'स्वचेतन अंधकार' 'अतिरेक पूर्णता', 'भव्याशय अँधेरे', 'अधियाली सचाइयाँ' आदि। ये शब्द जहाँ अलग-अलग होने पर एक दूसरे से विपरीत एवं स्वतन्त्र जान पड़ते हैं, वही एक साथ होने पर एक नया अर्थ प्रकाश फैलाते हैं।

डॉट्स का प्रयोग

'फैण्टेसी' शिल्प की कविता गढ़ने में 'मुक्तिबोध' ने अनेक नए-नए प्रयोग किए, जिससे भाषिक संरचना घुमावदार बन गई है। डाट्स का प्रयोग इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। डॉट्स कुछ बातें अनकही छोड़ जाते हैं। कभी वाक्य को या तो अचानक रोक देते हैं या अचानक शुरू कर देते हैं, जहाँ वह कुछ रुक-रुक कर कहना चाहते हैं या जहाँ वह बात को कुछ विश्राम देना चाहते हैं वहाँ वह "........" का प्रयोग करते हैं कहीं-कहीं पूरी पंक्ति के स्थान "......." का प्रयोग किया गया है। ऐसे स्थलों पर उसके बाद डांट के माध्यम से उसी प्रसंग से सबंधित नयी बात कही गयी है।

विस्मय वाचक चिन्ह

'मुक्तिबोध' ने कुछ आश्चर्य जनक, विस्मयपूर्ण और स्तब्धकारी भावों तथा कहीं-कही किसी को संबोधित करने के लिए तथा किन्हीं बातों को कविता में अधिक उभारने के लिए या अधिक जोर देने के लिए विस्मय वाचक चिन्ह (!) का प्रयोग किया है। कही-कहीं इसकी दो (!!) आवृत्तियों का प्रयोग है। चिन्ह की आवृत्ति कथ्य की संवेदना पर निर्भर करती है।

डैश - 'मुक्तिबोध' ने गद्य की पद्धति पर (-) का प्रयोग किया है। इसका प्रयोग सभिप्राय है। प्रायः संवादों के शुरू में इसका प्रयोग है। कभी-कभी कुछ खास शब्द जिसे कवि अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है, के आगे पीछे यह लगा है, ये जहाँ लगे हैं वहाँ विशेष तथ्यों का उद्‌घाटन करते हैं। यथा-दुर्निवार अक्षर-, 'एकाएक भान'-'नीले सपने में देखा'-,'नित्य अन्य की देह-शिरा मे'/'रक्त नसों में- एक अजनवी'/'हृदय-स्पन्दन से धक्के खाकर'/'रंग-मार्गो में घूम रहे हैं',[179]

कोष्ठक ( ) - 'फ़ैण्टेसी' की वास्तविक अर्थसत्ता संकेतिक होती है। संकेत का सही अर्थ न ग्रहण कर पाने की स्थिति में 'फ़ैण्टेसी' कविता सही रूप में समझ में नही आती, यह सामान्य पाठकों के लिए दुरूह हो जाती है। 'मुक्तिबोध' ने अपनी 'फ़ैण्टेसी' कविता में () कोष्ठकों का प्रयोग किया है। इन कोष्ठकों में 'मुक्तिबोध' ने अपने कथ्य के अभिप्राय की अभिधात्मक टिप्पणी या स्पष्टीकरण किया है, जिससे यह सबके लिए सुलभ हो तथा पाठक अर्थ

[illegible] में भटकाव से बच जाए। कोष्ठको के प्रयोग से विज्ञजनों को सही अर्थ ग्रहण करने में सुविधा हुई है। कोष्ठको में उनकी 'फ़ैण्टेसी' स्वयं अपने मर्म को स्पष्ट करती गयी है -

हाय, हाय! मैंने उन्हें गुहा-वास दे दिया
लोक-हित क्षेत्र से कर दिया वंचित
जनोपयोगी से वर्जित किया, और
निषिद्ध कर दिया
खोह में डाल दिया!!
वे खतरनाक थे
(बच्चे भीख माँगते) खैर .....
यह न समय है,
जूझना ही तय है।[180]

'मुक्तिबोध' ने कविता के भाषिक स्तर पर नए-नए प्रयोग एवं अन्वेषण किये, नये-नये उपकरणों का नवीन पद्धति से प्रयोग किया, पुरानी काव्य-रचना व्यवस्था के बहुत से नियम स्वीकार नहीं किये। पुरानी भाववादी शैली और उसके उपकरणों को नया रूप दिया, कविता के व्याकरणिक स्तर पर वे कुछ कमजोर सिद्ध हुए। कविता में कुछ स्थलो पर व्याकरणिक त्रुटियाँ एवं अशुद्धियां देखी जा सकती है। 'मुक्तिबोध' ने जान-बूझकर ये त्रुटियाँ नहीं की है, ये अशुद्धियाँ व त्रुटियाँ प्रायः अधिक भाव-प्रवणता और मूर्तता लाने के प्रयास में हुई है। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि 'मुक्तिबोध' की हिन्दी पूरी तरह परिपक्व नहीं थी। इसका उल्लेख उन्होने 'नेमिचन्द बाबू' को लिखे पत्र में किया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जो व्याकरणिक त्रुटियाँ उनसे हुई, वह अनजाने में हुयी हैं वो सतत अपनी भाषा को परिष्कृत करने मे लगे रहे। उन्होंने भाषा साधना के दौरान कभी भी अनावश्यक और कृत्रिम कौशल का परिचय देने के लिए ये गलतियाँ नही की ।

भाषिक स्खलन के कुछ बिन्दु

'मुक्तिबोध' की कविताओं से गुजरने के क्रम में जहाँ रचनागत सशक्त पहलुओं की

ओर संकेत किया गया, वहीं आवश्यक है कि उन बिन्दुओं की तरफ ध्यान आकृष्ट किया जाय जहाँ कवि कुछ अशुद्धियाँ या असंगतियां कर बैठा है अथवा जहाँ उसकी भाषा काव्य-भाषा के स्तर से विचलित हो गयी है। यहाँ आलोच्य रचनाकार के रचनाकर्म में प्रयत्नपूर्वक दोष ढूँढ़ना मंतव्य नहीं है। दृष्टि यह है कि कवि के सर्जनात्मक कर्म को समग्रता मे परीक्षण किया जाए, भले ही ऐसे स्थलों की संख्या अधिक न हो फिर भी उनका उल्लेख करना कवि के सम्यक मूल्यांकन की दृष्टि से प्रासंगिक प्रतीत होता है।

विवेच्य कवि भाषा प्रयोग को लेकर सजग-सचेष्ट दिखाई देता है, लेकिन कहीं-कहीं असावधान हो जाता है। उदाहरर्णाथ - उसके काव्य मे अनेकों का प्रयोग विचारणीय है -

'अनेकों मंजिलों में तंग घेरों में
मेरी सरहदें अनेकों ब्रह्माण्डों को घेर फैल जाती
अनेकों स्वप्न छवियों को जगाता है।'[181]

कहना न होगा कि एक से अधिक का उल्लेख करने के लिए 'अनेक' का व्यवहार होता है। फिर अनेकों रूप किस तरह से शुद्ध माना जा सकता है। काव्य-न्याय के तहत ऐसे दोषपूर्ण शब्द प्रयोगों को औचित्य पूर्ण ठहराया जा सकता है, लेकिन उस स्थिति मे जबकि ऐसे प्रयोगों का कोई रचनात्मक उपयोग हुआ हो। इसके अतिरिक्त कवि जब ऐसे दोषपूर्ण शब्दो के व्यवहार की आवृत्ति करता जाता है, तो अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसी संदर्भ मे उल्लेखनीय है कहीं कहीं कवि के काव्य में लिंग संबंधी अशुद्धि देखने को मिलती है।

'पैर तेरे ओर करता लटकाता ही रहूँ।'[182]

व्याकरणिक दृष्टि से **'तेरी ओर'** होना चाहिए

'मुक्तिबोध' की कुछेक कविताओं में अनावश्यक तुकाग्रह भी देखा जा सकता है। अनावश्यक इसलिए कि ऐसी तुकें किसी प्रकार का अर्थ-वैशिष्ट्य उभारने मे योग देती नहीं प्रतीत होतीं -

'जिंदगी एक कबाड़ा है
भूतों का बाड़ा है।
XX XX XX

नफ़रत और नफ़ासत

बीबी के साथ ही सियासत'[183]

ऐसी प्रयोजनहीन तुकबंदिया कवि की रचनात्मक भाषा के बीच असहज लगती हैं नुक मोह कवि के कविता-कर्म की उदात्तता को आघात पहुँचाता है।

'मुक्तिबोध' ने समीक्षा की समस्याओं पर विचार करते हुए कविता को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया कहने की अवधारणा को समर्थन दिया है। इसके बावजूद कवि के कविता-संसार में उनकी उपर्युक्त समर्थित मान्यता को लेकर कही-कहीं अंतर्विरोध मौजूद मिलता है -

"औ आलिंगन अनुभव अपार

उस नग्न वृक्ष की हरित-शीत जंघाओं का"

"नूतन पीपल मौलसिरी औ नीम

वायु में मर्मर करते;

नंगी जाँघों

विकसित भरे हुए वक्षो मे वृक्ष बन गये'[184]

अश्लीलता सूचक शब्द निश्चित रूप से विवेच्य रचनाकार की काव्य को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया मानने की स्थापना के अनुरूप नही बैठता।

'मुक्तिबोध' की भाषा में प्रतीक तथा बिंबों में दक्ष प्रयोग संबंधी अनेक स्थल विवेचित किये जा चुके हैं। फिर भी, उनके काव्य में शब्दों के अनावश्यक प्रयोग की स्थिति भी विद्यमान है -

'मलयाचल पर्वत से आती

वायुवहिनी।'[185]

'मलय' के साथ 'अचल' शब्द पहले से जुड़ा हुआ है जिसके कारण पर्वत का प्रयोग गैर जरुरी लगता है।

'भीतरी तहों को अनेक-विध

उठाता-निकालता कि

तम की प्रदीर्घ व असीम सुरंग से'[186]

कवि द्वारा प्रदीर्घ तथा असीम का साथ-साथ व्यवहार किया गया है, जबकि असीम

के पूर्व प्रदीर्घ का इस्तेमाल किया जाना किसी भी दृष्टि से संगत नही प्रतीत होता है। कारण यह है कि जब किसी चीज को सीमा रहित कहा जा रहा है, तो उसे अत्यन्त दीर्घ कहना निष्प्रभावी हो जाता है।

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'मुक्तिबोध' का भाषा प्रयोग दो विपरीत ध्रुवो पर स्थित है। एक ध्रुव पर तो हम उनके उत्कृष्ट भाषा-प्रयोग से साक्षात्कार करते हैं तो दूसरे पर भाषागत स्खलन की स्थिति सामने आती है।

छन्द

'मुक्तिबोध' ने छन्द के स्तर पर नवीनता को स्थान दिया। अपने कथ्य, युगीन-चेतना की अभिव्यक्ति एवं शिल्प ('फ़ैण्टेसी') के अनुसार 'स्वच्छन्द' छन्द का चयन किया। 'मुक्तिबोध' के छन्द के वैशिष्ट का उल्लेख करते हुए 'शमशेर बहादुर' ने लिखा है - "निराला के ठेठ मुक्त छन्दो से हाथ मिलाकर आगे जाता है। वही सीधी अभिव्यक्ति, सरल मानवीय व्यंजना, मगर उससे अधिक भी निरालापन के साथ 'मुक्तिबोध'पन। यानी वही एक नया गहरा, साक्षीपन का भाव, सबके ऊपर नहीं सबके साथ यद्यपि विशिष्ट"।

'मुक्तिबोध' के अनुसार- नयी कविता और प्रयोगवादी कविता से स्वच्छन्द छन्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। प्रसाद और निराला ने इसका खूब प्रयोग किया, निराला मे 'पद्याभास गद्य' का प्रयोग देखने को मिलता है। उत्तरोत्तर इस प्रकार के प्रयोग का प्रचार बढ़ता गया। उनके अनुसार 'पद्याभास गद्य' में बाह्य परिवेश में की जाने वाली संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओ और भाव प्रतिक्रियाओं को उनकी सहज प्रभावी गति में पूर्ण रूप में उपस्थित किया जा सकता है। कविता की भाषिक संरचना पद्याभास गद्य होते हुए भी गद्य से अलग होती है। धारणा है कि गद्य की भाषा अधिक स्वाभाविक है उसमें भाषा का स्वाभाविक स्वर, उसका लहजा, उच्चारण विधि इन सब की समुचित रक्षा होती है।

निष्कर्ष

'मुक्तिबोध' के कविता की भाषा मे गद्यात्मक भाषा का प्रयोग होने पर भी उसमे काव्यात्मकता का गुण निहित है। भाषा पद्याभास गद्यात्मक होते हुए भी विशेष लयात्मकता से

युक्त है, उसमे गेयता का विधान नही है, फिर भी उसका अपना अन्तःसंगीत या आन्तरिक लय है, जो यथा स्थान खण्डो को आपस में बांधने में सक्षम सिद्ध हुई है। देशी-विदेशी शब्दो के संयोग से निर्मित 'मुक्तिबोध' की काव्यभाषा, बोलचाल की जनभाषा के अधिक निकट है, उसमें एक सरस प्रवाह, सहजता एवं रसात्मकता द्रष्टव्य होती है।

'मुक्तिबोध' का भाषा प्रयोग दो विपरीत ध्रुवों पर स्थित है। एक ध्रुव पर तो हम उनके उत्कृष्ट भाषा-प्रयोग से साक्षात्कार करते हैं, तो दूसरे पर भाषागत स्खलन की स्थिति सामने आती है। संतोष की बात है कि रचनाकार के भाषिक उत्कर्ष की तुलना में उन स्थानों की संख्या बहुत कम है, जहॉ भाषागत शैथिल्य विद्यमान है। भाषा के स्तर पर 'मुक्तिबोध' ने अपनी मौलिक अनुभूतियो को बड़े ही कुशल ढ़ंग से नवीन एवं सार्थक काव्यात्मक आवरण पहनाया है। अनुभूति को एक नया आयाम दिया है। कविता मे भाव संवेदन के अनुरूप एक सार्थक अर्थ स्पन्दन को पकड़ा है। एक-एक शब्द एवं वाक्य को सोद्देश्य बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। शिल्प के स्तर पर उन्होंने सदा नया प्रयोग किया है। जहाँ तक हो सका है अपनी कविता को पूर्ण रूप से मूर्त और जीवन्त बनाने का प्रयत्न किया है। उनके भाषा का अर्थ जगत विविध विस्तृत एवं जटिल है - यहाँ यथार्थ और 'फ़ैण्टेसी' एक दूसरे से अभिन्न होकर ही सार्थकता पा सके हैं। वास्तव में उनकी यह प्राणवान काव्य-भाषा उनके प्राणवान कथ्य की ही प्रतिध्वनि है। उनकी यह मौलिकता भाषा की तेजस्विता सुविचारित और सुव्यवस्थित भाषिक योजना, उनके 'मुक्तिबोधपन' की ही परिचायक है।

पाद टिप्पणी

1 काव्य शिल्प के आयाम - सुलेख शर्मा पृष्ठ 5
2 चिन्तामणि - पहला भाग - 'कविता क्या है' पृष्ठ 100
3
4. काव्य बिब - डा॰ नगेन्द्र पृष्ठ 17
5 साहित्य का स्वरूप - नौवां संस्करण पृष्ठ 68
6. वही पृष्ठ 68
7 वही पृष्ठ 69
8 सर्जन और भाषिक संरचना - रामस्वरूप चतुर्वेदी पृष्ठ 43
9. हिन्दी कविता मे बिब विधान - केदारनाथ सिह पृष्ठ 79
10 सर्जन और भाषिक सरचना - रामस्वरूप चतुर्वेदी पृष्ठ 50
11. मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य - डा॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव पृष्ठ 259-260
12 वही पृष्ठ 423
13. चाँद का मुहँ टेढ़ा पृष्ठ 204 (मुक्तिबोध रचनावली खण्ड-2)
14. वही पृष्ठ 261
15. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 1204
16 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 273
17. वही पृष्ठ 274
18. वही पृष्ठ 272-273
19. वही पृष्ठ 273
20. एक साहित्यिक की डायरी पृषूठ 19
21. वही पृष्ठ 70
22 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 242
23. वही पृष्ठ 246
24. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 49
25. चाँद का मुहँ टेढ़ा पृष्ठ 261(मु0 रचना0 खण्ड-2)

26 वही पृष्ठ 304
27 काव्य बिंब - डा॰ नागेन्द्र पृष्ठ 12
28 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 238
29. चाँद का मुहँ टेढ़ा पृष्ठ 70-71
30. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 204
31. वही पृष्ठ 204
32 चाँद का मुहँ टेढ़ा पृष्ठ 113
33 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 352
34 चाँद का मुहँ टेढ़ा पृष्ठ 299(मु0 रचनावली खण्ड-2)
35 वही पृष्ठ 155
36 वही पृष्ठ 70
37 वही पृष्ठ 353
38. वही पृष्ठ 46
39 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 1 पृष्ठ 45
40 वही पृष्ठ 111
41 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 410
42 चाँद का मुहँ टेढ़ा पृष्ठ 146
43 वही पृष्ठ 356 (मु0 रचनावली खण्ड-2)
44. वही पृष्ठ 355 (मु0 रचनावली खण्ड-2)
45. भूरी-भूरी खाक धूल - दिल्ली 1980 - पृष्ठ 147
46 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 350
47 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 1 (वाणी में प्रकाशित) पृष्ठ 37
48 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 1 (वाणी मे प्रकाशित) पृष्ठ 37
49 चाँद का मुहँ टेढ़ा पृष्ठ 306 (मु0 रचनावली खण्ड-2)
50 वही पृष्ठ 306 (मु0 रचनावली खण्ड-2)
51. वही पृष्ठ 41
52. वही पृष्ठ 41
53. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 180
54. वही पृष्ठ 265
55. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 294, 297, 297
56. वही पृष्ठ 298-299

57 वही पृष्ठ 332
58 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 205
59 वही पृष्ठ 304
60 वही पृष्ठ 297
61. वही पृष्ठ 278
62 वही पृष्ठ 304
63 वही पृष्ठ 315, 321, 336, 237, 236, 150, 186
64. वही पृष्ठ 352
65 मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य - डा॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव पृष्ठ 349
66 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 276, 276,276,277,279, 283, 283, 286, 286, 296, 307, 256, 337, 371, 315, 327
67. राष्ट्रवाणी - फरवरी 1964 पृष्ठ 274
68 आत्मनेपद -अज्ञेय पृष्ठ 42
69 साहित्य का स्वरूप - पृष्ठ 0
70 हेरिटेज आफ ऐस्थेक्टिस - सी॰ एम॰ बावरा पृष्ठ 73
71. आर्गनाइजेशन एण्ड पैथालाजी आफ थाट - स॰ डेविड पृष्ठ 208
72 साहित्यिक निबन्ध - डा॰ गणपति चन्द्र गुप्त पृष्ठ 542
73 पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त - डा॰ शान्ति स्वरूप गुप्त पृष्ठ 425
74 वही पृष्ठ 426-427
75. साहित्य का स्वरूप - पृष्ठ 70
76. साहित्यिक निबन्ध - डा॰ गणपति चन्द्र गुप्त पृष्ठ 34
77 काव्य-रचना प्रक्रिया - सम्पाद॰ कुमार विमल पृष्ठ 63
78 'मुक्तिबोध' प्रतिबद्ध कला के प्रतीक - चंचल चौहान 1976 पृष्ठ 32
79. डूबता चाँद कब डूबेगा, चाँद का मुँह टेढ़ा है पृष्ठ 44
80 मेरे सहजर मित्र-चाँद का मुँह टेढ़ा है (1979) पृष्ठ 271 (मु0 रचनावली खण्ड-2)
81. वही पृष्ठ 274 (मु0 रचनावली खण्ड-2)
82. मेरे अन्तर-तार सप्तक पृष्ठ 54
83. डूबता चाँद कब डूबेगा - चाँद का मुँह ढ़ेढ़ा 1979 पृष्ठ 45
84 मेरे सहजर मित्र-चाँद का मुँह टेढ़ा है (1979) पृष्ठ 275 (मु0 रचनावली खण्ड-2)
85 वही पृष्ठ 275 (मु0 रचनावली खण्ड-2)
86. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 303, 354, 153, 236

87 वही पृष्ठ 315, 312, 180, 237, 236, 150, 248
88 वही पृष्ठ 163
89 वही पृष्ठ 380
90 वही पृष्ठ 153
91 वही पृष्ठ 379
92. वही पृष्ठ 98
93 'मुक्तिबोध' की काव्य चेतना और मूल्य संकल्प - हुकुम चन्द्र राजपाल पृष्ठ 65
94 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 297
95. वही पृष्ठ 368
96. वही पृष्ठ 176
97. वही पृष्ठ 252
98. वही पृष्ठ 252
99. आलोचना - लल्लन राय, अक्टूबर-दिसम्बर 1980 पृष्ठ 641
100 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 304
101 वही पृष्ठ 143
102 वही पृष्ठ 200
103. वही पृष्ठ 179
104 'मुक्तिबोध' की काव्य सृष्टि - सुरेश ऋतुपर्ण पृष्ठ 291
105 आद्यबिंब और 'मुक्तिबोध' की कविता - कृष्णमुरारी मिश्र पृषठ 91
106 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 267, 144, 322, 324, 150, 375
107 काठ का सपना (भूमिका श्रीकान्त वर्मा) 'मुक्तिबोध' पृष्ठ 7
108 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 269, 304
109 वही पृष्ठ 234
110. वही पृष्ठ 312
111. वही पृष्ठ 236
112. पता नही - चाँद का मुँह टेढ़ा पृष्ठ 4
113. वही पृष्ठ 4
114. वही पृष्ठ 273-286
115. चाँद का मुँह टेढ़ा पृष्ठ 43
116. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' प्रतिनिधि कविताएँ - पृष्ठ 158
117. चाँद का मुँह टेढ़ा पृष्ठ 146

118 वही पृष्ठ 138

119 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 335

120 वही पृष्ठ 139

121 आद्यबिब और 'मुक्तिबोध' की कविता - कृष्णमुरारी मिश्र पृष्ठ 83

122 'मुक्तिबोध' एक साहित्यिक इकाई - डा॰ जगदीश शर्मा पृष्ठ 39

123 नयी कविता और अस्तित्ववाद - डा॰ जगदीश शर्मा पृष्ठ 39

124 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 122

125 वही पृष्ठ 205

126 वही पृष्ठ 146

127. वही पृष्ठ 313

128. वही पृष्ठ 313

129. वही पृष्ठ 314

130 वही पृष्ठ 208

131 वही पृष्ठ 415-416

132 वही पृष्ठ 406

133. वही पृष्ठ 375

134 चाँद का मुँह टेढ़ा पृष्ठ 126

135 वही पृष्ठ 168-169

136 गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की काव्य दृष्टि - सुरेश ऋतुपर्ण पृष्ठ 155। नयी कविता का आत्मसघर्ष तथा अरण्य निबन्ध पृष्ठ 61

137 हिन्दी साहित्य कोश-सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ 670

138. वही पृष्ठ 670

139 वही पृष्ठ 670

140 वही पृष्ठ 670

141 वही पृष्ठ 670

142. वही पृष्ठ 670

143. वही पृष्ठ 671

144. छायावादोत्तर काव्य शिल्प - डा॰ छेदी लाल पाण्डेय पृष्ठ 29

145. नयी कविता नये कवि - श्री विश्वंम्भर मानव - उदघृत गजानन मानव 'मुक्तिबोध' व्यक्तित्व और कृतित्त्व - जनक शर्मा पृष्ठ 203-204

146 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 4 पृष्ठ 158

147. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 145-154
148 वही पृष्ठ 315-320
149 वही पृष्ठ 163-165
150 वही पृष्ठ 204-217
151 वही पृष्ठ 273-286
152 काव्य-रचना प्रक्रिया - स॰ कुमार विमल पृष्ठ 126
153 वही पृष्ठ 101-109
154 वही पृष्ठ 121
155. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 "लकड़ी का रावण" पूरी कविता पृष्ठ 368-372
156. वही पृष्ठ 403
157 वही पृष्ठ 264
158 वही पृष्ठ 250
159 वही पृष्ठ 252
160. वही पृष्ठ 305
161. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 5 पृष्ठ 100
162. वही पृष्ठ 195
163 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 264, 407
164 राष्ट्रवाणी जनवरी-फरवरी 1964 'मुक्तिबोध' विशेषांक पृष्ठ 347
165. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 333
166 वही पृष्ठ 359
167 वही पृष्ठ 180, 226
168. वही पृष्ठ 127
169. वही पृष्ठ 197
170 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 193
171 वही पृष्ठ 154
172. वही पृष्ठ 205
173. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 269, 33
174 अँधेरे में कविता का पूनर्मूल्यांकन -शिवकरण सिह पृष्ठ 52-53
175. चाँद का मुँह टेढ़ा पृष्ठ 235
176. चाँद का मुँह टेढ़ा पृष्ठ 130
177. गजानन मानव 'मुक्तिबोध' प्रतिनिधि कविताएँ - पृष्ठ 166

178 वही पृष्ठ 140, 141, 142, 156

179 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 285, 261, 260, 405, 273, 191, 113

180 गजानन मानव 'मुक्तिबोध' प्रतिनिधि कविताएँ - पृष्ठ 146

181. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 2 पृष्ठ 259, 390, 424

182 वही पृष्ठ 469

183 वही पृष्ठ 396, 247

184. 'मुक्तिबोध' रचनावली भाग - 1 पृष्ठ 110, 144

185. वही पृष्ठ 129

186. वही पृष्ठ 362

●●●

समापन

'मुक्तिबोध' अपने समय के महत्त्वपूर्ण कवि तो हैं ही साथ ही महत्त्वपूर्ण आलोचक भी हैं। उन्होंने व्यक्ति, समाज, रचना प्रक्रिया, ज्ञान, जीवन अन्तर्बाह्य यथार्थ अर्थात् जीवन और रचना के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों पर, किसी न किसी विधा में विचार अवश्य किया है। 'फ़ैण्टेसी' जैसे शिल्प पर भी 'मुक्तिबोध' ने विस्तार से विचार किया है, जिसे हम दूसरे अध्याय में देख आये हैं। यहाँ सबसे पहले यह देखना उचित होगा, कि 'मुक्तिबोध' ने काव्य शिल्प के रूप में 'फैण्टेसी' का ही चुनाव क्यों किया? इस संबंध में डॉ॰ नामवर सिंह, डॉ॰ राम विलास शर्मा, डॉ॰ लल्लन राय, अशोक चक्रधर आदि ने विस्तार से विचार किया है अधिकांश विद्वानों का कहना है, कि 'फ़ैण्टेसी' भाववादी शिल्प है जिसे 'मुक्तिबोध' यह ठीक है कि 'फ़ैण्टेसी' भाववादी शिल्प के अन्तर्गत स्वीकृत है, किन्तु अब तक के अपने अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं, कि 'मुक्तिबोध' के लिए 'फ़ैण्टेसी' वही नहीं है, जो उनके पहले या उनके बाद के कवियों के लिए है। 'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' के शिल्प का चुनाव बहुत से विकल्पों में से एक के रूप में नहीं किया। बल्कि उनका व्यक्तित्व, उनकी ईमानदारी, उनकी रचना-प्रक्रिया, उनके समय के जटिल यथार्थ और नयी कविता के आत्मसंघर्ष ने उनको विवश किया, कि वे 'फ़ैण्टेसी' को शिल्प के रूप में चुनें। 'फ़ैण्टेसी' 'मुक्तिबोध' के लिए विकल्पहीन चुनाव है। इसके साथ ही 'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' की अवधारणा को दिए हुए रूप में मात्र ग्रहण नहीं किया, बल्कि उन्होंने 'फ़ैण्टेसी' को शुद्ध यथार्थवादी शिल्प के रूप में विकसित और प्रतिष्ठित किया।

हिन्दी के पाठको को 'मुक्तिबोध' ने भाववादी 'फ़ैण्टेसी' शिल्प के व्यवहारिक एवं औपचारिक रूप से सबसे पहले परिचित कराया। हिन्दी साहित्य में 'फ़ैण्टेसी' के सैद्धान्तिक पक्ष

और उसके काव्यात्मक प्रयोग पर 'मुक्तिबोध' ने ही सबसे पहले प्रकाश डाला। 'फ़ैण्टेसी' के कार्यव्यापार को उन्होने मनोविज्ञान से सम्बद्ध करके विश्लेषित किया। उन्होंने अचेतन को बहुत बड़ी शक्ति का केन्द्र माना और साथ ही साथ 'फ़ैण्टेसी' के निर्माण में चेतन और अचेतन के सहयोग पर प्रकाश डाला। 'मुक्तिबोध' का चेतन और अचेतन मन यथार्थ को जिस स्तर पर और जिस रूप में पकड़ना चाहता है और जिस रूप में उसको कलात्मक अभिव्यक्ति देना चाहता है, उसके लिए 'फ़ैण्टेसी' के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प है ही नहीं। जहाँ तक 'फ़ैण्टेसी' के तरफ 'मुक्तिबोध' के प्रवृत्त होने की बात है तो कई कारणो में से एक कारण कामायनी के प्रति उनका आकर्षण भी है। इसी प्रकार कुछ ऐसी परिस्थितियाँ थीं, जिसमें 'फ़ैण्टेसी' के अतिरिक्त अन्य किसी विकल्प को चुना ही नहीं जा सकता था। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने 'मुक्तिबोध' के जीवन सूत्रो और उनकी रचनाओं को जोड़कर यह देखने का प्रयास किया कि 'फैण्टेसी' क्यों रची गई? डॉ॰ राम विलास शर्मा ने मनोविज्ञान के अनेक ग्रंथो से प्रमाण लेकर सीजोफ्रेनिया रोग से ग्रस्त व्यक्ति के लक्षणो को 'मुक्तिबोध' में पहचाना और उन लक्षणों को उनकी कविताओ मे आए हुए चित्रों और बिंबों के साथ रखकर देखा है। डॉ॰ शर्मा ने 'मुक्तिबोध' के इस रोग के प्रभाव को उनकी अनेक कविताओ में पहचाना है। ऐसा व्यक्ति स्वभावतः 'फ़ैण्टेसी' की दुनिया में ही रहात है। 'फ़ैण्टेसी' शिल्प का मुक्तिबोध ने अपने ढ़ंग से विकास कियाहै। जहाँ तक फैण्टेसी के प्रयोग का प्रश्न है तो इश दृष्टि से भी 'मुक्तिबोध' ने मौलिकता का परिचय दिया है। 'फ़ैण्टेसी' प्रयोग के कारणो का विवेचन करते हुए इस तथ्य की ओर संकेत कर देना आवश्यक है, कि 'मुक्तिबोध' के शिल्प पर विचार करते हुए अलग से उनके प्रतीकों, बिंबों, रूपकों आदि के मर्म को उद्घाटित नहीं किया जा सकता। ये सभी उपकरण उनकी कविताओं में 'फ़ैण्टेसी' का अभिन्न अंग बनकर आए हैं।

'मुक्तिबोध' की अधिकांश कविताओं में, 'फ़ैण्टेसी' को स्वतंत्र दिक्काल देकर, वर्तमान से एक विशेष दूरी पैदा की जाती है। कुछ कविताओं में काल के एक ही आयाम में स्थानागत दूरी के द्वारा यही काम किया जाता है, और कुछ कविताओं में वर्तमान जीवन के तथ्यों को भविष्य के स्वप्निल आदर्श लक्ष्यों के साथ जोड़ दिया जाता है। ऐसी कविताओं में अधिकांश वे हैं, जिनमें 'फ़ैण्टेसी' के कारण क्रान्ति की प्रक्रिया पूरी होती हुयी दिखायी देती है। कुछ

कविताओं में ये तीनो स्थितियाँ एक साथ अनेक बार घटित होती हैं। डॉ॰ लल्लन राय की यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है कि- " 'फ़ैण्टेसी' की इस बहुमुखी प्रकृति के कारण उनकी अधिकांश कविताओं में उनका पूरा व्यक्तित्व, पूरा स्वानुभूत जीवन-सार और एक इच्छित जीवन-दर्शन ही समाविष्ठ नही हुआ है, वरन् वह मानवीय सामाजिक संबध का वह क्षेत्र भी व्यक्त हो गया है, जिसमें रहकर कवि ने सांस ली और अपनी वर्गीय दृष्टि के अनुकूल उन मानव संबंधो के मूल्यो को संशोधित-सम्पादित कर एक विश्व-दृष्टि का रूप दिया है।

वस्तुतः 'फ़ैण्टेसी' 'मुक्तिबोध' के लिए पहले से बना बनाया शिल्प मात्र नही है। 'मुक्तिबोध' ने अपनी लम्बी कविताओं में 'फ़ैण्टेसी' को अत्यन्त गतिशील स्वरूप प्रदान किया है। वह जीवन-जगत के जटिल यथार्थ और व्यक्ति से लेकर समाज तक के चेतन और अचेतन परतों का भेदन करती है 'फ़ैण्टेसी' 'मुक्तिबोध' की कविताओं में सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या और ज्ञानात्मक निष्कर्ष से क्रियात्मक परिणति तक ले जाने वाली बनकर उभरती है।

'मुक्तिबोध' ने 'फैण्टेसी' पर विस्तार से विचार भी किया है और उसके स्वरूप का भरपूर उपयोग भी किया है, किन्तु ऐसा नही है कि उनका 'फैण्टेसी' विवेचन अथवा काव्य में उसका उपयोग अन्तर्विरोधों से रहित हो। बहुत सूक्ष्म स्तर पर कुछ अन्तर्विरोध दिखायी पड़ते हैं। एक उदाहरण यह है, कि 'मुक्तिबोध' 'वास्तविकता के प्रदीर्घ चित्रण से बचने' के लिए 'फ़ैण्टेसी' के उपयोग की बात करते हैं। किन्तु ऐसी बात नहीं है, मूलतः उनकी कविताओं की प्रकृति लम्बी कविताओं की है। वे कही भी प्रदीर्घ चित्रण से बचने के लिए 'फ़ैण्टेसी' का प्रयोग नही करते।

'मुक्तिबोध' 'फ़ैण्टेसी' के मिथकीय, पौराणिक, जादुई, प्राकृतिक, वैज्ञानिक आदि रूपों का विशिष्ट कलात्मक उपयोग करते हैं। आधुनिक कवि के मिथकीय पक्ष के गम्भीर व्याख्याता डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने रेखांकित किया है कि "'मुक्तिबोध' ने करुणा सम्वलित आतंक की सृष्टि, प्रकृति और पशुओं की सम्मिश्र ध्वनि से भी की है। रोदन की श्रेणी में आने वाली ये सारी ध्वनियाँ आदिम भय से जुड़ी होने के कारण अचूक मिथक जाल रच देती हैं। हमें पता है कि लोक मानस में प्रकृति और पशु-जगत की ध्वनियों के साथ मृत्यु से संबंधित अनेक प्रकार के विश्वास जुड़े हुए है, जो निराधार होने के बावजूद अपना अस्तित्व रखते ही हैं। फिर ध्वनियों की अपनी प्रभाव सृष्टि तो होती है, जिसकी उपेक्षा विज्ञान भी नहीं कर सका

हैं।''

'मुक्तिबोध' की 'फ़ैण्टेसियों' में पशु तात्त्विक और मानव-तात्त्विक संयोजनों ने भी विशिष्ट रोमाञ्चकता की निर्मिति की है। ये 'फ़ैण्टेसियाँ' सीधे उस आदिम बोध से जुड़ी हुई हैं, जिसमे मनुष्य पशुओ की पूजा करता था, उन्हें अपना पूर्वज मानता था और विशिष्ट अनुष्ठानों या समारोहों मे उनकी बलि उसी भाव से देता था, जिस भाव से अपनी। 'मुक्तिबोध' की इस 'फ़ैण्टेसी' की शक्तिमत्ता का रहस्य इसी आदिम बोध में हैं। आदिम बोध का काव्याभिव्यक्ति से अनायास ही जुड़ जाना कविता के आदिम पल को भी संकेतित करता है।

आधुनिक हिन्दी कविता मे 'आतंक धर्मी इन 'फ़ैण्टेसियों' की वस्तु परिधि बहुत बड़ी है। प्राकृत जगत से लेकर अति प्राकृत तक इसके रूपाकार फैले हुए हैं। प्राकृत जगत में प्रकृति, पशु और मानव तीनो की भूमिकाएँ हो सकती हैं अतिप्राकृत के अन्तर्गत दैत्य-दानव-प्रेतादि लिये जा सकते हैं। मिथकीय 'फ़ैण्टेसी' की प्रवृत्ति दूसरे वर्ग की ओर अपेक्षाकृत अधिक हुआ करती है क्योकि दानव-दैत्य आदि की कल्पना का, मिथकलोक से सीधा संबंध है। 'मुक्तिबोध' की कविताओं में इस प्रकार की 'फ़ैण्टेसियों' का बाहुल्य है।

'मुक्तिबोध' की स्थापना है कि काव्यात्मक 'फ़ैण्टेसी' में केवल वैयक्तिकता नहीं होती। इसमें समष्टिगत भावना और सार्वजनिकता भी होती है। उन्होंने यह भी बताया है, कि 'फ़ैण्टेसी' का प्रस्तुत पक्ष गौण होता है। अप्रस्तुत पक्ष ही वास्तविक कथ्य का अर्थ-बोध कराता है। बाह्य यथार्थ के संयोग से हृदय में उत्पन्न हुए अपने आन्तरिक यथार्थ में, कवि, कल्पना का संयोजन करके भव्य 'फ़ैण्टेसी' चित्र उपस्थित करता है। इसके अप्रस्तुत-विधान द्वारा कवि अपने आन्तरिक सत्य एवं यथार्थ को मूर्त बनाता है।

'मुक्तिबोध' मानते हैं कि 'फ़ैण्टेसी' यथार्थ का प्रकटीकरण करने के साथ ही मानसिक सन्तोष भी प्रदान करती है। 'मुक्तिबोध' का यह सिद्धान्त फ्रायड के सिद्धान्त के अनुकूल है। 'मुक्तिबोध' की दृष्टि आधिक सार्थक एवं वैज्ञानिक है, क्योंकि उन्होने इसे 'मानसि इच्छापूर्ति' की संज्ञा दी है।

'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' का विवेचन करते हुए बताया है, कि मुख्य कथ्य प्रतीकार्थो में सन्निहित होते हैं। इसीलिए उसके पात्र, घटनाक्रम या कथा और वातावरण प्रतीकात्मक होते

है। उनकी दृष्टि मे 'फैण्टेसी' के प्रयोग से थोड़े से शब्दो और वाक्यों में आधिक बातें कही या प्रस्तुत की जा सकती हैं। स्पष्ट है कि-

'' 'फ़ैण्टेसी' अनेक चित्रो की सुसंगत पंक्ति तथा संश्लिष्ट चित्रशाला है और इस शिल्प के प्रमुख उपकरण बिंब प्रतीक और रूपक हैं।

'मुक्तिबोध' ने 'फ़ैण्टेसी' को व्यापक अर्थ मे ग्रहण किया है उनके लिए यह केवल शिल्प ही नहीं है, वरन रचना प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अंग भी है। उनके अनुसार अनुभूति की कलात्मक परिणति ही 'फ़ैण्टेसी' की प्रक्रिया से आरम्भ होती है।

कला का प्रथम चरण व्यक्ति की विशिष्ट अनुभतियों मे निहित होता है। इसी से कलाकार को अपनी कला के लिए मुख्य सामग्री प्राप्त होती है। इस चरण की अनुभूति में व्यक्ति का 'स्व' प्रधान होता है। दूसरा क्षण तब आरम्भ होता है, जब रचनाकार अपने 'स्व' से ऊपर उठते हुए अपनी अनुभूति को सार्वजनिक रूप देने का प्रयास करता है, उसे सबके लिए सप्रेषणीय, बनाता है। यहाँ उसकी स्वानुभूति 'संवेदनात्मक रूप ग्रहण करती है और कलाकार उसे कलात्मक रूप देने के लिए उसमे काल्पनिकता का भी सम्मिश्रण करता है। इससे अनुभूति में उपस्थित ''स्व'' का परिमाण न्यून हो जाता है। इसके पश्चात एक ऐसी स्थिति भी आती है, जब 'स्व' और 'पर' में एकीभूत संतुलन की स्थिति स्थापित होने लगती है। इस प्रकार मूल अनुभव की तीव्रता में कमी आती है। इसी बिन्दु पर 'फ़ैण्टेसी' का उदय होता है और उसमें एक संवेदनात्मक उद्देश्य समाहित हो जाता है।

'मुक्तिबोध' अनुभूति को यथार्थ और प्रामाणिक बनाने के लिए संवेदना में ज्ञानात्मक पक्ष को भी सम्मिलित करने का आग्रह करते हैं। इस ज्ञानात्मक आधार का संबंध वास्तविक ज्ञान के प्रति वैज्ञानिक या बौद्धिक दृष्टि से है। इस स्तर पर अनुभूति को विस्तार प्राप्त होता है। इस क्षण-विशेष की सौन्दर्यानुभूति विशेष रूप से कलात्मक होती है।

तीसरा क्षण या अंतिम स्तर शब्द योजना का है। इस क्षण में भाव और भाषा के बीच एक द्वन्द्व चलता है। यह द्वन्द्व दोनो मे आपसी तालमेल बैठाने के लिए होता है, इससे दोनों के बीच एक तुलनात्मक सन्तुलन और सामंजस्य स्थापित हो जाता है और शब्द साधना की पूर्णता के साथ कृति भी पूर्ण बन जाती है। इस प्रकार दूसरे क्षण मे जन्मी 'फ़ैण्टेसी' तीसरे क्षण में एक

नये आयाम के साथ प्रस्तुत होती है।

'फ़ैण्टेसी' युक्त कविताओं में कवि की गहरी, सच्ची आत्मिक अनुभूति व्यक्त होती हैं।। उनका केन्द्रिय कथ्य 'मनुष्य' और उसके परिवेश के आस-पास घूमता है। उसका नायक अपनी विषम परिस्थिति को परिवर्तित करने के लिए सतत् संघर्षरत रहता है।

'फ़ैण्टेसी' प्रधान कविताओ में उनका निजी स्वर गूँजता है। उनकी इस श्रेणी की रचना जीवन और युग-सापेक्ष प्रमाणित होती है। एक प्रकार से देखा जाय तो उनमें उनके समग्र जीवन और युग को चित्रित करने की ललक मिलती है और उनकी संवेदनाएँ कही भी कृत्रिम नहीं लगती।

उनकी काव्यात्मक अनुभूति, उनकी अनुभूति विषयक मान्यताओ के अनुरूप है। उनकी 'फैण्टेसी' कविताओं में आशा, 'निराशा', 'आस्था', 'अनास्था', 'वैफल्य', 'ग्लानि', 'उत्साह' आदि भावों को एक साथ देखा जा सकता है। उनकी अधिकांश 'फ़ैण्टेसी' युक्त कविताएँ सुखान्त हैं, उनका अन्त आशावान एवं आस्थावान भाव या वातावरण में होता है।

'मुक्तिबोध' की जीवन के प्रति गहरी आस्था थी। यही कारण है कि उन्होने दूसरों के अधिकार का अपहरण करने और अकर्मण्यता की प्रवृत्ति के प्रति गहरा आक्रोश व्यक्त किया है। वे आधुनिक जीवन की विसंगति और विद्रूपताओ से पूर्णतः परिचित हैं। शहरी सभ्यता का खोखला-पन उनकी आँखों से छिपा नहीं है। इसीलिए उनकी निष्ठा गाँवों की पौधों से लसी राहों में है, न कि महानगरों की साड़ियो सी चहचहाती सड़कों में। वे दलिद्दर के भयानक देवता के भव्य चेहरों को देख, अपने दूधिया वस्त्रों पर ग्लानि करने लगते है।

'मुक्तिबोध' का काव्य ऐसे कवि का काव्य है, जो आगत के प्रति नत है, जो अपना ज्ञान भविष्य के प्रति, नयी पीढ़ी को समर्पित कर देना चाहता है। इसीलिए 'मुक्तिबोध' अपने काव्यात्मक फणिधर को विवेक-मणियों में छिपा रखने को कहते हैं, क्योंकि उन्हें विश्वास है, कि वे लोग आते ही होंगे।

कुछ आलोचकों ने उनकी कविताओं को आत्मग्रस्त कवि की कविताएँ कहा है। उन पर प्रगतिवादी, 'रहस्यवादी', 'अस्तित्ववादी' प्रभावों को खोजकर उन्हें एक वादी कवि सिद्ध करने का भी प्रयास किया है, किन्तु, उनके काव्य का सम्यक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो

जाना है, कि उनकी काव्य-संवेदना को किन्ही निश्चित खानो में बाँटकर नहीं देखा जा सकता है।

'मुक्तिबोध' का आग्रह सदैव समग्रता की ओर रहा है। अतः उनके काव्य का अध्ययन-विश्लेषण भी समग्रता के आधार पर करना चाहिए और जब हम उनकी काव्य-संवेदना का समग्र रूप से अध्ययन करते हैं, तो हमें उनकी कविताएँ रहस्यात्मक तो लगती है, पर रहस्यवादी नहीं। अस्तित्त्ववादिता का प्रभाव उनके कथ्य और शिल्प पर अवश्य है, पर वे अस्तित्त्ववादी कवियो की तरह आत्महत्या की ओर न जाकर जीवन मे डटकर संघर्ष करने के कायल हैं। इसी तरह वे कट्टर मार्क्सवादी भी नहीं हैं। उनकी कविताएँ प्रगतिशील हैं, पर वे मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार करने वाली प्रचारात्मक कविताएँ कदापि नहीं हैं। वे अपने युगीन यथार्थ को समग्रता में अभिव्यंजित करना चाहते है और इस समग्रता की खोज पर विभिन्न विचारधाराओ का आंशिक प्रभाव पड़ जाना स्वाभाविक ही है। इस तरह उनके काव्य में लक्षित होने वाले कतिपय अन्तर्विरोध भी उनकी काव्य-संवेदना की शक्ति बन जाते हैं।

'मुक्तिबोध' की भावानुभुति को मूर्तिमान करने में बिंबों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। बिबो के कारण उनके कथ्य मे अधिक स्पष्टता आयी है। बिंब प्रयोग की दृष्टि से 'मुक्तिबोध' एक अप्रतिम कवि सिद्ध होते हैं। उनकी कविताओं में बिंबों की भरमार हैं।

प्रायः एक बिंब दूसरे से संश्लिष्ट है। इतने अधिक प्रकार के और मात्रा में बिंबों के प्रयोग को कुछ विद्वान दोष मानते हैं। परन्तु अपना औचित्य सिद्ध करने व 'फ़ैण्टेसी' शिल्प में आवश्यक रूप से बिंबों की श्रृंखला का प्रयोग होने के कारण यह दोष की परिधि में नहीं आ सकता। बिंबों के कारण काव्य-संवेदना की सम्प्रेषणीयता में वृद्धि हुई है। बिंबों ने जहाँ एक ओर हॉरर एवं रहस्य को प्रकट किया, वहीं वे यथार्थ के दृश्य को भी व्यक्त करने में सहायक सिद्ध हुए।

'मुक्तिबोध' के अधिकांश बिंबों में प्रतीक गुण है और प्रतीकों में बिंबों की विशिष्टता है, यद्यपि सभी स्थलों पर ऐसा नहीं है। परन्तु जहाँ ऐसा संयोग है वहॉ भाव और कथ्य की उत्कृष्ट और सटीक व्यंजना हुई है।

'मुक्तिबोध' के काव्य प्रतीक उनके कथ्य को बहुत सीमा तक ग्राह्य बनाते हैं। प्रतीक भाव और यथार्थ की सार्थक एवं सटीक अभिव्यंजना करने में समर्थ हैं।

'फैण्टेसी' शिल्प के कारण उनके प्रतीक अनेक स्थलों पर क्लिष्ट भी जान पड़ते हैं, क्योंकि एक प्रतीक सर्वत्र एक ही अर्थ या संकेत को नहीं व्यक्त करता। प्रतीकों का सही अर्थ न ग्रहण करने से मुख्य अभिप्राय तक पहुँना कठिन हो जाता है।

बिंबो की भाँति उन्होने अनेक नए प्रतीकों का भी सृजन किया है। उनके प्रतीक प्रायः अपने अन्दर विस्तृत अर्थ सकेत छिपाये रखते है। प्रायः सभी क्षेत्रो से प्रतीक ग्रहण किया है, परम्परागत प्रतीको का प्रयोग कम किया है। कवि ने पुराने प्रतीको से नवीन अर्थ ध्वनित कराया हैं। उन्होने अपनी प्रतीक योजना में नवीन प्रतीकों का प्रयोग अधिक किया है।

'मुक्तिबोध' की कविता मे 'रूपक' का प्रयोग 'व्यापक' परिसीमा में हुआ है। उनके 'रूपक' परम्परागत और साधारण 'रूपक' न होकर क्लिण्ट 'रूपक कथाएँ' है। 'फ़ैण्टेसी' की विशेषता है, कि उसका मुख्य अभिप्राय प्रतीकात्मक होता है और प्रस्तुत गौण होता है। यही कारण है कि उनकी 'रूपक कथाएँ' गहरा प्रतीकार्थ रखती हैं। एक प्रकार से वे प्रतीक कथाएँ है। 'मुक्तिबोध' के रूपक कथा की मुख्य विशेषता यह है कि जहाँ उन्होंने कथा का आधार प्राचीन पौराणिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक आख्यानों से ग्रहण किया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने आधुनिक जीवन और विज्ञान तथा गणित शास्त्र के आधार पर अपनी स्वकल्पना से 'रूपक कथाओं' की रचना की है, जो उनकी मौलिकता और प्रतिभा को सशक्त ढ़ग से उद्घाटित करती है 'अँधेरे में' 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'चम्बल की घाटी मे', कविताएँ इसका ज्वलन्त प्रमाण है। 'रूपक कथाओं' के कारण 'फ़ैण्टेसी' युक्त कविताओं की रोचकता, गति और आकर्षण में श्री वृद्धि हुई है।

'फ़ैण्टेसी' शिल्प की कविता एक विशिष्ट भाषिक संरचना की माँग करती है। इस क्षेत्र में 'मुक्तिबोध' ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा का प्रकाशन किया है। 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की तरह 'मुक्तिबोध' की भाषिक रचना भी अनेक विचित्रताओं से युक्त है। उन्होंने अपने कथ्य और 'फ़ैण्टेसी' के साँचे के अनुरूप हिन्दी के अलावा अन्य देशी-विदेशी और लोकभाषा के शब्दों को इस प्रकार ग्रहण किया है, कि वे उसमें पूरी तरह समाहित हो गये हैं। इस प्रयोग से उन्होंने भावों को अधिक भाव-प्रवण और मार्मिक बनाया है। यद्यपि उनकी कविता यथा स्थान एक उबड़-खाबड़पन का बोध भी कराती है, कहीं-कहीं यह काव्यात्मक मान्यताओं के अनुरूप नहीं

हैं, परन्तु वास्तविक सत्रास को व्यक्त करने के लिए यही भाषा उपयुक्त है। यह सामान्य हिन्दी की बोलचाल की भाषा के निकट है।

काव्य की संवेदना को पैना बनाने के लिए तथा कम शब्दो में ही अधिक बात कहने के लिए उन्होंने लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग किया है। उन्होंने कविता में नाटकीयता एवं पुनरावृत्तियों का प्रचुर प्रयोग किया है। जो 'फ़ैण्टेसी' शिल्प मे सहायक हुई है। कही-कही दो भिन्न कविताओ मे प्रायः सामान्य कथ्य की पुनरावृत्ति भी हुई है। इस स्थल पर उनकी भाषिक संरचना मे बहुत साम्य है। उदाहरण स्वरूप 'चम्बल की घाटी में' और 'एक टीले और डाकू की कहानी' को लिया जा सकता है।

कुछ विशिष्ट सकेत चिन्हो का प्रयोग भी किया गया है जो उनके शिल्प की भाषिक संरचना की एक तकनीक बन गये हैं उदाहरणार्थ - कॉंमा (" "), डॉटस (- - -) डैश (-) आदि द्रष्टव्य हैं। उन्होंने 'फ़ैण्टेसी' शिल्प की अभिव्यक्ति के लिए अप्रस्तुत योजना, 'वर्णनात्मकता', 'चित्रात्मकता', 'काव्यात्मकता' 'सम्वादात्मकता' एवं 'सम्बोधन शैली' का प्रयोग किया है। इन शैलियो से 'फ़ैण्टेसी' की प्रभाविष्णुता में वृद्धि हुई है। 'मुक्तिबोध' ने स्वच्छन्द छन्द का प्रयोग किया है। जो 'फ़ैण्टेसी' शिल्प के सर्वथा अनुकूल है।

अपनी शारीरिक, मानसिक बनावट, अपनी वर्गीय स्थिति, अपने संस्कार एवं व्यक्तित्व, अपने समय की जटिल-संरचना और नयी कविता के आत्मसंघर्ष के सक्रिय योद्धा के रूप में 'मुक्तिबोध' जिस काव्यरूप को अपना सकते थे - उसका सर्वोत्तम माध्यम 'फ़ैण्टेसी' ही है। उन्होंने इस माध्यम को अपनाकर उसे एक श्रेष्ठ रचनाशिल्प के रूप में प्रस्तुत कर दिया। इसको इस रूप में भी कह सकते हैं, कि नयी कविता ने अपने सर्वोत्तम स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए 'फ़ैण्टेसी' और 'मुक्तिबोध' का चयन किया।

समग्रतः 'मुक्तिबोध' आज नयी कविता के सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व है। इसका कारण शायद यह है कि उन्होंने प्रयोगवादी या तथाकथित नये कवियों की तरह कविताएँ नहीं लिखी हैं उनकी काव्य-संवेदना अपेक्षाकृत अधिक जागरुक और संयमित है। वे अपनी संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं को विवेक द्वारा संयोजित करते हैं। आत्ममंथन के तीव्र प्रवाह मे पड़कर वे अनेक भावरत्न निकाल लाते हैं। उनकी कविताएँ ऐसे आइने के समान हैं, जिनमें कवि के

आत्मसंघर्ष के साथ-साथ युग का समग्र यथार्थ भी प्रतिबिम्बित हुआ है। यद्यपि 'मुक्तिबोध' रचनावली के प्रकाशन के पश्चात उनकी सम्पूर्ण काव्य संपदा प्रकाशन में आ गयी है। काव्य संपदा का मूल्यांकन भी हुआ है। परन्तु वह समग्र नहीं है। वैसे भी 'मुक्तिबोध' का काव्य मूल्यांकन नहीं मांगता, बहस माँगता है, गतिमान विचारों की चर्चा और परिचर्चा चाहता है, क्योंकि 'मुक्तिबोध' के अनुसार— यथार्थ, उस यथार्थ को व्यक्त करने वाली कविता भी सतत विकासमान है। इसलिए वे कविता को कभी पूर्ण हुआ नही मानते। जो वस्तु पूर्ण नहीं अपूर्ण है। उसका मूल्याकन भी अधूरा ही होगा।

सहायक ग्रन्थ सूची

1 'मुक्तिबोध' रचनावली-भाग-एक, दो, तीन, चार, पाच, छः-सम्पादक नेमिचन्द जैन राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, प्र॰सं॰ 1980

2 अचेतन मन की विशेषताएँ - डा॰ एस॰ एस॰ माथुर, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

3. अरस्तु का काव्यशास्त्र - डा॰ नगेन्द्र, भारती भण्डार लोडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र॰सं॰ सन् 1961 ई॰

4 आधुनिक हिंदी काव्य-भाषा - डा॰ रामकुमार सिंह, ग्रन्थम प्रकाशन रामबाग, कानपुर- नवम्बर 1965

5. मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य -डा॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, प्र॰सं॰ 1985

6 इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज - खण्ड -5

7. इन्ट्रोडॅक्शन टु साइकोलॉजी- मॉर्गेन एण्ड किग, चतुर्थ स॰

8. असामान्य मनोविज्ञान - डा॰ रामकुमार ओझा, प्र॰ सं॰

9. आलोचना और आलोचना- डा॰ इन्द्रनाथ मदान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र॰सं॰- 197

10. आलोचना के नए मान - कर्ण सिंह चौहान, दि मैकमिलन कम्पनी, दिल्ली प्र॰, स॰-197।

11 आधुनिक साहित्य - नंद दुलारे बाजपेयी, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र॰ सं॰ संवत् 2007 वि॰

12. समकालीन हिंदी कविता का संघर्ष - डा॰ कामेश्वर सिंह प्रथम संस्करण।

13. शब्द जहाँ सक्रिय है - नन्दकिशोर नवल, प्रथम संस्करण।

14 साहित्य सिद्धान्त (थियरी ऑफ लिटरेचर)- रेनेवेलेकः आस्टिन वारेन (अनुवाद - बी॰ एस॰ पालीवाल) लोकभारती प्र॰, इलाहाबाद, प्र॰ सं॰

15 अँधेरे में कविता का पुनर्मूल्यांकन - शिवकरण सिंह।

16. 'अँधेरे में' : इतिहास संरचना और संवेदना और संवेदना-सम्पादक बच्चन सिंह अभिव्यक्ति प्रकाशन-संस्मरण-1995

17 आद्यबिंब और मुक्तिबोध की कविता - कृष्ण मुरारी मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1977

18 काव्य-रचना प्रक्रिया - सम्पादक डा॰ कुमार विमल, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, प्र॰सं॰ 1976

19 कार्ल मार्क्स : कला और साहित्य चितन, सपादक - नामवर सिह राजकमल प्रकाशन, अनुवादक - गोरख पाण्डेय, प्र॰स॰ 199

20 'मुक्तिबोध' की कविता : समाज शास्त्रीय अध्ययन - डा॰ मीना आहुजा प्र॰ सं॰ 1991, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली।

21. साहित्य और सामाजिक सदर्भ - डा॰ शिव कुमार मिश्र, प्र॰ सं॰

22. मानव सभ्यता का विकास - डा॰ राम विलाश शर्मा, प्र॰ सं॰, वाणी प्रकाशन 1956

23. काव्य और कला अन्य निबन्ध - जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्र॰सं॰ संवत् विक्रम 2005

24. कविता का अंतर अनुशासनीय विवेचन - डा॰ वीरेन्द्र सिंह, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, दिल्ली - 51, प्र॰सं॰ - 1986

25 काव्य बिंब - डा॰ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जवाहर नगर दिल्ली प्र॰सं॰ अप्रैल सन् 1967 ई॰

26 काव्यशिल्प के आयाम - सुलेख शर्मा, आदर्श साहित्य प्रकाशन, सन् - 1971 ई॰

27 काठ का सपना - 'मुक्तिबोध', भारतीय ज्ञानपीठ, प्र॰सं॰ - 1967

28 गजानन माधव मुक्तबोध का रचना संसार - सम्पादक गंगा प्रसाद विमल : सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, प्र॰सं॰ 1971

29 गजानन माधव 'मुक्तिबोध' - सम्पादक डा॰ लक्ष्मण दत्त गौतम, विद्यार्थी प्रकाशन, प्र॰सं॰ - 1968

30. मुक्तबोध का साहित्य एक अनुशीलन - डा॰ शशि शर्मा प्रकाशन प्राशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977

31. छायावाद युग - डा॰ शम्भू नाथ सिंह , सरस्वती मंदिर, जतनबर - वाराणसी सन् 1962 ई॰

32 'मुक्तिबोध' विचारक और कवि कथाकार : डा॰ सुरेन्द्र प्रताप - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली प्र॰सं॰ 1978

33. तार सप्तक - सम्पादक अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, वि॰ सं॰ - 1966

34. मुक्तबोध युग चेतना और अभिव्यक्ति डा॰ आलोक गुप्ता, गिरनार प्रकाशन पिलाजीगज

मेहसाना (उ. गुजरात) प्र.स. 1985

35. दूसरा सप्तक - सम्पादक अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वि. सं. -1966

36. नया साहित्य - नये प्रश्न, आचार्य नद दुलारे बाजपेयी, विद्यामदिर, बनारस, बंसतपंचमी 2011 वि. स.

37. नयी कविता की चेतना - डा. जगदीश कुमार, सन्मार्ग प्रकाशन, प्र.स. - 1972

38. नयी कविता और अस्तित्ववाद, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन - दिल्ली, प्र.सं. - 1978

39. [illegible] - अशोक बाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली वि.सं. 1973

40. भूरी-भूरी खाक धूल - गजानन माधव 'मुक्तिबोध', राजकमल प्रकाश प्रा. लि.

41. नयी कविताओं का रचना विधान - सम्पादक नरेन्द्र मोहन, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, दिल्ली प्र.सं. 1977

42. 'मुक्तिबोध' [illegible]मूल्यांकन - डा. सम्पत ठाकुर, प्रगति प्रकाशन आगरा प्र.स. - 1978

43. 'मुक्तिबोध' के आलोचना सिद्धान्त - पुष्पलता राठौर, (लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र.स. 1970

44. 'मुक्तिबोध' की काव्य चेतना और मूल्य संवल्प - डा. हुकुमचन्द्र राजपाल, वाणी प्रकाशन [illegible], नई दिल्ली, प्र.सं.-1985

45. 'मुक्तिबोध' की [illegible] - डा. अचला रानी तिवारी - विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर।

46. 'मुक्तिबोध' का साहित्य-विवेक और उनकी कविता - डा. लल्लन राय, मंथन पब्लिकेशन्स मॉडल हाउस, रोहतक, हरियाणा, प्र.सं. 1982

47. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की प्रतिनिधि कविताएँ - सम्पादक अशोक बाजपेयी राजकमल पेपर बैक्स, चौथा संस्करण, 2000

48. 'मुक्तिबोध' की काव्य-प्रतिभा - अशोक चक्रधर, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लि., नई दिल्ली, प्र.सं.-1975

49. 'मुक्तिबोध' एक साहित्यक इकाई- डा. जगदीश शर्मा, किताब महल, इलाहाबाद, प्र.सं. 1972

50. 'मुक्तिबोध' की काव्य सृष्टि - सुरेश ऋतु पर्ण, ऋष्भ चरण जैन एवं सन्तति, दरियागज, प्र.सं. 15 अगस्त 1975

51. 'मुक्तिबोध' एक अवधूत कविता - श्री नरेश मेहता, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.-1988

52. 'मुक्तिबोध' काव्य बोध का नया परिपेक्ष्य - वीरेन्द्र सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, -1978

53 हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा॰ राम किशोर शर्मा, विद्या प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण 1989

54 कविता के नये प्रतिमान - डा॰ नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, वि॰ स॰ 1974

55 समकालीन हिन्दी आलोचक और आलोचना - डा॰ रामवृक्ष, हरियाणा, साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ प्र॰स॰-1991

56 गजानन माधव 'मुक्तिबोध' - व्यक्तित्व एवं कृतित्व - जनक शर्मा -पचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर प्र॰सं॰- 1983

57 नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध - 'मुक्तिबोध'-1971

58. गजानन माधव 'मुक्तिबोध', जीवन और काव्य, राजेश प्रकाशन दिल्ली - 1976

59. नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र - गजानन माधव 'मुक्तिबोध' - राधाकृष्ण प्रकाशन 1971

60 चिंतामणि - आचार्य रामचंद्र शुक्ल, इडियन प्रेस पब्लिकेशन प्रा॰ लि॰-1980

61. चाँद का मुंह टेढ़ा है - सम्पादक शमशेर बहादुर सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र॰स॰ - 1979

62. छायावादोत्तर काव्य-शिल्प - डा॰ छेदीलाल पाण्डेय, -स्मृति प्रकाशन, शहरारा बाग इला॰ -1976

63. एक साहित्य की डायरी . भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण 1969

64. प्रयोगवाद और समानान्तर साहित्य -रेखा अवस्थी, दि मैकमिलन कम्पनी प्रकाशन, दिल्ली, प्र॰सं॰ 1978

65 प्रयोगवाद और 'मुक्तिबोध' (एक नव मूल्यांकन) - डा॰ वीरेन्द्र कुमार शर्मा, सजय बुक सेन्टर गोलघर, वाराणसी प्र॰सं॰-1986

66 मुक्तबोध - सम्पादक विश्वकर्मा नाथ तिवारी - ज्ञान भारती 4/14 रूपनगर, दिल्ली, प्र॰स॰ 1986

67 अँधेरे का महत्त्व - सम्पादक डा॰ राजेन्द्र कुमार, नयी कहानी 170 अलोपी बाग प्रकाशन द्वितीय संस्करण 1996

68. 'मुक्तिबोध' - प्रतिबद्ध कला के प्रतीक-चंचल चौहान, पांडुलिपि प्रकाशन दिल्ली, प्र॰सं॰ 1976

69. अंत स्तल का पूरा विप्लव - अँधेरे मे सम्पादक निर्मला जैन साधाकृष्ण प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1996

70. मिथक और आधुनिक कविता - शम्भूनाथ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागज, नई दिल्ली, प्र॰सं॰ - 1985

71 चाँद का मुँह टेढ़ा है एव भूल-गलती व्याख्याता - बृजेश, अभिव्यक्ति प्रकाशन, प्र॰स॰-

1999

72 मार्क्सवादी साहित्य चितन - डा॰ शिव कुमार मिश्र, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

73 हिन्दी की लम्बी कविताएँ - राम स्वरूप चतुर्वेदी - प्र॰सं॰

74 विभ्रम और यथार्थ - क्रिस्टोफर कॉडवेल अनुवाद भगवान सिह, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्र॰स॰-1990

75 स्वप्न लोक - हरिमोहन शर्मा - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र॰स॰

76 [illegible] यथार्थवादी काव्य-रमाकान्त शर्मा, वाणी प्रकाशन, कमलानगर, दिल्ली, प्र.स॰-1984

77 असामान्य व्यवहार - डा॰ पी॰ मिश्र वीना मिश्र, - प्र॰सं॰

78 [illegible] हिंदी साहित्य-आलोचना को चुनौती - डा॰ बच्चन सिह, ओम प्रकाश बेरी, हिंदी प्रचारक प्रकाशन आदि विश्वनाथ, वाराणसी

79 साहित्य और जन संघर्ष - शम्भूनाथ, संभावना प्रकाशन, हापूड़।

80. सर्जन और भाषिक सचरना - रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, महात्मागाँधी मार्ग इलाहाबाद।

81. हिंदी कविता में बिंब विधान - केदारनाथ सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली प्र॰सं॰ 1971

पत्र-पत्रिका

1 आलोचना, धर्मयुग, राष्ट्रवाणी, वीणा, विश्वभारती, कल्पना, लहर हिन्दुस्तान

कोश

1. वृहद अंग्रेजी हिन्दी कोश - डा॰ हरदेव बाहरी - 1969

2. अंग्रेजी हिन्दी कोश - फादर कामिल बुल्के प्र॰सं॰ 1968

3. दर्शन कोश - प्रगति प्रकाशन मास्को (हिन्दी अनुवाद) 1988

●●●